हिन्दी-गौरव-ग्रंथमालाका २०.वाँ ग्रंथ।

भारतमें दुर्भिक्ष

लेखक,

श्रीयुत् पं० गणेशदत्त शर्मा ।

भूमिका-लेखक,

श्रीयुत् पं० राधाकृष्ण झा एम० ए०

प्रोफेसर पटना-कालेज।

प्रकाशक,

गाँधी हिन्दी-पुस्तक भंडार,

कालवादेवी—बम्बई।

प्रथम संस्करण।

मूल्य १॥) रु०

कपड़े की जि० २।) रु०

माघ १९७७

भूमिका।

हमारे देशकी आबहवा और प्राकृतिक बनावट, कुछ ऐसी है कि यहाँ कृषिकी प्रधानता रहेगी। यहाँकी बड़ी बड़ी नदियाँ, यहाँका जाड़ा, गरमी और बरसात सब कृषिके पक्षमें ही हैं। यही अवस्था भविष्यमें भी रहेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। कृषि-कार्यसे परोक्ष या अपरोक्ष रूपमें प्रति शत नब्बे भारतवासियोंका सम्बन्ध है। कृषिसे सम्बन्ध रखनेवालों तथा उस पर ही निर्भर करनेवालोंकी संख्या बढ़ती ही जाती है, इसका प्रमाण पिछले तीस वर्षोंकी मर्दुम शुमारियोंसे मिलता है।

देशकी आबादी बढ़ती ही जाती है, साथ ही साथ खेती-बाड़ी भी बढ़ी है सही। पर खेती जितनी बढ़ी है उतनी काफी नहीं है। फिर भी जितनी जमीन आबाद होती है उसमें अखाद्य द्रव्यों (कपास, जूट इत्यादि) की खतीका परिमाण बढ़ता जाता है, कहीं कहीं धानकी जगह जूट बोया जाता है और कहीं धान या गेहूँकी बढ़िया जमीन छीन कर कपास या जूट बो दिया जाता है—और धान गेहूँके लिये खराब जमीन छोड़ दी जाती है। इस लिये खानेका अनाज काफी मिकदारमें नहीं उपजता, यह बढ़ती हुई अबादीके लिये यथेष्ट नहीं होता। तिस पर भी इस अपर्याप्त खाद्य द्रव्यमेंसे बहुत कुछ, देशके बाहर बिकनेको चला जाता है। बर्म्मासे जितना चावल हिन्दुस्थान आता है, उससे कहीं अधिक चावल, गेहूँ हिन्दुस्थानसे बाहर चला जाता है। इससे स्पष्ट है कि हिन्दुस्थानमें जितने अन्नकी जरूरत है उतना अन्न रहने नहीं पाता।

भूमिका।

हमारे देशकी आबहवा और प्राकृतिक बनावट, कुछ ऐसी है कि यहाँ कृषिकी प्रधानता रहेगी। यहाँकी बड़ी बड़ी नदियाँ, यहाँका जाड़ा, गरमी और बरसात सब कृषिके पक्षमें ही हैं। यही अवस्था भविष्यमें भी रहेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। कृषि-कार्यसे परोक्ष या अपरोक्ष रूपमें प्रति शत नब्बे भारतवासियोंका सम्बन्ध है। कृषिसे सम्बन्ध रखनेवालों तथा उस पर ही निर्भर करनेवालोंकी संख्या बढ़ती ही जाती है, इसका प्रमाण पिछले तीस वर्षोंकी मर्दुम शुमारियोंसे मिलता है।

देशकी आबादी बढ़ती ही जाती है, साथ ही साथ खेती-बाड़ी भी बढ़ी है सही। पर खेती जितनी बढ़ी है उतनी काफी नहीं है। फिर भी जितनी जमीन आबाद होती है उसमें अखाद्य द्रव्यों (कपास, जूट, इत्यादि) की खतीका परिमाण बढ़ता जाता है, कहीं कहीं धानकी जगह जूट बोया जाता है और कहीं धान या गेहूँकी बढ़िया जमीन छीन कर कपास या जूट बो दिया जाता है—और धान गेहूँके लिये खराब जमीन छोड़ दी जाती है। इस लिये खानेका अनाज काफी मिकदारमें नहीं उपजता, वह बढ़ती हुई अबादीके लिये यथेष्ट नहीं होता। तिस पर भी इस अपर्याप्त द्रव्यमेंसे बहुत कुछ, देशके बाहर बिकनेको चला जाता है। जितना चावल हिन्दुस्थान आता है, उससे कहीं अधिक गेहूँ हिन्दुस्थानसे बाहर चला जाता है। इससे स्पष्ट है कि जितने अन्नकी जरूरत है उतना अन्न रहने नहीं पाता।

अन्नकी माँग देश विदेश सब जगह है। विदेशमें तो अधिक है; क्योंकि योरपमें खेती-बाड़ीसे काफ़ी अन्न पैदा नहीं होता। उन लोगोंको बाहरसे मँगानेकी हमेशा जरूरत रहती है। परन्तु योरपके लोग उद्योग-धंदे जैसे दूसरे दूसरे उपायोंसे यथेष्ट धन कमा लेते हैं। उसी आमदनीसे महँगे भाव पर भी अनाज खरीद सकते हैं। पर वेचारा हिन्दुस्थानी ऐसा नहीं कर सकता; उसकी औसत आमदनी ४२) रुपये सालसे ज्यादा कूती नही जा सकी है। अब खुले बाजार-में कौन चावल और गेहूँ खरीदेगा ? ४२) वार्षिक आमदनीवाला या ३३०) रुपयोंकी आमदनीवाला गरीबसे गरीब योरोपियन ? उत्तर स्पष्ट है। इसी लिये अनाज विदेश जाया करता है। सरकार इसे रोकती भी नहीं है। रेल-लाइनें इस तरह बनी है, उनके भाड़ेकी दर इस नीतिसे कायम की जाती है कि प्रत्येक क़िसानका चावल, गेहूँ योरपकी ओर ही ताकता रहता है! यदि इस हालतमें देशके लोग अनाज न पावें और वह अनाज महँगे दर विदेशमें बिकनेको चला जाय तो आश्चर्य ही क्या ? अन्न कष्ट और दुर्भिक्ष तो स्वाभाविक ही है।

फिर करना क्या होगा ? कृषि हमारा प्रधान व्यवसाय है और रहेगा। पर उसमें जितने लोगोंकी आवश्यकता है, जितने लोगोंसे खेती-बाड़ीका काम मजेमें चल जायगा; ठीक उतने ही लोगोंको खेतीमें लगा रहना चाहिए, ज्यादाको कभी नहीं। यह सब कोई जानते हैं कि किसानोंके पास काफी जमीन नहीं है। यदि वापके पास वीस वीघे जमीन थी तो उसके मरने पर चारो लड़कोंने अलग होकर सिर्फ पाँच पाँच ही वीघे पाई। पर फिर भी उसी खेतीमें लगे रहे। दूसरा रोजगार नहीं किया, या किया भी तो थोड़े दिनके लिये, ऊपरी दिलसे। वापके समय मजेमें दिन चैनसे कटते थे तो

बेटेको रोटी-नमक पर ही सन्तोष करना पड़ता है। इसे अवश्य रोकना पड़ेगा। कानून बनाना पड़ेगा कि जिसमें कोई भी किसान पन्द्रह बीघे जमीनसे कम नहीं रख सकेगा। भाई-बन्धु जायदाद बँटनेके समय इसे बाँट न सकेंगे। इसका नतीजा यह होगा कि यह किसान फिर अपना पूरा समय कृषि-कार्यमें लगा सकेगा, इसकी आमदनीसे अपने परिवारको पाल सकेगा। खाद डाल कर, कूँआ खोद कर, नये औजार लाकर खेतीकी तरक्की भी कर सकेगा। और बाकी आदमी जिन्हें खेतीकी जमीन नहीं मिलेगी, लाचार होकर, गाँवके बाहर शहरोंमें, मिलों, पुतलीघरोंमें जाकर काम करेंगे, अपनी और अपने परिवारकी आमदनी बढ़ावेंगे। घरकी आधी रोटीको लात मार कर, बाहरकी समूची रोटीके लिये जान लड़ावेंगे। इससे उद्योग-धन्दोंको भी सहायता पहुँचेगी, मालिकोंको मजदूरोंकी कमीके लिये रोना न पड़ेगा। पर हाँ, उन्हें मजदूरोंके रहने, खाने-पीने, स्वास्थ्य इत्यादिका यथोचित प्रबन्ध करना पड़ेगा और सरकारको भी शहरोंको मजदूरोंके रहने लायक बनाना पड़ेगा। इस तरह देशके लोगोंकी आमदनी बढ़ेगी, फिर क्या है, खुले बाजारमें हम हिन्दुस्थानी भी; उतना ही दाम देकर गेहूँ ले सकेंगे जितना कि योरोपियन देनेको तैय्यार हैं। फिर तब गेहूँको बाहर जानेकी जरूरत न पड़ेगी। हमें अन्न-कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा। जरूरत होगी तो दूसरे देशोंसे भी अन्न मँगा लेंगे। सबसे अधिक जरूरत है आमदनी बढ़ानेकी। कहाँ हमारी आमदनी ४२) रु० और कहाँ योरपमें गरीबसे गरीब देशकी ३३०) रु०! कैसी लाञ्छनाकी बात है!

यही तो हमारी रोटीका सवाल है। इसको किस तरह हल करना होगा इसे श्रीमान् पं० गणेशदत्तजी शर्माके लिखे "भारतमें दुर्भिक्ष"

अन्नकी माँग देश विदेश सब जगह है। विदेशमें तो अधिक है; क्योंकि योरपमें खेती-बाड़ीसे काफ़ी अन्न पैदा नहीं होता। उन लोगोंको बाहरसे मँगानेकी हमेशा जरूरत रहती है। परन्तु योरपके लोग उद्योग-धंदे जैसे दूसरे दूसरे उपायोंसे यथेष्ट धन कमा लेते हैं। उस आमदनीसे महँगे भाव पर भी अनाज खरीद सकते हैं। पर बेचारा हिन्दुस्थानी ऐसा नहीं कर सकता; उसकी औसत आमदनी ४२) रुपये सालसे ज्यादा कूती नही जा सकी है। अब खुले बाजारमें कौन चावल और गेहूँ खरीदेगा? ४२) वार्षिक आमदनीवाला या ३३०) रुपयोंकी आमदनीवाला गरीबसे गरीब योरोपियन? उत्तर स्पष्ट है। इसी लिये अनाज विदेश जाया करता है। सरकार इसे रोकती भी नहीं है। रेल-लाइनें इस तरह बनी है, उनके भाड़ेकी दर इस नीतिसे कायम की जाती है कि प्रत्येक किसानका चावल, गेहूँ योरपकी ओर ही ताकता रहता है! यदि इस हालतमें देशके लोग अनाज न पावें और वह अनाज महँगे दर विदेशमें बिकनेको चला जाय तो आश्चर्य ही क्या? अन्न कष्ट और दुर्भिक्ष तो
विक ही है।

फिर करना क्या होगा? कृषि हमारा प्रधान
रहेगा। पर उसमें जितने लोगोंकी अ...
खेती-बाड़ीका काम मजेमें चल जा...
खेतीमें लगा रहना चाहिए, ज्यादा
जानते हैं कि किसानोंके पास
पास बीस बीघे जमीन थी
होकर सिर्फ पाँच पाँच
लगे रहे। दूसरा
लिये, ऊपरी

ग्रंथकारका निवेदन।

—o—

" प्रहृष्टो मुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः।
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः॥
न चापि क्षुद्भयं तत्र न तस्करभयं तथा।
नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च॥"

—महर्षि वाल्मीकि।

अर्थात्—सारी प्रजा प्रसन्न, मुदित, तुष्ट, पुष्ट आधि-व्याधिसे रहित, धार्मिक और दुर्भिक्षके भयसे मुक्त हो गई। न किसीको भूखकी ही चिंता थी और न चोरोंहीका भय था। इस प्रकार समस्त नगर और राष्ट्र धनधान्यसे परिपूर्ण हो गये।"

प्यारे देशभाइयो,

कौन ऐसा मनुष्य है जो ऊपर लिखे अनुसार राज्यकी इच्छा न करता हो? कौन ऐसा मनुष्य है जो ऐसे राज्यमें जाकर बसनेका इच्छुक न हो! परन्तु यह तो मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीके उसी राज्यकालका वर्णन है जिसे लोग रामराज्य कहते हैं। आज सभी बातें ठीक उसके विपरीत हैं। प्रजा दुखी, कृश, क्षीणकाय, अल्पायु, आधि-व्याधि युक्त, धर्मच्युत और दुर्भिक्षके भयसे भयभीत है। सबको सुबह उठनेसे लगा कर, रात्रिके सोने तक अपने पेटकी ज्वालाको शान्त करनेकी हाय हाय लगी रहती है, तो भी पूरी तरहसे भरपेट अन्न नहीं मिलता। हमारे नगर और राष्ट्र धनधान्यसे शून्य हो गये। हम दीनता और दासतामें फँसे हुए अपने जीवनको भार रूप समझे बैठे हैं। हम लोग "दो दिनकी जिन्दगी" और "क्षणभंगुर शरीर" कह कर हताश हो गये हैं। हमें वेद उपदेश देते हैं।

" पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतं अदीना
स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।"

—यजुर्वेद अ० ३६।२४

अर्थात्—मनुष्यको पुरुषार्थ--प्रयत्न--करते हुए अदीन वृत्तिसे सौ वर्ष तक जीनेकी इच्छा सदा अपने मनमें रखनी चाहिए। सौ वर्ष अथवा सौ वर्षसे भी अधिक आयु तक अपनी सब शक्तियोंको उन्नत रखनी चाहिए।'

इस वेदमंत्रको प्रायः द्विज मात्र सन्ध्योपासनाके समय बोलते हैं। परन्तु उस पर विचार नहीं करते।

अब सब शक्तियाँ उन्नत रखनेके लिये हमें पुरुषार्थकी आवश्यकता है; और वह पुरुषार्थ विना सुख-सामग्रियोंके प्राप्त होना असंभव है। यहाँ रात दिन घानीके बैलकी तरह काममें पिले रहने पर भी भरपेट अन्न मिलना भी कठिन हो रहा है। पौष्टिक पदार्थ घृत, दुग्धादि जो शक्तिको सुरक्षित रखनेके लिये मूल पदार्थ हैं; आज स्वर्गलोकके अप्राप्य अमृतसे भी अधिक दुर्लभ हो गये हैं। इन्हीं चिंताओंमें निमग्न रहने तथा भरपेट भोजन न मिलनेके कारण मस्तिष्क भी निर्बल हो गया है अर्थात् देशव्यापी भयंकर दुर्भिक्षके कारण भारतवासियोंका बुरा हाल हो गया है।

जब आजसे सौ वर्ष पहलेकी बातें सुनते हैं और वर्तमान काल पर दृष्टि डालते हैं तो चित्तको भारी चोट पहुँचती है। जब मैंने अपने स्वर्गीय श्रीपूज्य पिताजीकी सन् १८९३ ई० की एक डायरीको देखा तो उसमें लिखे अन्नके भावको देख कर मुझे अत्यंत आश्चर्य हुआ। उस समय चौबीस सेर गेहूँ, दस सेर चावल, तीस सेर मूँग, दस सेर गुड़ और दो सेर घी एक रुपयेका मिलता था। यह आजसे ठीक २७ वर्ष पहलेका भाव है, जब कि लेखकका जन्म भी नहीं हुआ था। जब मैं आजकलकी इस बढ़ती हुई महँगीकी तरफ दृष्टि डालता हूँ तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस समय देशमें गेहूँकी दर औसतसे ५ सेर फी रुपया है। यह महँगी इन छः वर्षोंमें ही इस प्रकार पराकाष्ठाको पहुँची है। इसका कारण यह है कि सन् १९१५ से सरकारकी अधिक वक्र-दृष्टि हमारे खाद्य पदार्थ पर हुई और गेहूँ विदेश भेजा जाने लगा। और जहाँ तक मुझे ध्यान है; लगभग १७ लाख टन हमारे देशका खाद्य पदार्थ सन् १९१५ से १९१८ तक बाहर विदेशोंको भेजा गया है। भारत भले ही भूखों मरे उन्हें इसकी कोई चिंता नहीं; कोई कुछ कहनेवाला नहीं, क्योंकि:—

“ परम स्वतन्त्र न सिर पर कोऊ।”

. यदि हमारे यहाँ इतना गेहूँ होता कि हमारे खानेके बाद भी बच रहता, ब तो कोई दुःखकी बात ही न थी। विदेश जानेका जरा भी दुःख नहीं होता। किन्तु दुःख इस बातका है कि करोड़ों भूखे भारतवासियोंके मुखका ग्रास छिना कर विदेशको भर दिया!

सन् १९११ से सन् १९१८ तकके सात वर्षोंका औसत निकालने पर मालूम होता है कि ५२·७ फी सैकड़ा युवा स्त्री-पुरुषोंको, या यों कहिए कि पन्द्रह करोड़ भारतवासियोंको आधे पेट भोजन मिला है। इसीको और भी साफ समझनेके लिये हम यों कह सकते है कि ७ करोड़ हमारे भारतीय भाई-बहन अन्नके बिना भूखों रहे। हाय, कितने शोककी बात है कि जब हम अपने घरमें आनन्दसे मिष्टान्न खाते हैं उस समय हमारे करोड़ों ही भारतीय एक एक दाने अन्नके लिये छटपटाते हैं।

कितने दुःखकी बात है कि कई करोड़ भारतवासी नर-नारी रात दिन एड़ीसे चोटी तक पसीना बहा कर भी इतना अन्न नहीं पा सकते जितना कि जेलखानेके कैदीको भी मिल जाता है। इस आधे पेट रहनेका यह फल हुआ कि भारतमें प्लेग, इन्फ्लुएंजा आदि सर्वसंहारी अनेकों रोगोंकी सृष्टि हो गई। कोई भी भारतवासी रोगमुक्त, सुखी, धन-ऐश्वर्य्य-सम्पन्न दिखाई नहीं देता।

यों तो सभी अपने अपने घोसेमें मस्त हैं; और सभी अपनेको सुखी और धनाढ्य मानते हैं। पर यह केवल अश्वत्थामाको बहलानेके लिये आटा घोलकर बनाए हुए कृत्रिम दुग्धके समान है। यदि इसकी सच्ची दशाका पता लग जावे, या अमेरिका जैसे किसी समृद्धशाली देशसे मुकाबिला किया जावे तो, हम निस्सन्देह उसे स्वर्ग और स्वर्गोपम भारतको आज नर्क कहनेको तैय्यार हो जावेंगे।

बिना अन्नके लोग, भारतमें अनाथकी भाँति मरते चले जा रहे हैं; मानों भारतीय मनुष्योंका कोई मूल्य ही नहीं है। यहाँ प्रति सहस्र ३१·२ मृत्यु-संख्या है; शायद ही किसी अन्य देशकी इतनी बड़ी चढ़ी मृत्यु-संख्या होगी। हमारे जीवनकी अवधि भी औसतसे २४·७ बर्षकी है। सारांश यह कि बिना अन्नके हम लोग सब प्रकारकी दुर्दशा भुगत रहे हैं। इन सब बातोंका मूल मैं दावेके साथ दुर्भिक्षको ही बताऊँगा। यदि अब भी हम लोगोंने आँखें

नहीं खोलीं तो न जाने हमें आगे चल कर किस भयंकर समयका सामना करना पड़ेगा ?

हम यहाँ नीचे एक कोष्टक देते हैं जिससे आपको पता लगेगा कि यहाँ अन्नकी कितनी कमी है।

सन्	देशमें अन्नकी आवश्यकता	देशमें अन्न पैदा हुआ	देशमें अन्नकी कमी
१९११–१२	६४३·३	५६५·०	७८·३
१९१२–१३	६४०·०	५१९·०	१०१·०
१९१३–१४	६४१·१	४९६·१	१४५·०
१९१४–१५	६४७·९	५४३·६	१०४·३
१९१५–१६	६४९·१	५८४·३	६४·८
१९१६–१७	६५०·३	६००·८	४९·५
१९१७–१८	६४९·१	५७१·३	७७·७

(स्मरण रहे यह संख्या लाख टनकी है और १ टन लगभग २७ मनका होता है।)

अब उक्त कमीकी पूर्तिके केवल दो ही उपाय हैं। (१) देशमें अन्नकी पैदावरी बढ़ाई जावे, (२) देशका अन्न बाहर नहीं जाने दिया जावे। पहला उपाय तो इस भूखे भारतके लिये कष्टसाध्य है; और ऐसी दशामें तो कष्टसाध्य क्या महान असाध्य है। क्योंकि यहाँके अन्नदाता कृष्णकोंकी यही ही दुर्दशा है; वे अत्यंत दरिद्र हैं। अब केवल दूसरा उपाय रह जाता है; वही इस महान दुर्भिक्षके लिये अचूक इलाज है। यहाँकी कमीको देखते हुए यहाँका एक दाना भी विदेशको भेजना महान पाप है; और महान अन्याय है।

अब जरा नीचेका कोष्टक देखिए, इसमें यह दिखलाया गया है कि अमुक सन्में इतनी कमी होने पर भी इतना अन्न भूखे भारतका विदेशोंको दिया गया।

सन्	देशमें अन्नकी कमी	विदेशोंको भेजा गया
१९१५-१६	६४·८	२३·८
१९१६-१७	४५·५	२९·०
१९१७-१८	७०·७	४५·१

अर्थात् यहाँकी कमीका कुछ भी ध्यान न रख कर औरोंके पेट भरनेका ध्यान है। इतना होने पर भी ता० ३१ मार्च सन् १९२१ ई० तक चार लाख टन गेहूँ भारतसे विदेशको भेजनेकी आज्ञा सरकारने निकाली है। कितने दुःखकी बात है कि सरकारको, भारतवर्षकी रक्षाकी कोई आवश्यकता नहीं ज्ञात होती। इस वर्ष वर्षा न होनेसे देशमें अन्नकी बड़ी भारी माँग है; भयानक दुर्भिक्षके चिन्ह दृष्टि आ रहे हैं। इतने पर भी भूखे भारतके मुखका ग्रास छीन कर अपने सगे भाई-बन्धुओंको हमारी मा-बाप सरकार (!) इतना ठूँस ठूँस कर खिलाना चाहती है कि उन्हें बदहज्मी मिटानेके लिये पाचककी गोली खाने तकको भी जगह न रह जावे। इस प्रकारकी सरकारकी न्यायबुद्धिको देख कर कब तक धैर्य रखा जा सकता है।

"भूखे भजन न होत गोपाला"

वाली कहावत आज चरितार्थ हो रही है। भूखों रह कर किसी प्रकारकी भी भक्ति नहीं हो सकती। चाहे वह ईश्वरभक्ति हो, राजभक्ति हो या देशभक्ति। वर्तमान स्वराज्य आन्दोलनके अपराधी हम भारतवासी नहीं हैं। हमें आवश्यकताने ऐसा करनेके लिये विवश किया है। स्वतंत्रता मनुष्यका जन्मसिद्ध अधिकार है। कोई मनुष्य भले ही कुछ समयके लिये किसीका गुलाम बना रहे; परंतु यह बिल्कुल संभव नहीं कि वह सदा-सर्वदा उसकी गुलामी ही करता रहे। और उसके अन्यायों तथा अत्याचारोंको ईश्वर-कार्य समझ कर सहता रहे और चूँ तक भी नहीं करे। भारतमें, दुर्भिक्षके कारण हुई इन अधोगतियोंको समूल नष्ट करनेके लिये एक मात्र उपाय स्वाधीनता है, और उसके प्राप्तिका मार्ग वर्तमान, राजनीतिक स्वराज्य आन्दोलन है।

यहा एक वेदमंत्र याद आता है, उसमें प्रजाकी तरफसे राजाको प्रार्थना है:—

नहीं खोलीं तो न जाने हमें आगे चल कर किस भयंकर समयका सामना करना पड़ेगा ?

हम यहाँ नीचे एक कोष्टक देते हैं जिससे आपको पता लगेगा कि यहाँ अन्नकी कितनी कमी है।

सन्	देशमें अन्नकी आवश्यकता	देशमें अन्न पैदा हुआ	देशमें अन्नकी कमी
१९११–१२	६४३·३	५६५·०	७८·३
१९१२–१३	६४०·०	५१९·०	१०१·०
१९१३–१४	६४१·१	४९६·१	१४५·०
१९१४–१५	६४७·९	५४३·६	१०४·३
१९१५–१६	६४९·१	५८४·३	६४·८
१९१६–१७	६५०·३	६००·८	४९·५
१९१७–१८	६४९·१	५७१·३	७७·७

(स्मरण रहे यह संख्या लाख टनकी है और १ टन लगभग २७ मनका होता है।)

अब उक्त कमीकी पूर्तिके केवल दो ही उपाय हैं। (१) पैदावरी बढ़ाई जावे, (२) देशका अन्न बाहर नहीं पहला उपाय तो इस भूखे भारतके लिये कष्टसाध्य तो कष्टसाध्य क्या महान असाध्य है। क्योंकि यहाँ की दुर्दशा है; वे अत्यंत दरिद्र हैं। अब यहाँ इस महान दुर्भिक्षके लिये हुए यहाँका एक दाना भी वि- अन्याय है।

अब जरा नीचेका कोष्टक सन्‌में इतनी कमी होने भेज दिया गया।

सन्	देशमें अन्नकी कमी	विदेशोंको भेजा गया
१९१५–१६	६४·८	२३·८
१९१६–१७	४९·५	२९·०
१९१७–१८	५०·७	४५·१

अर्थात् यहाँकी कमीका कुछ भी ध्यान न रख कर औरोंके पेट भरनेका
ान है ! इतना होने पर भी ता० ३१ मार्च सन् १९२१ ई० तक चार
ख टन गेहूँ भारतसे विदेशको भेजनेकी आज्ञा सरकारने निकाली है !
ितने दुःखकी बात है कि सरकारको, भारतवर्षकी रक्षाकी कोई आवश्यकता
ही ज्ञात होती ! इस वर्ष वर्षा न होनेसे देशमें अन्नकी बड़ी भारी माँग है;
यानक दुर्भिक्षके चिन्ह दृष्टि आ रहे हैं । इतने पर भी भूखे भारतके मुखका
ास छीन कर अपने सगे भाई–बन्धुओंको हमारी मा–बाप सरकार (!)
तना ठूँस ठूँस कर खिलाना चाहती है कि उन्हें बदहज्मी मिटानेके लिये
ाचककी गोली खाने तकको भी जगह न रह जावे ! इस प्रकारकी सरकारकी
ाममुद्धिको देख कर कब तक धैर्य रखा जा सकता है ।

" भूखे भजन न होत गोपाला "

वाली कहावत आज चरितार्थ हो रही है । भूखों रह कर किसी प्रकारकी
ी भक्ति नहीं हो सकती । चाहे वह ईश्वरभक्ति हो, राज्यभक्ति हो या
ेशभक्ति । वर्तमान स्वराज्य आन्दोलनके अपराधी हम भारतवासी नहीं हैं ।
में आवश्यकताने ऐसा करनेके लिये विवश किया है । स्वतंत्रता मनुष्यका
न्मसिद्ध अधिकार है । कोई मनुष्य भले ही कुछ समयके लिये किसीका गुलाम
ना रहे; परंतु यह बिलकुल संभव नहीं कि वह सदा-सर्वदा उसकी गुलामी ही
रता रहे । और उसके अन्यायों तथा अत्याचारोंको ईश्वर-कार्य समझ कर सहता
हे और चूँ तक भी नहीं करे । भारतमें, दुर्भिक्षके कारण हुई इन अधोगति-
ोंको समूल नष्ट करनेके लिये एक मात्र उपाय स्वाधीनता है, और उसके
ाप्तिका मार्ग वर्तमान, राजनीतिक स्वराज्य आन्दोलन है ।

यहां एक वेदमंत्र याद आता है, उसमें प्रजाकी तरफसे राजाकी प्रार्थना है:—

प्रकार अन्नकी कमी है, उसी तरह घृत, दुग्ध, वस्त्र आदिकी महँगे-
भी नाकों दम ला दिया है। लोगोंको दूध, घी, दुष्प्राप्य सा हो रहा है।
का कारण एक मात्र, हमारे पशुधनका सब तरहसे संहार है। लाखों पशु
य कटते हैं, तथा जल और थलमार्ग द्वारा विदेशोंको भेजे जाते हैं।
चरभूमि न छोड़नेसे तथा घास आदिकी महँगीके कारण पशु निर्बल हो
क्षीणायु हो रहे हैं। तथा उनकी नस्लें खराब हो रही हैं। इन सब
तोंका वर्णन आप विस्तृत रूपसे, इस पुस्तकमें पावेंगे ही। परन्तु एक बात
ा बतलाना उचित समझता हूँ।

इस वर्तमान योरोपीय महासमरकी क्षति पूर्तिके लिये "क्षतिपूर्ति-
मीशन" ने जर्मनीसे एक हजार साँड तथा ५ लाख गौएँ फ्रांसको; ११ हजार
५० पशु इटलीको; २ लाख दस हजार गौएँ बेल्जियमको, और ५ हजार
ांड, ५२ हजार बैल तथा एक लाख गौएँ सर्वियाको दिलाना निश्चय किया
। हमें इससे कोई प्रयोजन नहीं है, जर्मनी दे या न दे। हमें तो यहाँ केवल
ही दिखाना है कि विदेशोंमें पशुधन कितना अमूल्य है जो क्षतिपूर्तिमें माँगा
ा रहा है; अर्थात् युद्धमें मरे हुए मनुष्योंके मूल्यके बदलेमें पशुधन लिया
ा रहा है। वे लोग सब मिला कर ८ लाख ५६ हजार १५० उपयोगी पशु
र्मनीसे लिया चाहते हैं।

वे चाहे कितना ही लें, क्योंकि जर्मनीने उन्हें क्षति पहुँचाई है। परन्तु
मारा एक प्रश्न है कि युद्धमें भारतने वो सहायता पहुँचाई है; उसने ११
ाख ६१ हजार ७८९ रंगरूट समुद्रपार भेजे हैं। जिनमेंसे १ लाख १
हजार ४१९ सैनिक घायल, कैद, बेपता और मृत्यु पा चुके हैं। मैं यहाँ युद्धमें
दिये भारतीय धनको नहीं दिखाना चाहता, क्योंकि यहाँ सवाल जीवोंका है।
भारतने उन्हें शक्ति भर सहायता दी है। फिर भी उसके पशुओंका संहार
ी तरह क्यों किया जा रहा है? और उस कमीशनने भारतकी इस महान
क्षतिके लिये कितने पशु भारतमें भेजनेका प्रबन्ध किया है? कुछ नहीं, एक
बछड़ी भी विदेशोंसे बहादुर भारतको नहीं दी जा सकती।

मुख्य बात तो यह है कि हमारे हाथमें कुछ भी अधिकार नहीं है। नहीं
तो हमें यह दुर्भिक्ष प्रलय-सूचक ताण्डवनृत्य क्यों देखना पड़ता?

इसके अतिरिक्त अनेक कारण भारतमें दुर्भिक्षके हैं। जिन्हें यदि चाहे
भारत-सरकार एक दिनमें हटा सकती है। जैसे—मादक द्रव्योंका व्य
लगानकी कठोरता, भिक्षुकोंकी भयंकर वृद्धि और विदेशोंका व्यापार, इत्या

(१) मादक द्रव्योंको महँगा करके उन्हें कान्ट्रेक्ट पर चलाना
रोकनेका उपाय नहीं है, बल्कि अपना खजाना भरनेका एक उपाय है। इ
कतई रोक कर इसके लिये कड़ा कानून बनाना चाहिए।

(२) लगानकी कठोरताको कम करना चाहिए। भारतके निर्धन कृषों
पर केवल नाम मात्रका ही लगान होना चाहिए। जहाँ कहीं, जब क
किसानोंके साथ झगड़ा हुआ या उन पर अन्याय किया, तो उसका मूल का
लगानकी अधिकता ही पाया गया। जिसे वह दरिद्र कृषक देनेमें असमर्थ थ

(३) भिक्षकोंके लिये कोई कानून अवश्य बनना चाहिए। इस काम
देशकी म्युनिसिपल्टियाँ और टाउन कमेटियाँ मजेमें कर सकती हैं। अर्थ
भिक्षुकोंको उक्त संस्थाएँ प्रमाणपत्र दें कि वे भिक्षाके योग्य हैं या नहीं
बिना प्रमाणपत्र प्राप्त किये माँगते हुए भिक्षुकोंको पकड़ कर दण्ड दे
चाहिए। यद्यपि दान धर्मका एक अंग माना गया है तथापि ऐसे घर
भीख माँग कर खानेवाले मुफ्तखोर काहिलोंके लिये ऐसा नियम बनां
कुछ हर्ज नहीं।

(४) विदेशी मालको भारतमें पचानेके लिये सरकार अपना बल-प्र
न करे। भारतीय वस्तुओं पर अधिक टेक्स और विदेशी वस्तुओं पर
मात्रका टेक्स लगा कर अपने अन्यायका परिचय न दे। एक दूसरे दे
आपसमें व्यापारिक सम्बन्ध होना कुछ अनुचित नहीं है, परन्तु होना च
समानता और न्याय। जितना पक्का माल भारतमें विदेशोंसे आता है
सामने देशसे कुछ भी पक्का माल विदेशोंको नहीं जाता। यदि जा
तो कच्चा माल, वह भी अधिक नहीं। सन् १९१३-१४, में भारतमें
विदेशी मालकी सूची आपके अवलोकनार्थ यहाँ लिख दी जाती है।

नाम वस्तु	मूल्य रुपये
मिठाई	२६ ३३ ०००
बिस्कुट	४४ ८१ ०००
कागज	१५८ ७७ ०००
पतरे और प्लेट	२२ ३५ ०००
साबुन	७५ ०६ ०००
स्टेशनरी	६५ ९८ ०००
खिलौने	४४१ ७००
रङ्गी चमड़ा	१५ ३७ ०००
जमा हुआ दूध	४१ ५२ ०००
चूड़ियाँ	८० ४५ ०००
शीशियाँ बोतल इ० चिमनियाँ	२१ ९३ ००० १७ ९४ ०००
बूट और जूते	७९ २६ ०००
छत्री, छड़ी आदि	५३ १० ०००
कटलरी सामान	२८ ३३ ०००
कुल जोड़	७ ३९ ६१ ७०००

जहाँ हमने लगभग साढ़े सात करोड़ रुपयोंका अस्थायी और भड़कीला विदेशी सामान खरीदा, उसमें एक बात हमें जरा ध्यान देनेकी है कि जमा हुआ दूध ४१ लाख ५२ हजार रुपयोंका देशमें विदेशोंसे आया। इससे दो बातें निष्पन्न होती हैं; (१) भारतमें दूधकी बड़ी भारी माँग है, जो यहाँ न मिलनेके कारण विदेशोंसे मँगा कर बल बढ़ाया जाता है, (२) यह कि विदेशी लोग अपने देशकी वस्तुका इतना आदर करते हैं और ऐसे सच्चे स्वदेशभक्त हैं कि भारतवर्षका अमृत-तुल्य ताजा दूध काममें न लाकर अपने देशका

वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा जमाया हुआ वासी दूध ही सेवन करते हैं। ह
अँगरेजोंसे स्वदेशप्रेम सीखनेका यह अच्छा प्रमाण है।

सरकारको देशकी दुर्भिक्ष-ग्रसित भयंकर दुर्दशा पर ध्यान देना चाहि
और उसे शीघ्र ही इसके सुधारमें प्रवृत्त होकर सच्चे राजा होनेका परिचय दे
चाहिए। उसे अब भारतकी भलाईमें वहुत सा द्रव्य खर्च करनेकी जरूरत है
जरा अपने स्वार्थ सिद्ध करनेके व्ययको कम कर देना चाहिए। जैसे रेल, ए
सरकारी बड़ा भारी व्यापार है। इसमें असंख्य रुपये लग चुके हैं। इससे देश
दिखनेमें तो लाभ है, परन्तु वास्तवमें हानि है। सरकारको इससे अत्यं
लाभ है। जरा संक्षिप्तमें इसका हाल भी सुन लीजिए—"सन् १८५
ई० में यहाँ रेलें जारी हुईं। अब ३५ हजार २८५ मील रेलका विस्तार है
इसमें ४६ अरव ५८ करोड़ ५९ लाख ३५००० रु० व्यय हुए और भा
सरकार प्रति वर्ष १२ करोड़ रुपया इसके विस्तारके लिये खर्च करती है
यह सिर्फ रेलपथका खर्चा है; रेलवे विभागका नहीं। यदि यही रुपया
इतना ही रुपया देशकी उन्नतिमें प्रति वर्ष सरकार खर्च करे तो देशका प
कल्याण हो सकता है। रेलपथ नहीं सही, पहले इन रेलोंमें बैठ कर चलनेवा
दुर्भिक्ष-पीड़ित भूखी भारत संतानकी जठर-ज्वालाको शान्त करे। अपनी प्र
को पुत्रवत् पालन करना राजाका पहला धर्म है। यह सब बातें सोच
यदि राजा भारतवासियोंकी सुध ले तो यह सब झगड़ा तमाम हो, किंतु
कोई नहीं सुनता। इस क्षुधार्त भारतका रक्षक वह एक परमात्मा ही है

देशकी अत्यंत दुर्दशा है। दुर्भिक्ष इसके सामने मुहँ फाड़े खड़ा है। अ
यदि स्वावलंवी होकर देशका उद्धार कर सकते हैं तो कर लीजिए, अन्य
इस तरह तो असंभव मालूम होता है।

प्रियपाठक, भारतमें दुर्भिक्षके कुछ मोटे मोटे कारणोंको मैंने इस पुस्त
लिखनेका साहस किया है। यह मेरा साहस सचमुच दुस्साहस कहा जा सक
है। क्योंकि १९०० मील लम्बे और लगभग इतने ही चौड़े स्थान (भारत
मेंके दुर्भिक्षका कारण बता देना मुझ जैसे अलज्ञ पुरुषोंका कार्य
है। तथापि अपने भावोंको दवोचे रखना भी मैंने उचित नहीं समझा

" अभावे शालिचूर्णं वा शर्करा च गुडस्तथा । "

...नमें आप लोगोंके समक्ष मैंने उन्हें ला रखा । यदि इस कार्यको इसी क्षेत्रका धुरन्धर विद्वान अपने हाथमें लेकर इस विषय पर कोई ...र पुस्तक लिखता तो हिन्दी जगतका बहुत कुछ उपकार हो सकता था । विषयके ज्ञाता यदि इसकी त्रुटियों तथा नये समावेश होने योग्य विषयोंका सूचना देंगे तो इसके द्वितीय संस्करणमें—यदि उचित समझा गया तो— ...र या वृद्धि कर दी जावेगी ।

इस विषय पर जहाँ तक मेरा अनुमान है भारतीय भाषाओंमें कोई पुस्तक ...ं है । संभवतः यह पहली ही पुस्तक हिन्दी भाषामें है । इस विषयकी ...रेजी भाषामें अनेक पुस्तकें भरी पड़ी हैं । जितनी मैंने देखी हैं उनकी ...मावली आगे दी है । यदि उन सब अँगरेजी पुस्तकोंका मूल्य जोड़ा ...वे तो २५२॥=) होते हैं । कितने दुःखकी बात है कि हिन्दी साहित्यमें ... विषय पर पुस्तकें ही नहीं हैं । मुझे आशा है कि इस विषयके ज्ञाता ...न्दीमें इस आवश्यक विषय पर पुस्तकें लिख कर हिन्दीका गौरव बढ़ावेंगे ।

यद्यपि मैंने इस पुस्तककी सन् १९१५ से लिखना आरंभ किया था और ...त ही सिरतोड़ मिहनतके साथ इसे चार वर्षोंमें लिख चुका; तथापि इसमें ...टियोंका रह जाना संभव है । अत एव उनके लिये मैं अपने प्रेमी पाठकोंसे ...मा माँगता हुआ, इसे आद्यन्त पढ़ कर मेरे परिश्रमको सफल करनेकी ...ार्थना करता हूँ । वन्दे मातरम् ।

इंद्रसदन,
आगर (मालवा)
...प कृष्ण ८ शनिवार
१९७७ वि०

विनीत,
गणेशदत्त शर्मा ।

सहायक पत्रों तथा पुस्तकोंकी नामावली।

१ भारतमित्र	...	कलकत्ता
२ वेंकटेश्वरसमाचार	...	बंबई
३ प्रेम	...	वृन्दावन
४ भारतबन्धु	...	हाथरस
५ हिन्दीसमाचार	...	दिल्ली
६ केसरी (हिन्दी)	...	काशी
७ प्रताप	...	कानपुर
८ बंगवासी (हिन्दी)	...	कलकत्ता
९ आर्यमित्र	...	आगरा
१० अवधवासी	...	लखनऊ
११ उत्साह	...	उरई
१२ पाटलिपुत्र	...	पटना
१३ कर्मवीर	...	जबलपुर
१४ अभ्युदय	...	प्रयाग
१५ जयाजीप्रताप	...	लश्कर
१६ श्रीशारदा	...	जबलपुर
१७ मर्यादा	...	प्रयाग
१८ सरस्वती	...	प्रयाग

पुस्तकें।

१ फीजीमें मेरे इक्कीस वर्ष—ले० पं० तोतारामजी सनाढ्य।
२ प्रवासी भारतवासी—ले० एक भारतीय हृदय।
३ देशदर्शन—ठाकुर शिवनन्दनसिंह।
४ स्वदेश—ले० महाकवि रवीन्द्रनाथ टागोर।
५ भारतभारती—ले० कविवर मैथिलीशरण गुप्त।
६ कपासकी खेती—ले० बाबू रामप्रसादजी सायजज।
७ देशकी बात।

ENGLISH BOOKS.

1 Tee Indian year book 1918–19.

2 Economy in India

3 an Essay on the Economic cause of Famine in India

4 The Famine in Bengal 11874

? The Famine in Bengal & Orissa 1867

6 The threatened famine in Western & Southern India 1877

7 Report of the India famine Commission 1880–81

8 The Famine & the Relief Operations in India

9 Indian Famine Commission 1898

19 Minutes of Evidence

11 Report on the Indian Famine Commission 1901

12 Papers Regarding the Famine & the Relief Operations in India during 1899–1900

13 „ „ During 1900-01

14 In Famjne land

15 Iudian Famines

16 Report on the Famine in the Bombay Presidency 1911–12

17 Famine Relief code Bombay Presidency

18 Burmah Famine Code 1906

19 C. P, Famine Code 1905

20 Famine Code Madras Presidency 1914
21 The PanjabFamine Gode 1906
22 The Revised Code U P1912
23 The Imopending Bengal Famine
24 The Memorandum of the Famine Commission 187

कृतज्ञता।

मैं अपने इन उदार और कृपालु महानुभावोंके प्रति शुद्ध हृदयसे कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने मुझे इस पुस्तकके लिखनेमें सहायता पहुँचाई तथा मेरे उत्साहको बढ़ाया।

(१) स्वर्गीय श्री० बाबू महावीरप्रसादजी विद्यार्थी (विभूतिकवि) असरगंज जि० मुंगेर।

(२) श्रीयुक्त बाबू रामचन्द्रजी वर्मा—संपादक "नागरीकोष" नागरी-प्रचारिणी सभा काशी।

(३) श्रीयुक्त पं० राधाकृष्णजी झा, एम० ए०, सीनियर प्रोफेसर पटना-कॉलेज, महेन्द्रू, पटना।

विषयानुक्रमणिका ।

भारतमें दुर्भिक्ष

विषय-प्रवेश।

" एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ " मनु।

मैं पाठकोंके समक्ष सतयुगके समयका दर्शन उपस्थित कर उन्हें आश्चर्य-सागरमें गोते खाते देखना नहीं चाहता। वह समय तो हमारे गौरवका था। उस समय भारत कल्पवृक्ष था। तत्कालीन भारतीयोंको जिस वस्तुकी आवश्यकता होती थी, वह उन्हें अनायास ही, बिना परिश्रम प्राप्त हो जाया करती थी। उन दिनों हमारा भारत स्वर्गसे भी अधिक, सुखद, शान्ति-पूर्ण और रम्य था। यही कारण था कि उस समय स्वर्गस्थ देवता गण मानव-शरीर धारण कर, स्वर्गसे भी श्रेष्ठ, भारतमें आकर निवास करते थे। उस समय वह परब्रह्म परमात्मा भी बार बार इस भारत भूमि पर अवतार ग्रहण कर, इसकी उत्कृष्टता अपने वैकुण्ठसे भी अधिक सिद्ध करता था। यद्यपि उन दिनों, आजकलकी भाँति भारत दुःखागार नहीं था, यहाँ पापाचरण नहीं होते थे, हमारी यह दुर्दशा नहीं थी, धर्म पर इस प्रकार कुठाराघात नहीं हो रहा था, गौ-ब्राह्मणोंकी यह दुर्गति नहीं थी; तथापि परमात्माने कई बार

जल्दी जल्दी अवतार लेकर भारतको भूमण्डलमें सर्व्वोच्च सिद्ध कर दिया था। अन्न, धन और वस्त्रकी इतनी बहुलता थी कि ... मिलने पर भी कोई छूता तक नहीं था। यदि यह कहा जाय कि उन दिनों भारतमें घी-दूधकी नदियाँ बहती थीं, तो अनुचित न होगा। भारतसे कोई वस्तु विदेश नहीं जाती थी, भारतका धन-धान्य भारतमें ही रहता था। सतयुगके बाद त्रेता, द्वापर और बादमें कलियुगका नम्बर आया। कलियुगके चार हज़ार वर्षोंका वर्णन भी लिखें तो सतयुगादिसे कुछ भी कम न होगा। कारण हम ही अपने देशके शासक थे, हमें अपने भले बुरेका ज्ञान था, हम जो कुछ करते थे बहुत विचार-पूर्वक और देश-हित तथा आत्महितकी दृष्टिसे करते थे। हमें अपनी दशाका अच्छा ज्ञान था और स्वराज्य-भोगी होनेके कारण हम सुखी थे, हमें किसी बातकी तकलीफ़ नहीं थी।

इस समय अर्थात् महाभारत युद्धके पश्चात् अन्य देशोंमें भारतीय लोग जा बसे थे। किंतु ये वे लोग थे, जिनकी भारत जैसे धार्मिक देशमें गुज़र नहीं हो सकती थी। क्योंकि ये असभ्य, मांस-भोजी, निर्दय, मूर्ख और अधर्मी थे; हमारे भारतीय भील-कोलोंसे बहुत मिलते-जुलते थे। उन्हें वस्त्रोंकी आवश्यकता नहीं थी। वे नंगे-बदन रहते और केवल एक लंगोटी लगाये रहते थे। अन्नकी उन्हें आवश्यकता नहीं पड़ती थी; क्योंकि मारे हुए जीवोंका मांस ही उनका भोजन था। वे लोग यथासमय भारतीय नौकाओं तथा जहाजों द्वारा अन्य देशोंको गये तब वहाँके निवासियोंके साथ मिल कर उन्होंने अपनेको सभ्य बनाना आरंभ किया, अर्थात् सभ्यताका पाठ उन्होंने भारतीयोंसे ही सीखा। हमारे पुराणोंसे यह सिद्ध है

के भारतवर्षके ब्रह्मावर्त प्रदेशमें ही ब्रह्माजीने सृष्टि-रचनाका आरंभ किया था। इंजील तथा कुरानसे भी आदम और हौआका अदनकी वाटिकासे निकल कर भारतमें आना प्रकट होता है। उसका प्रमाण अनेक आधुनिक विद्वानोंके लेखोंसे भी मिलता है। 'टाड राजस्थान'में एक जगह लिखा है कि "आर्यावर्तके अतिरिक्त और किसी देशमें सृष्टिके आरंभका प्रमाण नहीं पाया जाता। अत एव आदि सृष्टि यहीं हुई, इसमें कोई सन्देह नहीं है।" इसके अतिरिक्त "History of the world" (हिस्ट्री आवदी वर्ल्ड) में सर वाल्टर रेले नामक अँगरेज विद्वान्ने लिखा है कि—" जल-प्रलयके अनन्तर भारतमें ही वृक्ष-लता आदिकी सृष्टि और मनुष्योंकी बस्ती हुई थी।" ब्राउन साहबने २० फरवरी १८८४ ई० के "डेली ट्रिब्यून" नामक पत्रमें स्वीकार किया है कि—" यदि हम पक्षपात रहित होकर भली भाँति परीक्षा करें तो हमको स्वीकार करना पड़ेगा कि भारत ही सारे संसारके साहित्य, धर्म और सभ्यताका जन्मदाता है।"

प्रायः सभी नये और पुराने इतिहास-वेत्ता इस बातको स्वीकार करते हैं कि दर्शन, विज्ञान और सभ्यता-सम्बंधी सारी बातें यूनानने भारतसे ही सीखी हैं। और तब वहाँसे उनका प्रसार सारे संसारमें हुआ। अरबमें यूरोप और यहाँसे जाकर प्रकाश फैला। वर्तमान भूगोल, इतिहास और पुराने चिन्होंकी खोज स्पष्ट-रूपसे प्रकट करती है कि भारतीय (हिन्दू) अपने देश भारतमें विद्या और कला-कौशलमें प्रवीण होकर अन्य देशोंमें उसका प्रचार करने गये थे। यूनानके प्राचीन इतिहाससे भी पता लगता है कि अपरिचित लोग पूर्वकी ओरसे जाकर वहाँ बसे थे। वे

अत्यन्त बुद्धिमान्, विद्वान् और कला-कुशल थे। उन्होंने वहाँ
विद्या और वैद्यकका प्रचार किया। वहाँके निवासियोंको सभ्य
अपना विश्वास-पात्र बनाया। ग्रंथकार एरियन और यूनानका इ
हास बताता है कि—“ जो लोग पूर्व दिशासे यहाँ यूनानमें आ
बसे थे, वे देवताओंके वंशज थे। उनके पास अपना निजका सो
बहुत अधिकतासे था। वे रेशमी कामदार दुशाले ओढ़ते थे, हा
दाँतकी वस्तुएँ प्रयोगमें लाते थे और बहुमूल्य रत्नोंके हार प
ते थे।” महाभारत ग्रंथसे भी यह प्रकट है कि कुरुक्षेत्रके महा प्र
यकारी संग्रामके पश्चात् भारतीयोंके कितने ही कुल पश्चिमकी
गये और यूनान, फेनीशिया, फिलस्तीन, कार्थेज, रूम और
आदि देशोंमें जा बसे। रूसके नोटविच नामक यात्रीको तिब्ब
‘ हीमिस ’ नामक मठमें ईसाका एक प्राचीन हस्त-लिखित जीव
चरित्र मिला है। वह पाली भाषामें है और उसकी दो बड़ी जि
हैं। उसमें लिखा है कि—“ ईसा इसराइलमें पैदा हुआ था
उसके माता-पिता गरीब थे। १३, १४ वर्षकी उम्रमें वह अपने
बापसे रूठ कर घरसे भाग निकला और भारतमें आया। यहाँ
राजगृह, काशी और जगन्नाथपुरी आदि स्थानोंमें घूमता रहा
आर्य्योंसे वेदाध्ययन करता रहा। इसके बाद उसने पाली भा
सीखी और बौद्ध हो गया। पर उसने अपने देशको लौट कर वा
नया ही धर्म चलाना चाहा। इसी झगड़ेमें उसे फाँसीकी सजा
गई।” इससे ज्ञात होता है कि ईसाई धर्म भी अन्य मतोंकी भाँ
भारतवर्षकी ही सामग्री है। Theogony of the Hin
(हिन्दूके देवताओंकी वंशावली) नामक पुस्तकके लेखक Co
jorns Jerna (काउन्ट जॉर्न्स जेर्ना) लिखते हैं कि—”
केवल हिन्दूधर्मका ही घर नहीं है, वरन् वह संसारकी सभ्य

दे भण्डार है। भारतीयोंकी सभ्यता क्रमशः पश्चिमकी ओर ईथो-
ा, ईजिप्त और फेनीशिया तक; पूर्वमें श्याम, चीन और जापान
; दक्षिणमें लङ्का, जावा और सुमात्रा तक और उत्तरकी ओर
रस, चाल्डिया और वहाँसे यूनान और रोम हिपरबोरियन्सके
नेके स्थान तक पहुँची।"

अब धीरे धीरे पश्चिमी विद्वान् इस बातको मानने लगे हैं कि
चीन भारत खूब उन्नत दशामें था और इसीने यूरोपमें तरह तरह-
ो विद्या, कला और बहुतसी अन्यान्य वस्तुओंका प्रचार किया था।
लिए डेलमार साहब "इन्डियन रिव्यू" नामक पत्रमें लिखते हैं—
पश्चिमी संसारको जिन बातों पर अभिमान है वे असलमें भारत
से ही वहाँ गई थीं। तरह तरहके फल, फूल, पेड़ और पौधे जो
स समय यूरोपमें पैदा होते हैं, सब हिन्दुस्थानसे ही वहाँ पहुँचे हैं।
सके सिवा, मलमल, रेशम, घोड़े, टीन, लोहा और शीशेका प्रचार
ी यूरोपमें भारतवर्षहीके द्वारा हुआ था। केवल यही नहीं किन्तु
ज्योतिष, वैद्यक, चित्रकारी और कानून भी भारतने ही यूरोपवालोंको
सिखाया था।" एक वार अध्यापक मैक्समूलरने अपने व्याख्यानमें
कहा था कि—"यदि कोई मुझसे पूछे कि वह देश कौन और कहाँ
है, जहाँ पर मनुष्योंने इतनी मानसिक उन्नति की हो कि वह उत्त-
मोत्तम गुणोंकी वृद्धि कर सका हो और जहाँ मानव-जीवन-सम्बन्धी
बड़ी बड़ी गूढ़ बातों पर विचार किया गया हो और जहाँ उनके
हल करनेवाले पैदा हुए हों? तो मैं यही उत्तर दूँगा कि "वह देश
भारतवर्ष है।" विस्तार-भयसे हम यहाँ पश्चिमी विद्वानोंकी अधिक
सम्मतियोंका उल्लेख नहीं कर सकते। पाठक गण स्वयं ही उनका
अनुमान कर लें।

सारांश यह कि समस्त भूमण्डलका गुरु भारत है।
"'हाँ' और 'ना' भी अन्य जन करना न जब थे जानते।
थे ईशके आदेश तब हम वेदमंत्र बखानते।
जब थे दिगम्बर रूपमें वे जंगलोंमें घूमते।
प्रासाद-केतन-पट हमारे चन्द्रको थे चूमते।"

—भारत भारती।

जब अन्य देशोंमें भारतीय-विद्यार्थी ईसा और हजरत मोह
साहब सभ्यताका शंख फूँक रहे थे उस समय तो हमारे भारत
उन्नति-भास्कर अस्ताचलके निकट पहुँच चुका था—उन्नति-गि
शिखरसे हमारे देशका पैर फिसल चुका था, वह अधोमुखी हो पर्व
नीचे लुढ़कता हुआ आ रहा था। उस समय उसे सँभालनेवा
तथा अनिरुद्ध पतनसे बचानेवाला कोई नहीं था। हाँ, अपने गुरु
गिरते देख कर ताली बजा कर हँसनेवाले शिष्य, लुढ़कते हुएको अ
ढकेलनेवाले स्वार्थी यवनोंका पदार्पण भारतमें हो चुका था। य
तत्कालीन, भारतकी साम्पत्तिक दशा, अन्न-धन आदिका भी व
आप लोगोंके आगे रखा जाये तो संभवतः आप उसे असंभव
देंगे और उस पर बड़ी कठिनतासे विश्वास करेंगे। मैं यवन-का
आरंभका वर्णन न करके आजसे केवल तीनसौ वर्ष पूर्व अथ
अकबरके समयका अन्नभाव आपके सम्मुख रखता हूँ:—

गेहूँ	४ आने	९ पाई	प्रतिमन	दालमूँग	०	७ आ०	२ पा०	प्रति
जौ	३ ,,	२ ,,	,,	शक्कर	१)रु	६ ,,	० ,,	,
[illegible]	३ ,,	५ ,,	,,	घृत	२),,	१० ,,	० ,,	,
	,,	९ ,,	,,	तेल	० ,,	१० ,,	० ,,	,
	८ ,,	० ,,	,,	प्याज	० ,,	२ ,,	५ ,,	,

उन दिनों एक महीने भर खूब आनन्दसे भरपट भोजन करनेमें ति मनुष्य, दस आने, छः पाई खर्च पड़ता था, जिसका लेखा स प्रकार है—

एक महीनेका भोजन।

	अकबरका समय	वर्तमान समय १९१८
गेहूँ	२० सेर मूल्य =)४॥	,, ६)
ाल मूँग	४ ,, ,,)८॥।	,, १)
ावल	५ ,, ,, -)	,, १)
क्कर	४ ,, ,, =)२॥	,, २)
घृत	४ ,, ,, ।)२॥	,, २)
		,, ७)
	योग ॥=)६।	योग १८)

यह खर्च एक अच्छे खानेपीनेवाले मनुष्यका है। निर्धन और म आयवाले मनुष्यका गुजर पाँच आने नौ पाईमें बखूबी होता । वर्तमान समयमें बहुत किफायत करने पर भी एक आदमीका ासिक भोजन-व्यय सात या आठ रुपयेसे किसी प्रकार कम नहीं सकता। यही कारण था कि अकबरके सैनिकोंका मासिक वेतन न या चार रुपये होता था, और उसीमें वे आनंद-पूर्वक बेखटके पना तथा अपने परिवारका पालन करते थे। कहते हैं—" लख- ऊ नगरका प्रसिद्ध इमाम-बाड़ा उस समय बना है जब कि भार- में बड़ा भारी दुर्भिक्ष था। उस समय गेहूँ एक रुपयेके २४ र थे।।

भारतकी प्राचीन सभ्यताके विषयमें मि० एम० लुई जेको लियर हब लिखते हैं:—

"Soil of anciant India, Cradle of humanit hail, hail, venerable and officient nurse whon centuries of brutal invosions have not ye buried under the dust of obilivion. Hail fathe land of faith, of love, of Poetry, and Scienc way we hail a rivival of thy post in ou western future."

अर्थात्—हे प्राचीन भारतभूमि, हे मनुष्य-जातिकी पालक, पूजनीय एवं निष्णात पोषिका, धन्य! धन्य!! तुम्हें शताब्दियों पाशविक आक्रमण आज तक नष्ट न कर सके! स्वागत, हे श्रद्ध प्रेम, कविता, विज्ञानके पितृलोक, स्वागत!! हम लोग अपने पाश्चा देशोंमें तुम्हारे भूतकालका पुनरुत्थान करें।"

"India, the mine of wealth! India i poverty! Indias starving amid heaps of gol does not afford a greater paradox; yet here we have India. Indias-like starving in th midst of untold wealth!!" —*Molcs Worl*

उक्त वाक्य प्रसिद्ध मोल्सवर्थका है। उक्त कथनका सारांश यह कि भारतभूमि धनकी खान है। इसमें उत्तम कोयला, उम्दा मिट्टीका तेल और उत्तम लोहा एवं लकड़ी है जिसे देख कर विदेशी लोगों मुंहमें पानी भर आता है। सोना, चाँदी, ताँबा, टीन तथा अन अनेक रत्नोंकी भी यहाँ कमी नहीं, तिस पर भी भारत भूखों मरे मि एच० हालेण्डने ठीक कहा है कि—"भारत खनि ारी एवं उद्योगका अपरिमित स्थान है। प्रकृतिने इ दिया है। ये पदार्थ केवल भारतके लिये ही पर्याप

हैं, बल्कि संसार भरके बाजारोंमें सुविधा और लाभके साथ जा सकते हैं। पर जब तक हम ऐसे उच्च भावके नवयुवक-रत्न न करें जो वकालत और नौकरी-पेशेकी तरह इसमें भी तन्मय तब तक भारतका असीम धन गुप्त ही रहेगा।"

एक जगह मि० वाल लिखते हैं कि—"यदि भारतवर्ष संसा- अन्य देशोंसे अलग कर दिया जाये या इसके उपजकी रक्षा का ये तो यह निश्चित बात है कि एक सुशिक्षित सभ्य जातिकी सारी आवश्यकताओंको भारत अपनी ही उपजसे पूरा कर सकता है।"

व्यापार

एक समय वह भी था, जब कि रोम, यूनान, चीन, जापान, मिश्र ईरान आदि देशोमें यहाँका माल जा कर आदर पाता था इतिहाससे पता लगता है कि "आजसे एक हजार वर्ष पूर्व इ देशका मिश्रके साथ वाणिज्य-सम्बन्ध था। इसी भाँति प्रायः पाँ हजार वर्ष पहले इस देशका बेबिलोनियाके साथ भी वाणिज्य सम्बन्ध था"। (इतिहास भारतवर्ष देखिए)। निबन्ध-संग्रहके पृष्ठ ७०में लिखा है कि:—"प्राचीन समयमें इस देशका व्यापार बहुत अच्छी दशामें था। यूरोपके कवियों, लेखकों और प्रवासियोंने इस देशकी कारीगरी, कला-कुशलता तथा वैभवकी खूब प्रशंसा की है। उस समय इस देशकी बनी वस्तुएँ दुनियाके सब भागोंमें भेजी जाती थीं; और वह अन्य देशोंकी वस्तुओंसे अधिक पसन्द की जाती थीं अकेले बंगाल प्रांतसे १५ करोड़ रुपयोंका महीन कपड़ा प्रति वर्ष विदेशोंको भेजा जाता था! पटनेमें ३३०४२६, शाहाबादमें १५९ ५०० और गोरखपुरमें १७५६०० स्त्रियाँ चरखों पर सूत कात कर ३५ लाख रुपये कमा लेती थीं। इसी प्रकार दीनाजपुरकी स्त्रियाँ ९ लाख और पुर्निया जिलेकी स्त्रियाँ १० लाख रुपयोंका सूत कातती थीं। सन् १७५७ ई० में जब लार्ड क्लाइब मुर्शिदाबाद गये थे, तब उसके सम्बन्धमें उन्होंने कहा था कि—"यह शहर लन्दनके समान विस्तृत, आबाद और धनी है; इस शहरके लोग लन्दनसे भी अधिक धनवान हैं।" श्रीयुत आर० सी० दत्तने लिखा है—"प्राचीन

नयमें यहाँकी शिल्पकारीकी वस्तुएँ संसारमें सर्वत्र बिकती थीं। नकी कारीगरीकी बगदादके हारूँ-रशीदके दरबारमें कदर होती थी। र उन्होंने प्रतापी शार्लमेन और उसके दरबारियोंको आश्चर्य-कित किया था। एक अँगरेजी कवि लिखता है कि ये लोग अपनी ाँखें फाड़ फाड़ कर बड़े आश्चर्यसे रेशमी तथा कारचोबीके उन स्त्रों तथा रत्नोंको देखते थे जो कि पूरबके दूर देशसे यूरोपके वीन बाजारोंमें आते थे।"

भारतीय कारीगरीकी प्रशंसामें बेन्स साहबने लिखा है:—" ढाकेका ना हुआ कपड़ा, देखने पर मालूम होता है कि मानो उसे देवता ओंने बनाया है। उसे देख कर यह नहीं मालूम होता कि वह मनु-ष्योंका बनाया हुआ है।"

देशी वस्त्रोंकी सूक्ष्मताका वर्णन करते हुए " शिशुपालवध " काव्यमें महाकवि माघने एक जगह लिखा है—

" छिन्नेष्वपि स्पष्टतरेषु यत्र स्वच्छानि नारीकुचमंडलेषु
आकाशसाम्यं दधुरम्बराणि न नामतः केवलमर्थतोपि।"

ढाकेकी मलमलका १० गज लम्बा, १ हाथ चौड़ा थान तौलने पर सिर्फ ८ तोले ४½ माशे वजनका निकला। यह थान घड़ी कारक अँगूठीके छिद्रमेंसे भली प्रकार आरपार हो जाता था। एक कारी-गरने अकबर बादशाहको मलमलका एक थान एक छोटीसी बाँसकी नलीमें रख कर नजर किया था। वह थान इतना बड़ा था कि उससे अम्बारी सहित सारा हाथी ढँका जा सकता था। पहले दिल्ली दरबारमें ढाकेसे सूत भेजा गया था; उस १५० हाथ लम्बे सूतका वजन केवल १ रत्ती था। ढाकेके रेजिडेण्ट साहबने १८४६ ई० में एक किताब लिखी थी। उसमें आध सेर रूईसे बने हुए २५० मील

लम्बे सूतका जिक्र है। ढाकेकी बनी मलमलका एक वस्त्र बनवा कर औरंगजेबकी पुत्रीने पहना था। तब उस समय औरंगजेब उस पर नाराज हुआ था। कारण यह था कि उसके सारे अंग दिखाई देते थे। बापको नाराज होते देख कर लड़कीने कहा—"कई तह करके तो मैंने इसे पहना है; इस पर भी यदि इसका बारीकपन दूर न हो तो मेरा क्या कुसूर है?"

भारतकी कारीगरीकी हद हो गई। भला ऐसे ऐसे सुर-दुर्लभ वस्त्र आदि विदेशोंमें क्यों आदर न पावें! उस समय भारतवर्ष लक्ष्मीका क्रीड़ा-स्थल था। स्वप्नमें भी भारतने दुर्भिक्षके दर्शन नहीं किये थे। पर विदेशी हाथोंमें पड़ कर भारतने अपनी स्वतंत्रताके साथ ही व्यापारको भी जलाञ्जलि देदी। यवनोंने इसे खूब कुचला। भुखमरेको जैसे अन्न मिलता हो उसी भांति यवनोंको भारत मिल गया था। बाप-दादोंने जैसे रत्नोंके स्वप्नमें भी दर्शन नहीं किये थे, वैसे बहुमूल्य रत्न वे भारतसे छीन छीन कर अपने देशमें ले गये। भारतको उन्होंने खूब ही लूटा, खूब ही मारा, कुछ कसर न रखी। इसी बीचमें अँगरेज व्यापारियोंकी दृष्टि इस मृतप्राय भारत पर पड़ी। उन्होंने इस कामधेनुको दुहना आरंभ किया—बस क्या था, भारतीय व्यापारकी जड़में ही कीड़ा लग गया। वह निरुपाय हो बैठ रहा।

कला-कौशलके साथ-ही-साथ लक्ष्मी भी रहती है। जब उनका अभाव हुआ तब विष्णुप्रिया लक्ष्मी भी भारतसे भाग कर यूरोपमें पहुँच गई। भारतका व्यापार नष्ट हो गया, देश अपना कला-कौशल और सम्पत्तिको दूसरोंके सपुर्द कर बैठा। हमारा समस्त व्यापार विदेशी व्यापारियोंके हाथमें चला गया। भारतमें व्यापार

कम हो गया, सो नहीं। भारतीय व्यापार कम हो गया—विदेशी भारतके व्यापारी बन गये। पूर्वापेक्षा अब व्यापारमें उन्नति है, पर भारतको उससे अत्यन्त हानि है। व्यापारमें वृद्धि है, पर भारतकी उसमें एक फूटी कौड़ी भी नहीं। रेल, तार, ट्राम, सोना, चाँदी, मिट्टीका तेल, कोयला, सन, ऊन, नील, चाय, कहवा, कागज आदिके कारखाने सभी विदेशियोंके हैं। यदि ये ही कारखाने भारतीयोंके होते तो आज इस प्रकार भारत दुर्भिक्षके फन्देमें न फँसता। यदि भारतीय कुछ कर रहे हैं तो दलाली मात्र। कारखानोंके मालिक प्रायः अँगरेज हैं। उनमें आटा पीसना, रूई दबाना, मशीनें पोंछना प्रभृति कार्य हम अल्प वेतन पर करते हैं और करोड़ों रुपयोंका लाभ उठाते हैं वे। भारतमें जिन अँगरेजोंने कारखाने खोल रखे हैं वे बहुत लाभ उठाते हैं। वे काम भी खूब लेते हैं, क्योंकि भारतीय गोरे चमड़ेको अपना राजा मानने लगे हैं; चाहे वह व्यापारी हो या यूरोपका चमार। बस, उसे देखते ही उनके हाथ-पैर काँपते हैं। अतएव यूरोपीय व्यापारियोंको अच्छे काम करनेवाले, हट्टेकट्टे, बलवान सस्ते भारतीय मजदूरोंसे बढ़कर मजदूर उनके देशमें नहीं मिलते; इस कारणसे भी बहुतसे विदेशी व्यापारी भारतमें आ जमे हैं और भारतसे अगणित द्रव्य अपने देशमें भेज रहे हैं।

इंग्लैण्डके मजदूर भारतीयोंसे महँगे हैं, इसका प्रमाण भारतमें ही सर्वत्र देखनेमें आता है—यदि उच्च शिक्षित बाबू रामलाल जिनकी अवस्था २५।२६ वर्ष की है, २०) रु० मासिक पर ई० आई० आर० रेलवेके इलाहाबाद स्टेशन पर टिकट कलक्टर हैं तो उनका असिस्टेन्ट मि० टेनीसन जो १५।१६ वर्षका छोकरा है, ४०) रु० मासिक पाता है। वास्तवमें वह हमारे रामलालसे अयोग्य है। उसकी

मातृभाषा अँगरेजी है, अतः वह बोल लेता है, परन्तु लिखते
'Ink' को 'Inc' लिखेगा। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि
मजदूर महँगे मिलते हैं। अस्तु अब हम भारतके
सूचीमें प्रान्तोंके अनुसार यह दिखलावेंगे कि भारतवासियोंके
भारतका व्यापार है, या विदेशियोंके हाथमें ?

प्रान्त,	भारतीयोंके हाथमें,		विदेशियोंके हाथमें।	
			४३७	कारखाने
वङ्गाल	१४४	कारखाने	१९३	"
बिहार ओड़ीसा	१७०	"	१७८	"
संयुक्त प्रान्त	१०४६	"	६१८	"
बंबई	४४२	"	१२४	"
मद्रास	५३	"	२५	"
पञ्जाब	२२	"		
अजमेर मारवाड़ आसाम मैसोर	६०	"	५६५	"

जहाँ आप भारतीयोंके हाथमें कारखानोंकी अधिक संख्या दे
कर प्रसन्न होते हैं, वह प्रसन्नता प्रकट करनेका स्थल नहीं है।
कि उस संख्याको छापेखाने, कोयले और रुईके कारखानोंने बढ़
दिया है। भारतीय अधिकांश ऐसे ही कारखानोंके स्वामी हैं, कि
बढ़िया बढ़िया सारे कारखानोंके स्वामी विदेशी सज्जन ही हैं
भारतवर्ष कम्पनियोंके लिहाजसे बहुत पीछे है। अन्य देशोंके सम्मु
हमारे देशको अपना मस्तक ऊँचा करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं है
यों तो हमारा देश कम्पनियोंका भंडार है। जिसके पास ४ जो

टाँवें, २ पैसेके २ शीशे, ११२ दवात, २१४ पेन्सिलें हैं यही अपनी फ़ानका " वर्मन एण्ड कम्पनी " आदि अनेकों अच्छे अच्छे नाम रख कर दुनियाको छटनेका जाल फैला बैठता है। जिस देशमें बुद्धू नाई, पूरन तेली तथा पन्ना धोबी भी अपनी दूकानोंका नाम 'कम्पनी' रख कर लोगोंको धोखा देते हैं, भला वहाँ कम्पनियोंका टोटा क्यों कर हो सकता है। कई धूर्त लोग अपने नोटपेपर, कार्ड, लिफ़ाफ़े, चिट आदि चटक मटकदार छपवा कर लोगोंको धोखा दिया करते हैं। कई अपने नोटपेपरों पर " Patronized by the Rajahs and Maharajas of Indio भारतीय राजा और महाराजाओंसे संरक्षित " छपवा लेते हैं। उनसे यदि उनके संरक्षक महाराजका नाम पूछिए तो बस उत्तर ही नदारद। जिसे दादकी दवाई और दाँतका मञ्जन बनाना आया कि उसने भी एक कम्पनी बना ली; कपूर, पीपरमेंट, अजवाइनका फूल मिला कर पेनकिलर, पीयूषसिंधु, अमृतबिंदु सुधासागर नाम रख कर एक कम्पनी बना ली। इत्र-कंपनी, तेल-कम्पनी, बाल उड़ानेके साबुनकी कम्पनी, बच्चोंके खिलौनेकी कम्पनी भारतमें अगणित हैं। पर मेरा मतलब इन चोर और सत्यानाशिनी कंपनियोंसे नहीं है। ये कम्पनियाँ भी भारतके व्यापारको बिगाड़ कर लोगोंमें अविश्वास उत्पन्न कर रही हैं। पाठक स्मरण रखें।

हमारे देशमें सन् १९०५ में १७२८ कंपनियाँ थीं। उसी वर्ष इंग्लैण्डमें ४०९९५ थीं। भारतीय कंपनियोंका मूलधन २,८०,००,००० पाउण्ड और इंग्लैण्डकी कम्पनियोंका मूलधन २,००,००,००,००० पाउण्ड था। अर्थात् भारतसे २४ गुनी अधिक कम्पनियाँ अकेले इंग्लैण्डमें हैं और उनका मूलधन ७१ गुणा अधिक है।

ये तो बड़े देश हैं; पर तुच्छ देश वेल्जियम, नीदरलैण्डस्, ‍
लैण्ड, डेन्मार्क और कलका,होश सँभाला जापान भी भारतसे आ

रूसके अर्थ-सचिव मि० वार्टने एक बार कहा था कि:-"
असली युद्ध आरंभ नहीं हुआ है। इस वर्तमान यूरोपीय मह
अन्त हो जाने पर असली युद्ध आरंभ होगा। उस महायुद्धका
भयंकर व्यापार युद्ध होगा। इस भयंकर आर्थिक युद्धमें
साथ किसी प्रकारकी रिआयत नहीं होगी। जिस देशसे जित
सकेंगे वह उतने ही रक्षक एवं घातक उपाय करेगा। योरुपमें
युद्धकी मोरचाबन्दी अभीसे आरंभ हो गई है। यूनाइटेड
अधिक उत्साहसे इसका अभ्यास आरंभ हो गया और व्यूह
हो रही है। उसने विदेशोंके साथ अपने व्यापारको तरक्की दि
लिए एक "अमेरिकन इन्टरनेशनल कॉरपरेशन" नामक वृह
स्थापित किया है। यूरोप भी अमेरिकाकी भाँति सावधान
यूरोपकी अधिकांश प्रजा इसी चिंतामें मग्न है कि युद्धके बाद
व्यापार किस भाँति चलाना चाहिए। इंग्लैण्ड भी सावधान
वह इस भयंकर युद्धके लिए अपना भविष्य क्षेत्र तैय्यार कर रह
प्रत्येक देशमें हमारा माल किस प्रकार सर्वोपरि हो, इस व
तैय्यारीमें वह लगा हुआ है। उसमें उसका उद्देश्य अपना
और दूसरोंको नुकसान पहुँचाना है। इधर उस जपानकी ओ
देखिए जिसने युद्धारंभसे ही "भज कलदारं" आरंभ कि
और युद्धके अन्त होने पर अधिक पैसे पैदा करेगा। उसीने
यूरोपीय महासमरसे लाभ उठाया है। उसने अपने व्यापारी
खूब बढ़ा लिये हैं। जापानने ४० जहाज तैयार कराये हैं, जि
१३ सात हजार टनसे अधिकके, ३ पाँच हजार टनके, १७

र टनके और ७ तेरह तेरह हजार टनके हैं; और ये अमेरिकाके व्यापार करनेके लिये बने हैं। परन्तु भारतने क्या किया? तको स्मरण रखना चाहिए कि अन्य देश व्यापारमें चढ़-बढ़ हैं और उस पर भयङ्कर आक्रमण होनेवाला है। यदि भारतने ड़ा नहीं तैयार किया तो उसे अन्य हथौड़ोंके लिये एरण बनना गा। इस युद्धने व्यापारके उस विशाल क्षेत्रको जिसे देख ही सकते थे, प्रत्यक्ष कर दिखाया है। भारतको औद्योगिक उन्नति नेका अच्छा अवसर मिला है, इसे व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। ा सुसमय बार बार नहीं आता है। हमें संसारके साथ होना हिए और उसीकी भाँति आगे कदम बढ़ाना चाहिए। साधारण श, कौशल एवं कृषिकार्यमें भी सुधार होनेकी आवश्यकता है। तो भारतीय सरकार भारतवर्षकी औद्योगिक उन्नतिकी चेष्टा छले ३० वर्षोंसे कर रही है; परन्तु एक तो इतना बड़ा शाल देश, जहाँ सब प्रकारकी औद्योगिक उन्नतिकी सामग्री तथा म्भावना है, दूसरे आर्थिक अवस्था इतनी हीन कि अपनी उन्नतिके ये निःशक्त और पराधीन, अत एव वे चेष्टायें सर्वथा अपर्याप्त थीं; योंकि वे केवल कुछ दूरदर्शी ऑफिसरोंका प्रयत्न स्वरूप थीं। रकारकी अभिमत किसी व्यापक नीतिका फल नहीं थीं। सरकारके हाँ तो Laissez faire सिद्धांतका राज्य था अर्थात् सरकारको न बातोंसे कोई सरोकार नहीं, सबको अपने अपने व्यवसायकी न्नति अवनति करनेकी पूर्ण स्वतंत्रता है। इसी सिद्धान्तके विपरीत र्मनी, जापान आदिमें सरकार उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिका भरपूर यत्न करती है। परिणामतः भारतवर्षकी आर्थिक पराधीनता और र्बलता बड़ी भयंकर हो रही थी। भारतवासियोंके इस पर विल- नेका फल समझिए, अथवा युद्धकी चेतावनीका। मई सन् १९१६

ई० में सरकारने सर टी० एच० हालैंडके सभापतित्वमें औद्यो
कमीशन बैठा कर उसके सामने यह प्रश्न रक्खे:—

(अ) क्या व्यवसाय अथवा उद्योग-धन्धोंमें भारतीय पूँ
उपयोगके नये लाभदायक मार्ग बतलाए जा सकते हैं?

(ब) क्या औद्योगिक उत्थानमें सरकार लाभ-पूर्वक सहायत
सकती है? यदि ऐसा है, तो किस प्रकारसे:—

(१) वैज्ञानिक परामर्शके द्वारा?

(२) विशेष विशेष उद्योग-धन्धोंको व्यापारिक ढँग पर चल
योग्य दिखला कर?

(३) आर्थिक सहायता, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रीतिसे पहुँ
कर?

(४) या अन्य किसी रीतिसे जो सरकारकी वर्तमान नीति
विरुद्ध न हो?

कमीशनको सरकारकी व्यापार-नीति पर विचार करनेका अ
कार नहीं था। यद्यपि कमीशनकी रिपोर्ट विलम्बसे निकली है
उसके लिये उत्सुकता भी बहुत थी कि जिससे युद्धका अवसर हा
न निकलने पावे; परन्तु कार्य बड़ा था। तथा कमीशनके प्रस्तावों
कार्य-रूपमें परिणत करनेके लिये अब भी बड़ा अच्छा अवसर है।

औषधि बतलानेके पूर्व निदानकी आवश्यकता होती है। भार
वर्षकी औद्योगिक अवस्था इतनी हीन क्यों है? इसके कमीश
ये कारण निश्चित किये हैं:—

(१) कोई समय ऐसा अवश्य था जब भारतवर्षके उद्योग-
उन्नतिके शिखर पर थे। उस समय यूरोप-निवासी असभ्य थे
सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीमें भी जब यूरोपीय जातियाँ य

ार करनेके लिये आई हमारी अवस्था उनसे कम नहीं थी,
चित् अच्छी ही थी। परन्तु जब यूरोपमें 'औद्योगिक विप्लव'
० के पश्चात् प्रारम्भ हुआ उस समय वहाँके मध्यम श्रेणीके
वैभवशाली थे तथा राजनैतिक और धार्मिक स्वतंत्रताके लिये
करते करते औद्योगिक युद्ध करने योग्य शक्ति और उत्साह
ें उत्पन्न हो गया था। उसी समय भारतवर्ष आपसके कलह
राजनैतिक कुचक्रोंमें फँसा हुआ था।

(२) पश्चिमीय देशोंकी वर्तमान औद्योगिक अभ्युत्थानकी जड़
के कच्चे और पक्के लोहेका शिल्प है। औद्योगिक विप्लवका
भ शिल्पमें वाष्प-यंत्रोंके प्रयोगसे प्रारम्भ हुआ। जब औजारोंकी
ह मशीनें काममें आने लगीं तब यूरोपमें लोह-शिल्पकी स्थिति
ी थी कि एक ही नापके कल-पुर्जे बनने लगे, जिससे उनके प्रचारमें
ा सुभीता हुआ। लोहेके काममें भारतवर्ष बहुत हीन अवस्थामें
। यद्यपि यहाँ सन् १८७५ ई० से लोहा (Pigiron) निकाला जा
ा है, तथापि उससे वस्तु-निर्माणका कार्य केवल सन् १९१४
में आरम्भ हुआ। सन् १९१३-१४ ई० में रेलकी पटरियाँ,
हेकी चद्दरें आदि २४ करोड़का लोहा भारतवर्षमें आया।
ीनें, मोटरकार आदि इसके अतिरिक्त हैं।

(३) ईस्ट इन्डिया कम्पनीने कुछ उद्योग स्थापित करनेकी चेष्टा
थी—उदाहरणार्थ दक्षिणमें लोहेका कारखाना था; परंतु वह सफल
हुई। यह विचार किया गया कि यह उष्ण देश जहाँ भूमि उप-
ाऊ है, केवल कृषि-कार्यके योग्य है, कला-कौशलके नहीं। फिर
ब यह सिद्धान्त भी ढीला हुआ तब उद्योगकी उन्नतिके लिये जो
न्ध किया गया वह केवल व्यवसायका मार्ग साफ कर देना और

आने-जानेकी सुविधायें कर देना था। परन्तु इस देशमें लोह
न होनेके कारण केवल कच्चे मालका निर्यात (बाहर भेजा ज
और बनी वस्तुओंके आयातकी (बाहरसे आना) वृद्धि इससे
। (४) भारतवर्षकी पूँजी अत्यन्त लाजवती है, जो घरोंके
छिपी पड़ी रहती है। भारतवासी केवल व्यवसाय, लेन-देन
अन्य पुराने धन्धोंमें रुपया लगाते हैं, जिनमें जोखिम नहीं है
कुछ उद्योग-धन्धे अभी तक स्थापित हुए हैं वह विदेशियोंके उ
हुए हैं।

(५) भारतवर्षमें निपुण इंजीनियरों और शिल्पविज्ञान-वेत्ता
अभाव है। इस विषयमें वह विदेशियों पर आश्रित है। युद्धके
में यह पराधीनता तथा मशीनों आदिके यहाँ बननेकी आवश
सबको स्पष्ट हो गई है।

(६) राज्यकी ओरसे दो त्रुटियाँ चौथे और पाँचवें का
उत्तेजक हुईं। भारतकी सरकारका खरीदका कोई विभाग यहाँ
है। वह इंडिया आफिसके (भारत-मंत्रीका विभाग) द्वारा इं
खरीद करती है। फिर विज्ञानकी शिक्षाका प्रबन्ध न करना
रकी एक बड़ी भयंकर भूल है।

सारांश हमारे देशकी औद्योगिक-व्यवस्था सर्वथा अपू
सामग्री, पूँजी और लादनेवाले सबके लिये हम विदेशियों पर
हैं। माननीय मालवीयजीको अपने भिन्न नोटमें तीसरे का
सम्बन्धमें कुछ और भी वक्तव्य है। एक तो वह यह सिद्ध क
कि इंग्लैण्डने भारतीय आयात माल पर टैक्स बिठला कर औ
ण्डिय कम्पनीके राजनैतिक प्रभुत्वका उपयोग यहाँके उद्य
करनेमें करके वहाँके स्वार्थी वणिकोंको लाभ उठाने दिया

ई कम्पनीके डायरेक्टर-संघने जान-बूझ कर भारतवर्षके जहाजी
ो नष्ट कर दिया। दूसरे लार्ड डलहौसीके रेल-निर्माणका
अभिप्राय अँगरेजोंके व्यापार-व्यवसायकी उन्नति करना था।
वर्षके औद्योगिक अधःपतनके यह भी कारण हैं।

निज और उद्भिज कच्चे पदार्थोंसे किन किन वस्तुओंके प्रस्तुत
की महान् आवश्यकता है और किन रासायनिक चीजोंके
ये विना औद्योगिक उन्नति असम्भव है यह बतला कर कमीशन-
खा है कि शांति और युद्ध दोनोंके लिये आवश्यक उद्योगोंका
व भयानक है। जब तक उनकी सृष्टि न होगी भारतवर्ष शांतिके
न मुनाफेसे वंचित रहेगा। युद्धके समय वर्तमान धन्धोंके बन्द
जानेका डर रहेगा और देशकी रक्षा बड़े खतरेमें पड़ जायगी।

अत एव कमीशनने दो बड़े बड़े सिद्धान्त मान कर उनके अनुसार
ने भिन्न भिन्न प्रस्ताव किये हैं:—(१) भविष्यमें सरकारको भारत-
औद्योगिक उत्थानके लिये स्वयं चेष्टा करनी चाहिए। और वह
इस उद्देश्यको सम्मुख रख कर कि देश मनुष्य और सामग्रीके
यमें स्वावलम्बी हो जाय।

(२) यह बात तब तक असम्भव है जब तक इसके लिये
स राज्य-व्यवस्थाका प्रबन्ध न हो, और जब तक विश्वसनीय
निक सम्मतिदाताओंका पूर्ण प्रबन्ध न हो।

इन्हीं सिद्धान्तोंकी शाखा-प्रशाखा-रूप कमीशनने निम्न लिखित
ायों पर विचार करके अपनी सम्मति प्रगट की है:—

(१) भारतवर्षकी वर्तमान औद्योगिक स्थिति क्या है और
भावनायें क्या हैं। भारतवर्ष वर्तमान कालकी उद्योग-गतिके
ी साथ नहीं चल रहा है। यहाँकी अधिकांश जन-संख्या पुराने

ढंगोंसे खेती करनेमें लगी हैं, जिनसे कठिनतासे जीवन-नि-के योग्य फसल पैदा होती है। जो कुछ कृषिमें अन्तर हुआ है आयात और निर्यात व्यापारका प्रभाव है, न कि औद्योगिक वर्तनका।

(२) कुछ स्थानों—जैसे बम्बई बंगालके कोयलेकी उ-बिहारके नीलके जिलों आदि—में पश्चिमीय ढंगोंका प्रचार हुआ परन्तु वहाँ भारतीय मजदूरोंकी कमी, उनकी अक्षमता सर्वत्र जाती है और निगरानी करनेके लिये योग्य भारतवासी नहीं मि-

(३) उद्योगोंकी कच्ची सामग्री पर कमीशनने विचार किया उद्भिज सामग्रीमें अमेरिकन कपासकी कृषि बढ़नी चाहिए। जितनी भूमिमें यहाँ बोया जाता है अन्यत्र नहीं बोया जाता; वह अच्छी नस्लका नहीं होता। बोनेका ढंग सुधारना चाहिए छोटे छोटे खत्तोंमें बोये जानेके कारण एक भी फेक्टरीका कठिनाईसे होता है। तिल बहुत होता है। परन्तु कोल्हू उन्नति होना आवश्यक है। अभी तो अधिकतर कच्चा माल विदे-को भेज दिया जाता है। चमड़ेका धंधा देहातके चमार बु-बुरी तरहसे करते हैं। उनके लिये यह कहा जाता है कि वे अ-खालको बुरा चमड़ा बना देते हैं। चमड़ा बनानेकी फेक्टरियाँ खोल चाहिए। कमानेके कामके पदार्थ भारतवर्षमें अच्छे और भाँतिके होते हैं। अभी बबूल, अवारमकी छाल काममें आती है परन्तु म्यूनीशन बोर्ड अन्य पदार्थोंका गुणान्वेषण कर रहा है। यहाँ खाल क्रोम चमड़ेके बहुत योग्य होती है। यहाँ जितनी खाल होती है उतनी खर्च नहीं होती है। युद्धके पूर्व अधिकांश अव-जर्मन-व्यापारियोंके हाथमें था।

ौद्योगिक सुधारमें सच्चे बाधक हमारे देशके लखपती करोड़पती
हैं। उनकी कंजूसी भी भारतको बर्बाद करनेमें बड़ी सहायता
दी है, क्योंकि वे अपने धनको अपनी छातीके नीचे लेकर बैठे
रहना ही पसन्द करते हैं। उसे व्यापारमें लगा कर अपनी एवं
देशकी पूँजी वे नहीं बढ़ाते। सच पूछिए तो ईश्वरने बन्दरके हाथमें
उस्तरा दे दिया है। उन्हें धनका सदुपयोग करना ही नहीं आता।
विवाह, रंग, विवाह आदि कार्योंमें वित्तसे अधिक धन लुटानेको वे
तैयार हैं, किंतु व्यापार तथा कला कौशलमें अपनी कौड़ी लगाना वे
ब्रह्महत्या एवं गोहत्यासे भी गुरुतर पाप समझते हैं। इसके विरुद्ध
यूरोपके धनपति अपने घरका सामान बेच कर भी अपने रुपयोंका
सदुपयोग करते हैं और हमारे देशको दरिद्री बनाते है। वहाँसे प्रति-
वर्ष अरबों रुपयोंका सस्ता और उम्दा माल भारतमें आकर खपता
है। वह रुपया यूरोपमें पहुँच जाता है और भारत अपनी पूँजी
विदेशोंको देकर कंगाल होता जाता है। इस दोषका एक बड़ा भारी
भाग हमारे कंजूस धनपतियोंको दिया जा सकता है। हमारे ऐसे
मुफ़्तखोर धनवानोंका जीवन नीरस और निरुद्देश्य होता है। वे अपने
पेटमें खुश हैं, उनको दूसरोंके दुःखसे क्या प्रयोजन। परन्तु उन्हें
यह तो निश्चय मान लेना चाहिए कि उनकी भावी सन्तान, उनके इस
कुविचार एवं अदूरदर्शिताके कारण बिना अन्नके जठर-ज्वालासे भस्म
हो जायगी। जिस धनको अपनी छातीके नीचे रख कर आज वे
फूले नहीं समाते, वह क्या उनका है? कदापि नहीं। देखिए:—

"..
लक्ष्मी स्थिरा न भवतीति किमत्र चित्रम्,
एतात्प्रपश्यति घटाञ्जल यन्त्रचक्रे।
रिक्ता भवन्ति भरिता भरिताश्च रिक्ता।"

इस संसारमें जन्म लेकर मर जाना ही इस जीवनका उद्देश नहीं

"Life is real life is earnest!
and the grave is not its goal;
Dust thou art to dust returenst,
was not spoken of the soul."

जीवन सत्य है, जीवन हेतुमय है। स्मशान उसका अन्त है। मनुष्य देह मिट्टीका बना हुआ है और एक दिन उसीमें जायगा। आत्मा अमर है। लार्ड एव्हबरीने कहा है कि—

"Life is not a bed of roses, neither ne[illegible] it to be a field of battle."

अर्थात्—जीवन पुष्पोंकी शय्या नहीं है और न उसे संग्रामके बनानेकी ही आवश्यकता है।

"Live to some purpose make thy life.
A gift of use to thee
A joy, a good, a golden hope.
A heavenly argosy."

इस मानव-जीवनका कोई-न-कोई हेतु अवश्य होना चाहिए। ईश्वरकी महती दयासे हम धनवान हैं तब हमें अपने धनका सदुप[illegible] अवश्य करना चाहिए। आजकल पैसेका उपयोग करना विदे[illegible] लोगोंने भली भाँति सीख लिया है। क्या किसी एक भारतीयका स[illegible] है कि जो ऐसा एक कारखाना खोले जिसमें पाँच लाख मनु[illegible] काम करते हों! दो दो लाख घोडेकी शक्तिवाले इंजिन चल[illegible] हों! और जो ४० हजार टन केल्सियमकार्बाइड पैदा कर[illegible] क्या हममेंसे कोई ऐसे वृहत्कार्यको अपने हाथमें लेने[illegible] [illegible]प्नमें भी साहस कर सकता है? जाने दीजिए, हम न स[illegible]

ा हुआ, हम अपने बालकोंको ही इस योग्य तैय्यार कर रहे हैं!
वे भी निरे वछियाके ताऊ ही बनाये जा रहे हैं। भारतकी
विचित्र है। स्मरण रहे यदि इतने पर भी हमें होश न आया
नारी मृत्यु हमारे सिर पर नाच रही है, यह निश्चय कर लेना
र। ये हमारे कंजूस धनी और यहाँ फैली हुई अविद्या दोनों
दिन भारतका नाम इस संसारसे मिटा देना चाहते हैं।

कृषि

" कृषिरन्यतमो धर्म्मो न लभेत्कृषितोन्यतः—
न सुखं कृषितोन्यत्र यदि धर्म्मेण कर्षति ।"

——पाराशर ।

हमारे पूर्वज महर्षियोंने भारतके लिये कृषिकार्य ही सर्वोत्तम माना है। उक्त पाराशरजीके वाक्यसे सिद्ध होता है कि खेतीमें जो लाभ है वह किसी अन्य धन्धेमें नहीं । तभी तो-"उत्तम खेती मध्यम बान निकृष्ट चाकरी भीख निदान " की कहावत हमारे देशमें प्रचलित है। सारांश यह कि हमारे पूर्वजोंने संसारमें सबसे उत्तम कर्म खेतीको माना है। परन्तु यदि प्रत्येक कार्य उत्तमतासे किया जाय, तभी वह उत्तम माना जाता है । केवल "उत्तम उत्तम" चिल्लानेसे ही वह उत्तम नहीं हो सकता । मेरे विचारसे कृषिमें उतनी अधिक बुद्धिकी आवश्यकता नहीं जितनी कि व्यापारमें दरकार है। भारत जैसे कृषि-प्रधान देशके लिये कृषिकार्य सर्वोत्तम है अवश्य, किंतु वर्तमान कालमें वह भी पूर्ण अधोगतिको पहुँच चुका है । हमारा देश कृषिके पीछे बुरी तरहसे पड़ गया । प्रति शत ८० मनुष्य खेती करने लगे । मि० लिस्ट (List) इस विषयमें लिखते हैं कि:—

" A nation which passes merely agriculture and merely the most indispensable industries, is in want of the first and most necessary division of commercial operations among its inhabitants and of the most important half of its productive powers."

अर्थात्—जो जाति केवल कृषि पर ही भरोसा रखती है अथवा
वल ऐसे ही वाणिज्य करती है जिनके बिना उसका किसी प्रकार
नर्वाह नहीं है, वह अपनी आधी उत्पादक शक्तिसे वंचित रहती है।"

यदि किसीके कानमें यह बात पहुँचे कि भारतीय प्रति शत ८०
कृषिकार्य करते हैं तो आश्चर्यसे वह पूछ उठेगा कि क्या वहाँ अन्न
सस्ता बिकता है? या वहाँके लोग कुंभकर्णकी भाँति बहुत अधिक
भोजन करते हैं! नहीं, इतना होने पर भी यहाँ रात-दिन दुर्भिक्ष
तांडवनृत्य कर रहा है। हजारों भारतीय नित्य क्षुधासे अपने प्राण
परित्याग करते हैं। इसका कारण क्या है, यह हम आगे चल कर
बतावेंगे।

हमारा देश कृषिको उत्तम समझ कर उसीकी ओर बिना सोचे
समझे झुक पड़ा, अत एव निरा मूर्ख और पुराने ढर्रेका हो गया।
जो देश व्यापार-कार्यमें संलग्न है उनकी बुद्धिकी प्रखरता, शारीरिक
उन्नति, आर्थिक उन्नति और स्वतन्त्रता कितनी बढ़ी हुई है, जरा
ध्यानसे देखिए। अन्यान्य देशोंमें व्यापारके लिये जहाजी बेड़े बनते
हैं और उनकी रक्षाके लिये सैनिक बेड़े बनते हैं। कच्चा माल प्राप्त
करनेके लिये नये देश और नई नई बस्तियोंकी आवश्यकता पड़ती
है, जिन पर अधिकार जमानेके लिये युद्धकी तैय्यारी करनी पड़ती
है। अत एव व्यवसाय-प्रधान देश अपनेको खूब उन्नत कर सकता
है। व्यवसायकी उन्नतिसे ही इंग्लैंड उन्नत हुआ और भारतने इसे
छोड़ा तो अवनतिको अपना लिया।

क्या किया जाय, यहाँकी दशा ही विचित्र है। लगभग २०० वर्षोंसे
विदेशी व्यापारियोंकी धींगा-धींगी और राजनैतिक परिवर्तनोंके
कारण यहाँका व्यवसाय तो मिट्टीमें ही मिल गया है। आत्मरक्षाके

कृषि

"कृषिरन्यतमो धर्म्मो न लभेत्कृषितोन्यतः—
न सुखं कृषितोन्यत्र यदि धर्म्मेण कर्षति।"

—पाराशर।

हमारे पूर्वज महर्षियोंने भारतके लिये कृषिकार्य ही सर्वोत्तम माना है। उक्त पाराशरजीके वाक्यसे सिद्ध होता है कि खेतीमें जो लाभ है वह किसी अन्य धन्धेमें नहीं। तभी तो—"उत्तम खेती मध्यम बान निकृष्ट चाकरी भीख निदान" की कहावत हमारे देशमें प्रचलित है। सारांश यह कि हमारे पूर्वजोंने संसारमें सबसे उत्तम कर्म खेतीको माना है। परन्तु यदि प्रत्येक कार्य उत्तमतासे किया जाय, तभी वह उत्तम माना जाता है। केवल "उत्तम उत्तम" चिल्लानेसे ही वह उत्तम नहीं हो सकता। मेरे विचारसे कृषिमें उतनी अधिक बुद्धिकी आवश्यकता नहीं जितनी कि व्यापारमें दरकार है। भारत जैसे कृषि-प्रधान देशके लिये कृषिकार्य सर्वोत्तम है अवश्य, किंतु वर्तमान कालमें वह भी पूर्ण अधोगतिको पहुँच चुका है। हमारा देश कृषिके पीछे बुरी तरहसे पड़ गया। प्रति शत ८० मनुष्य खेती करने लगे। मि॰ लिस्ट (List) इस विषयमें लिखते हैं किः—

"A nation which passes merely agriculture and merely the most indispensable industries, is in want of the first and most necessary division of commercial operations among its inhabitants and of the most important half of productive powers."

अर्थात्–जो जाति केवल कृषि पर ही भरोसा रखती है अथवा केवल ऐसे ही वाणिज्य करती है जिनके बिना उसका किसी प्रकार निर्वाह नहीं है, वह अपनी आधी उत्पादक शक्तिसे वंचित रहती है।"

यदि किसीके कानमें यह बात पहुँचे कि भारतीय प्रति शत ८० कृषिकार्य करते हैं तो आश्चर्यसे वह पूछ उठेगा कि क्या वहाँ अन्न सस्ता बिकता है? या वहाँके लोग कुंभकर्णकी भाँति बहुत अधिक भोजन करते हैं! नहीं, इतना होने पर भी यहाँ रात-दिन दुर्भिक्ष तांडवनृत्य कर रहा है। हजारों भारतीय नित्य क्षुधासे अपने प्राण परित्याग करते हैं। इसका कारण क्या है, यह हम आगे चल कर बतावेंगे।

हमारा देश कृषिको उत्तम समझ कर उसीकी ओर बिना सोचे समझे झुक पड़ा, अत एव निरा मूर्ख और पुराने ढर्रेका हो गया। जो देश व्यापार-कार्यमें संलग्न है उनकी बुद्धिकी प्रखरता, शारीरिक उन्नति, आर्थिक उन्नति और स्वतन्त्रता कितनी बढ़ी हुई है, जरा ध्यानसे देखिए। अन्यान्य देशोंमें व्यापारके लिये जहाजी बेड़े बनते हैं और उनकी रक्षाके लिये सैनिक बेड़े बनते हैं। कच्चा माल प्राप्त करनेके लिये नये देश और नई नई बस्तियोंकी आवश्यकता पड़ती है, जिन पर अधिकार जमानेके लिये युद्धकी तैय्यारी करनी पड़ती है। अत एव व्यवसाय-प्रधान देश अपनेको खूब उन्नत कर सकता है। व्यवसायकी उन्नतिसे ही इंग्लैंड उन्नत हुआ और भारतने इसे छोड़ा सो अवनतिको अपना लिया।

क्या किया जाय, यहाँकी दशा ही विचित्र है। लगभग २०० वर्षोंसे विदेशी व्यापारियोंकी धींगा-धींगी और राजनैतिक परिवर्तनोंके कारण यहाँका व्यवसाय तो मिट्टीमें ही मिल गया है। आत्मरक्षाके

लिये वर्तमानमें यदि कोई भरोसा है भी तो वह केवल कृषि है। तब भी कोई हानि नहीं, कच्चे मालके लिये अन्न भी हमारे पास सामा. हैं। हिसाब लगानेसे मालूम हुआ है कि हममेंसे फी-सदी ८० का निर्वाह कृषिके द्वारा होता है। कितने आश्चर्यकी बात है कि ... देशमें सौ पीछे ८० आदमी कृषिकार्यमें निरत हों वहाँ कृषक समेत सौका भी गुजर न हो सके!! और विलियम डिग्बी (William Digby) के कथनानुसार सन् १७९७ से १९०० ई० तक अर्थात् १०७ वर्षोंमें जितने युद्ध हुए हैं उनमें सब मिला कर ५० लाख मनुष्य भी नहीं मरे, किन्तु दुर्भाग्य है कि उतने ही समयमें अन्नके बिना तीन करोड़ पच्चीस लाख भारतीय आत्माओंने तड़प तड़प कर शरीर त्याग किया!! आष्ट्रेलिया महाद्वीपके एक सरकारी स्कूलमें इन्स्पेक्टरने लड़कोंसे प्रश्न किया कि भारतीयोंका मुख्य खाद्य पदार्थ क्या है? एक लड़केने उठ कर उत्तर दिया—"उनका मुख्य खाद्य-पदार्थ दुर्भिक्ष है!" उसका यह कथन अक्षरशः सत्य है। भारतको जितना पेट भरनेको अन्न नहीं मिलता उतना यह भूखा ही रहता है। अठारहवीं शताब्दीमें केवल ४ दुर्भिक्ष पड़े। किंतु तबसे धीरे धीरे इसका जोर बढ़ने लगा। उन्नीसवीं सदीमें १८०० से १८२५ ई० तक दस लाख, १८२५ से १८५० ई० तक पाँच लाख और १८५० से १८७५ तक पचास लाख मनुष्य अन्नके बिना काल-कवलित हुए। तदुपरान्त १८७५ से १९०० ई० तक अर्थात् इन २५ वर्षोंकी, दुर्भिक्ष लीलाकी विकरालता देख कर तो छाती फटने लगती है। केवल २५ वर्षोंमें २८ दुर्भिक्ष पड़े और लगभग चार करोड़ भारतवासी उदर ज्वालासे भस्मीभूत हुए। वह भारत, पहलेका जिक्र छोड़िए, आज भी संसारके आधेसे अधिक भागको अपने उपजाए अन्नसे ... देता है, उसीकी सन्तान इस प्रकार भूखों मरे, यह कितने अ.

ौर परितापका विषय है ! पिछले वर्षोंमें आज तक जिस भाँति
र्भिक्ष दैत्यका अविराम आक्रमण होता आ रहा है उस अनुपातसे
ह आशा करना व्यर्थ न होगा कि थोड़े दिनोंमें हम सबके सब
ने जड़ हो जायँगे। अब विचारनेकी बात यह रही कि इसका कारण
या है ? इस विषयमें विश्वासके लिये मैं अपनी ओरसे कुछ न कह
र विदेशी विद्वानोंकी ही राय उधृत करूँगा। साधारणतः लोग
मझते हैं कि दुर्भिक्ष अनिवार्य हैं—रोके नहीं जा सकते और उनके
धानतः दो कारण हैं। (१) समय पर वर्षाका न होना या वर्षाका
कम होना। (२) उचितसे अधिक जनसंख्या। सण्डरलैण्ड साह-
बका कथन है कि भारतवर्ष बहुत बड़ा देश है, बर्मा सहित इतने
वेशाल देशसे न्यूयार्क (अमेरिका) के सदृश ३६ राज्य काटे जा
सकते हैं। प्रत्येक स्थानका जल-वायु भी भिन्न भिन्न है। भूमि भी
एकसी नहीं, कहींकी जमीनमें ऊर्वरा शक्ति कम और कहीं अधिक
है। वृष्टि भी कहीं अधिक होती है तो कहीं न्यून।

हम लोगोंको तीन बातें सदा ध्यानमें रखनी चाहिए। पहली बात
तो यह है कि ऐसा कभी नहीं होता कि समस्त देशमें एक साथ
दुर्भिक्ष पड़ा हो। अतः यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अकालके
दुष्कालमें भी हमारे देशके कितने ही सूबोंमें इतना अन्न पैदा होता
है कि यदि वह बाहर न भेज दिया जाय तो महा विकराल दुर्भिक्षमें
भी हमारे एक भाईके भी भूखों मरनेकी नौबत न आवे। दूसरे
आबपाशीकी शिकायत भी आप नहीं कर सकते हैं। क्योंकि ईश्वरीय
प्रकृतिकी कृपासे यहाँका भौतिक संगठन भी बड़े ठिकानेका है।
आपका स्वदेश दो दिशाओंमें समुद्रसे घिरा है। प्रान्तोंमें नहर और
बड़ी बड़ी नदियाँ फैली हैं। मैं मानता हूँ कि इतने सामान ही आब-
पाशीके लिये यथेष्ट नहीं, किन्तु इस दशामें भी हमारे यहाँ अन्नकी

उपज कम नहीं होती। तीसरे इसके अतिरिक्त आपके देशमें ऐ
कोई स्थान न होगा जहाँ रेलकी लाइनें साँपकी तरह न घुस गई हों।
इस प्रकार सुखी प्रान्तोंसे दुखी प्रान्तों तक सरलता-पूर्वक अन्न पहुँचा
जा सकता है। इससे पानी बरसनेकी कमीकी बात मानते
भी यह सिद्ध होता है कि न दुर्भिक्ष पड़ने चाहिए, न इतनी ज
ही जानी चाहिए। पर खेद है कि यहाँकी दुखी प्रजाओंके पास
मोल लेनेको पैसे ही नहीं। जिसके पास है वह खरीद कर ले
जाता है।

अब दूसरा प्रश्न आबादीका है। यह भी व्यर्थ सा ही है।
दुनिया भरसे यहाँकी ही आबादी ज्यादा है! भारतवर्षकी आब
यूरोपकी अपेक्षा कम है, और फिर भी यूरोपमें कभी कोई दुर्भिक्ष
स्वप्नमें भी नहीं देखता। भूमण्डलके अनेक देशोंमें खेतीके
भूमिका अभाव है, तथापि वहाँके लोग भूखों न मर कर सा
चैनका वंशी बजाते हुए अपना कालयापन करते हैं। अपने उपज
अन्नसे वहाँके निवासी सालमें केवल ९० दिनके लगभग निर्वाह
सकते हैं; तो क्या बाकी दिनोंमें वहाँके लोग हवा खाकर जी
रहते हैं? जर्मनीका भी यही हाल है। वहाँकी उपज भी जर्मनी
केवल १०४ दिनोंकी खुराक है। और देशोंकी भी यही दशा
इस पर भी कुछ जवाब है कि सात समुद्र पारवाले तो यहाँसे
मँगा कर भोजन करें और हमारे घरमें अन्नका ढेर लगा रहने
भी हम भूखों मरें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कृषिकी उन्नति
यहाँ बड़ी आवश्यकता है और बहुतसी भूमि जो अभी बे-ज
पड़ी है, उसे आबाद करना चाहिए। किन्तु यह भी निर्विवाद है
यदि सुप्रबन्ध हो तो यहाँ दुर्भिक्ष फटक भी नहीं सकता।

इन बातोंको ध्यानमें रखकर अब फिर भी दुर्भिक्षके सच्चे कारण- पता लगाना है। थोड़े ही परिश्रम या खोजसे यह रहस्य खुल ता है। मेरे विचारानुसार दुर्भिक्षका मुख्य कारण है भारत- की दरिद्रता।

" नहिं दारिद सम दुख जग माँही "

इस पद्यका दूसरा चरण भी याद रखने योग्य है, भूलिए मत—

" पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं। "

——तुलसी

भारतवासियोंके सारे आतङ्कका मूल कारण उनकी अपरिमित रिद्रता—बेहिसाब गरीबी—है। उनको सदैव हाय हाय लगी रहती । वे जो कुछ पैदा करते हैं उसके चार हिस्सेदार खड़े हो जाते हैं। मीदार, साहूकार या महाजन, आबपाशीका महकमा और मजदूर। न चारोंमेंसे पहले तीन तो इतने जबरदस्त हैं कि बिना उनको काये उनसे किसी भाँति छुटकारा ही नहीं। इस प्रकार दे चुकने र जो कुछ उनके पास शेष रहता है उससे वे दो महीने यदि पना गुजर कर लें तो गनीमत समझिए। बादको फिर जेवर, थाली टा, ढोर आदि बन्धक रख कर या बेच कर वे अपने दिन काटते हैं। तने पर भी पूरा नहीं होता तो जमींदार या साहूकारके यहाँ अड़ र बैठ जाते हैं और खेत या घर रेहन कर कुछ रुपया ले आते हैं। हाँ तक तो उनको साधारण दशाका वर्णन हुआ। दुर्भिक्षमें क्या शा होती होगी यह आप स्वयं विचार लें। अपने शरीरके सिवा स समय उनके पास अपनी सम्पत्ति रह ही क्या जाती है? फिर क्या करते हैं—धनहीन और बलहीन होकर प्राण विसर्जन र देते हैं या दुर्भिक्षकी फसलकी भाँति खेतहीमें सूख कर पटरा जाते हैं।

एक समय लार्ड कर्जनने बड़े अभिमानके साथ कहा था
भारतवासियोंकी वार्षिक आय ३०) रु० से कम नहीं। किंतु भा
हितैषी मि० डिग्बीने उस हिसाबको गलत साबित कर दिखाया
यहाँवालोंकी वार्षिक आमदनी केवल १८॥) रु० है। टैक्स
चुकानेके बाद अनुमानतः घट कर १४) या १५) रु० ही रह
है। इस सुवर्णमय विस्तृत भूमिकी आय तो यह, किंतु और
देशोंकी आय तो जरा देखिए—

देश,	वार्षिक आ
आष्ट्रेलिया	६७
इंग्लैण्ड	६
संयुक्त राज्य अमेरिका	५
बेल्जियम	४
फ्रांस	१
जर्मनी	३
भारतवर्ष	

कहिए यह अभागा देश औरोंकी अपेक्षा कितना कंगाल है!
चढी-बढी दरिद्रताके कारण उसको पेट भर अन्न दुष्प्राप्य है
है वह भला अपने यहाँ किन किन चीजोंमें सुधार करे!

हमारे भारतीय कृषक कूप-मंडूककी भाँति अपने पैतृक
कीड़ोंके जैसे बने रहते हैं। कभी बाहरके नगरोंका प्रवास
करते। यात्रा करनेसे डरते और काँपते हैं। प्रवाससे ज्ञान,
उत्साह और नवीनता आती है। परन्तु ये लोग अपना घर
छोड़ते। कृषक अपने देशकी दशा नहीं समझते। देश-
विचार तो दूर रहा, वे पशुकी भाँति आहार, निद्रा, भय, मैथु

अपने कामोंमें ही तुष्ट रहते हैं। कृषिमें लगी हुई जाति कदापि दास-त्वसे मुक्त नहीं हो सकती। स्वेच्छाचारी राजा, सरदार या ब्राह्मण आदि सदा इन्हें पादाक्रान्त करते रहे हैं। वर्तमान कालमें ही देख लीजिए एक दुबला पतला, एक धक्केमें ४ गुलाटें खाकर मुहँके बल गिरनेवाला ५) रु० मासिकका चपरासी भी बेचारे दीन कृषकोंके दो ठोकरें मार ही देता है, मानो ये उसके बापके नौकर हों। ऐसे नीच अत्याचार सह लेनेका कारण यही है कि हमारे कृषकोंके नस-प्रत्यंगमें दासताका भाव भर गया है। जरा विचारिए भारतीय कृषकोंकी कैसी दुर्दशा है। उनके सिर पर कोई-न-कोई भय सदा सवार रहता है। तो भी कृषकोंकी ही संख्या बढ़ती जाती है। सच बात तो यह है कि निर्धनता उन्हें कृषक बना रही है।

जर्मनी और अमेरिका जैसे देश भी कृषि-प्रधान देश हैं, पर वहाँ कृषिकी पैदावार बढ़ रही है और कृषकोंकी संख्या घट रही है। कारण यह कि वे दूरदर्शिता और बुद्धिमत्तासे कृषिकार्यमें उन्नतिके ऊँच्च शिखर पर चढ़ गये हैं। भारतीय कृषकके मुकाबलेमें एक अंगरेज चार गुना और एक अमेरिकन कृषक आठ गुना काम कर सकता है। अमेरिकाकी कृषिविद्या सर्वोच्च है। वहाँ नित्य नये परिवर्तन और सुधार किये जा रहे हैं। कृषि-सम्बन्धी प्रत्येक कार्यके करनेमें वे लोग दत्तचित्त हैं। कृषि-सम्बन्धी औजारों, कलों आदिमें उन्होंने बहुत कुछ सुधार कर डाला है। वे भारतवर्षकी भाँति दादाके हाथके बनाये हलको चलाना अपना धर्म नहीं समझते। अमेरिकाके कृषक धनी, तेजस्वी, दयालु, शिक्षित और स्वतंत्र हैं। अमेरिकाने कृषिकार्यमें अपार सफलता प्राप्त कर ली है। जब वहाँवालोंको अपने खेतमें पानी देनेकी आवश्यकता होती है तो भारतीयोंकी भाँति वे चरस, रहँट, या ढकलीसे दिनभर सिर नहीं फोड़ते।

उनके केवल एक बटन दबाने मात्रसे बिजली द्वारा यथेच्छ खेतोंमें आ जाता है। फसल काटनेके लिये एक दो मनुष्योंसे जानेवाली मशीनें हजारों मनुष्योंकी आवश्यकताकी पूर्ती कर है। यदि बादल घुमड़ें और उनसे फसलको हानि होनेकी स हो तो वे बड़ी बड़ी तोपों द्वारा आकाशकी ओर गोले बरस बादलोंको फाड़ डालते हैं और उन्हें तितर-बितर कर देते हैं। भारतीयोंकी भाँति वे उसे इन्द्रके भिश्तीकी मशक समझ कर जोड़ कर प्रणाम नहीं करने लगते। वहाँ यदि पालेसे खेतको होनेका भय हो तो उनके पास ऐसे यंत्र हैं जिनकी सहायतासे वे गर्मी पैदा कर उन्हें पालेसे बचा लेते हैं। भारतीय कृषकोंके सदा वर्षा, ओले, पाले और टिड्डी आदिका भय सवार रहत

हमार यहाँका शिक्षित समुदाय कृषिको निंद्य और गँवारू समझ कर उस ओर ध्यान नहीं देता। बेचारे अपढ़, अज्ञान जो कुछ कर रहे हैं वही बहुत है, नहीं तो संसार भूखों मर जमीनें बराबर जुतती रहती हैं और बोई जाती हैं अतः उनमें शक्ति बिलकुल नहीं रही गई। भूमि कमजोर हो जानेसे उपज नाम मात्रकी होती है। उत्तम खाद देकर उसे शक्तिवान हमारे कृषकोंको नहीं आता और आता भी है तो दरि कारण उनके पास उसके साधन ही नहीं होते। भला जिस शक्तिवान बनानके लिये कोई खूराक न दी जावे और उससे अच्छी पानेकी आशा की जाय तो यह कितनी मूर्खता है। हमारे आधुनिक कृषि-विद्यासे बिलकुल अनभिज्ञ हैं। अपने पुराने और मरे बैलोंसे सड़ा या खराब बीज चार अंगुल गहरी भूमि कर डालना ही उन्हें आता है, पदा हो या न हो। वे अपने भरोसे बैठ जाते हैं।

कृषिकार्यकी मुख्य वस्तु खादका बनाना या उसे उपयोगमें
ा उन्हें बिल्कुल ही नहीं आता। अपने आलस्य और अज्ञानसे
ऐसी ऐसी वस्तुओंको—जिनसे करोड़ों रुपयोंकी खाद बन सकती
फेंक दिया करते हैं। गोबरकी खादमें पौधोंके आहारके
ेक अंश (१) आक्सिजन, (२) कारबन, (३) हाइड्रो-
ा, (४) केल्शियम, (५) मग्नेशियम, (६) लोहा,
७) गन्धक, (८) नाइट्रोजन और (९) फासफरस मौजूद हैं,
न्तु अपनी भूलसे—जो बहुधा दरिद्रता-जन्य होती है—हम कण्डे
ा कर गोबरको जला कर राख कर डालते हैं। कितनी अनधिकार
ता है कि पौधोंके आहारको हम जला कर बिगाड़ देते हैं। क्या
या जाय, इसे कृषकोंका दोष कहें या दरिद्रताका, जो उन्हें ऐसी
ेताएँ करनेके लिये मजबूर करती है। यदि भूमिके भीतर पौधोंका
हार उपस्थित नहीं होता तो वे उसी भाँति मर जायँगे जैसे दुर्भि-
ं मनुष्य। अत एव भारतीय कृषकोंको उचित है कि वे भाग्यके
ारोंको छोड़ कर खाद देनेके विचारोंको उत्तेजन दें, जिससे उनकी
द्रताकी पुकार परमात्मा सुन सके। कण्डे बना कर फूँक देनेसे
विशेष लाभ भी नहीं। मान लीजिए, एक जोड़ी बैलसे प्रतिवर्ष
० मन गोबर मिल सकता है, जिसकी ८० मन उत्तम खाद
ार की जा सकती है। यदि प्रति दस मन एक रुपया मूल्य मान
ा जावे तो वह आठ रुपयेकी हुई। अब कण्डोंका हिसाब
जिए। इसी गोबरसे कण्डे तैय्यार कराये जावें तो ६० मन होंगे,
गिनतीमें १९२०० होंगे और प्रत्येक कण्डा आध पावका होगा।
२० कण्डोंका मूल्य एक पैसा हो तो सबका मूल्य ७॥) रु०
ा। प्रकटमें आठ आनेका ही अन्तर है, पर खादसे अपरिमित
ा है और कण्डोंका लाभ राख है।

सन् १९०९ ई० में भारतमें बैल, गाय, मेंढ़े, बकरी, भैंस, आदिकी संख्या लगभग एक करोड़ थी। अनुमानसे जाना गया कि प्रति ढोर६८मन खाद प्रति वर्ष तैय्यार हो सकती है। इस हि ६८ करोड़ मन खाद और एक रुपयेकी दस मनके हिसाबसे ६ ८० लाख रुपयोंकी होती है। जिसे हम कण्डे बना कर जला डाल हैं। यदि कहीं खाद बनाई भी जाती है तो अनुपयोगी रीतिसे बन जाती है, जो किसी कामकी नहीं होती। इसी प्रकार पशुओंका भी लाखों रुपयोंका हमारी अनभिज्ञतासे व्यर्थ जाता है। मूत्र खाद इतनी उत्तम होती है कि उसके गुणोंको देख कर दाँतों उँगली दबानी पड़ती है। परन्तु जिस बुरी तरहसे हमारे दे उसका सत्तानाश होता है उसको भी देख कर दाँतों तले उँगु दबानी पड़ती है।

गोबरकी खादसे उत्तम खाद भी होती है। वह खाद है हड्डीकी परंतु हमारे भारतीय कृषकोंको इसका स्वप्नमें भी ध्या नहीं। पहले गाँवोंके आसपास पशुओंकी हड्डियाँ बहुतायत पड़ी रहती थीं। परंतु आजकल वहाँ एक हड्डी भी नहीं दि देती। कारण यह कि यूरोपके कृषक जो हड्डियोंकी खाद लाभसे भली भाँति परिचित हैं, भारतसे हड्डियाँ मँगा कर उन बहुत ही लाभदायक खाद बना कर अपने खेतोंको बेहद उ जाऊ बना रहे हैं। विलायतके कृषकोंके अतिरिक्त यहाँके ह भेजनेवाले एजेण्टोंको भी बहुत लाभ होता है। भारतीय कृषकों मूर्खताका इससे बढ़ कर और क्या प्रमाण होगा कि हड्डीके स लाभकारी वस्तुको, जो कृषि और कृषकोंका प्राण है, कौड़ि मोल विदेशी दलालोंके हाथ बेचे देते हैं। भारतवर्षसे स लाखों मन हड्डियाँ जहाजोंमें लद कर जाती हैं और इंग्लैण्ड, जर्म

ा और आस्ट्रेलिया इत्यादि देशोंको हराभरा और बलिष्ट बनाती समस्त यूरोप मांसाहारी है, अत एव वहाँ हड्डियोंकी बहुतायत तो ो, तो भी अपनी भूमियोंको रत्न-प्रसू बनानेके लिये वे भारतसे ियाँ मँगा रहे हैं। भारत संसारमें, खेतीके कामोंमें एक प्रतिष्ठित है, जिसे एक एक हड्डीकी आवश्यकता है। तो भी उसके यहाँसे ि वर्ष अधिकाधिक हड्डियाँ विदेशोंको जा रही हैं। यह बात ंता-पूर्ण और हमारी अज्ञानताकी द्योतक है। केवल एक वर्ष १०-१९११में १०२९१९५०) रु० की हड्डियाँ भारतसे विदे-ोंको गई। लगभग ७० हजार टन हड्डियाँ प्रति वर्ष भारतसे हर जाती हैं। यदि भारतीय कृषक हड्डियोंको काममें लावें तो ारतमें दुर्भिक्ष क्यों पड़े? थोड़ा ध्यान देने पर ही अल्प व्ययमें यहाँ ड्डियोंके पहाड़के पहाड़ लग सकते हैं। यूरोपके देशोंमें हड्डीकी ादका मूल्य ३०) प्रति मन है। भारतीयोंको सोचना चाहिए कि ेदेशी कृषक इतनी महँगी खाद अपने खेतोंमें डाल कर मनचाही पज करते हैं। यदि भारत चाहे तो वही हड्डीकी खाद ५) रु० ति मनमें तैय्यार कर सकता है। हड्डियोंमें फासफरसका अंश हुत होता है जो पौधोंको बढ़िया खूराक है।

इसके अतिरिक्त विष्टाकी खाद भी ऊपर लिखित दोनों खादोंसे हु मूल्य है। इसे Golden Mannure अर्थात् सुनहरी खाद भी कहते हैं। परन्तु इसके प्रयोगको लोग अपवित्र समझ कर इससे घृणा करते हैं। चीन और जापानके मनुष्य जिन्होंने खेतीमें अद्भुत उन्नति की है और जहाँकी कृषि-विद्याका प्रचार संसारमें प्रख्यात है, मानुषिक मल-मूत्रकी खाद बना कर अच्छी खेती करते हैं। वे मैलेको अपने हाथों उठाते और उसकी रक्षा करते हैं; वे घर-घर मैला मोल लेने जाते हैं। जब उनको भारतके सम्बन्धमें

छी नहीं होती होगी ? उसने कहा—खादसे क्या होता है, रामजी तो हर बहाने दे सकते हैं। मैंने कहा यदि गड्ढा खोद कर उसमें [विधि]-पूर्वक खाद तैय्यार की जाय और उस पर छप्पर आदि बना कर [उस]की रक्षा की जाय तो बहुत कुछ उपज हो सकती है। उसने [कह]ा—हमारे बापदादोंने ऐसा नहीं किया—इत्यादि।

प्रत्येक गाँवमें हर प्रकारकी खाद बना कर बेचनेवालों तथा कृषि-[स]म्बन्धी अन्य वस्तुओंके बेचनेवालोंकी आवश्यकता है। साथ ही [कु]छ शिक्षित पुरुषोंको इस कार्यमें अग्रसर होकर हमारे कृषकोंके [प]थ-प्रदर्शक या आदर्श बन कर चलनेकी आवश्यकता है। हमारे [अंग]रेजी पढ़े-लिखे लोग बी० ए० की डिग्री प्राप्त होते ही वकालतकी [ओ]र अपनी नजर न दौड़ा कर अमेरिकन कृषकोंकी भाँति कृषिकी [ओ]र अपना लक्ष्य करें तो भारतका बहुत कुछ उपकार हो सकता है।

[व]िदेशी लोगोंने केवल कृषिका ही आश्रय नहीं लिया है, किन्तु [व्यव]साय अधिक और कृषिको कम कर दिया है। यहाँ उसके विप-[रीत] देखनेमें आता है। दूसरे देशोंको खानेको भारत दे देता है, [प]र फिक्र किस बातकी ! उन्होंने व्यवसाय द्वारा बहुत धन संग्रह [क]र लिया है, अत एव वे जहाँसे मिल सकता है महँगेसे महँगा अन्न [ल]े कर भी खा सकते हैं। भारत खुद भूखा रहता है और दूसरोंकी [क्षुध]ा शान्त करता है, कैसे आश्चर्यकी बात है !! हमारी गवर्नमेंट [भी] तो इधर ध्यान नहीं देती। भारत जो कुछ मर-पच कर पैदा-[कर]ता है वह बाहर चला जाता है। भारतके सैकड़ों मनुष्य प्रति दिन [भूख]से गालमें भूखे मरते हुए तड़प रहे हैं। इतने पर भी हमारी [सर]कारको हमारी सुधि नहीं ! यह बड़ा ही विचित्र मामला है। क्या [हम] उसकी प्रजा नहीं हैं ! क्या हमारे पालनका भार उसके सिर [न]हीं है ! क्या यह बेचारे गुलामें भारतके पीछे नहीं पड़ा रही है !

मुख्य बात तो यह है कि हमारे भारतीय कृषक शिक्षित नहीं हैं और न वे शिक्षित बनाए जा सकते हैं। क्योंकि हमारी गवर्नमेंट शिक्षा-प्रचारके लिये इतना कम व्यय स्वीकार करती है जो नागरिकोंके लिये ही पर्याप्त नहीं है, फिर भला जंगलों और छोटे छोटे गाँवोंमें रहनेवाले कृषकोंके बालक कैसे शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं? ये कुछ भी शिक्षा प्राप्त नहीं करते और अपने धन्धेमें लग जाते हैं। यही कारण है कि देशमें जितना अन्न पैदा किया जा सकता है, उतना नहीं होता। यह बात ठीक है कि देहातमें अधिक शिक्षा नहीं दी जा सकती, किंतु कमसे कम उन्हें इतनी शिक्षा भी तो मिलनी आवश्यक है कि लोग यह समझ सकें कि काले और सफेदमें क्या अंतर है! बनियेसे हिसाब करते समय उसे समझा सकें और अपना हिसाब-किताब खुद समझ सकें। मेरे कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि कृषकोंको बी० ए० या एम० ए० तक पढ़ाया जावे। नहीं, उन्हें खेती करने और खाद बनानेके ढंग सिखाये जानेकी परम आवश्यकता है। कृषकोंके लिये कृषि-शिक्षा अनिवार्य हो तब ठीक होगा। कौनसा भूमि किस फसलके लायक है, एक फसल होनेके बाद उस खेतमें और कौनसी वस्तुका बीज डालना चाहिए, खादके लिये क्या करना होगा, इत्यादि आवश्यक बातोंको बिना जाने वे कैसे उत्तम अवस्थाको प्राप्त हो सकते हैं? इसमें सन्देह नहीं कि (India is a continent of villages) पर साथ ही हमें लोकमान्य महात्मा तिलकके निम्न वाक्य न भूल जाना चाहिए—

"हमारे गाँवोंकी क्या दशा है?—गाँवोंमें पाठशालाओंका समुचित प्रबन्ध न होनेसे हमारे ग्राम-निवासी अपने बच्चोंको नहीं पढ़ा सकते, इस लिये यह प्रबन्ध हमें स्वयं करना चाहिए।"

नये कृषकोंको नये नये औजारों द्वारा नवीन पद्धतिके अनुसार नई जिन्सोंकी खेती करना सिखलाना चाहिए। इस आवश्यकताको

लगान।

ताल्लुकेदार या जमींदारोंको कृषक कहना सर्वथा भूल है। ये सरकार और कृषकके बीचके दलाल हैं। कृषकोंको जूते लगा कर—कष्ट देकर—लगान वसूल करना उनका काम है। रा राज्यके कृषकोंकी दुर्दशा हमारे भारतके सच्चे भक्त हात्मा गान्धीसे नहीं देखी गई, तब उन्होंने सत्याग्रह द्वारा षकोंको विजय प्राप्त कराई। विहार प्रान्तके चम्पारन जलेकी भी यही दशा है। यहाँ भी निलहे गोरोंके अत्याचारसे त्तीस लाख प्रजा, हर हालतमें तंग थी। यहाँ तक कि केवल इन्हीं अत्याचारोंके कारण इसे लोग भारतवर्षका फिजी कहने लगे थे। रमात्माकी कृपासे वहाँ भी अब किसी प्रकार महात्मा गान्धीकी सतत चेष्टाके कारण शान्ति स्थापित हो गई है। और भी अनेक प्रत्यक्ष उदाहरणोंसे आप विचार कर सकते हैं कि देशके कृषकोंकी कैसी दुर्गति है। रींग राज्य ही क्या, यदि महात्मा गान्धी प्रत्येक राज्यके कृषकोंकी दशा पर ध्यान दें तो वह अति विचारणीय मिलेगी। इधर कर्मवीर महात्मा गाँधी हमारे भारतीय कृषक-समुदाय पर अत्याचार देख कर दुखी हो उनकी इस अवनति पर आँसू बहाते हैं, तो दूसरी ओर बन्धुघाती जमींदारों और ताल्लुकेदारोंने कृषकोंको उजाड़ देना ही निश्चय किया है। बेचारे असहाय, निर्बल कृषकोंकी पसीनेकी कमाई पर ये दलाल और भारत सरकार आनन्द कर रही है। ये गरीब लोग जो कुछ पैदा करते हैं, दूसरोंके सपुर्द कर अपनी मृत्युके स्वप्न देखा करते हैं। हम कहाँ तक इनकी दुर्दशा लिखें—इन बेचारोंके लिये केवल पाँच रुपयेका लिया हुआ ऋण भी एक वर्षमें चुका देना कठिन है। इतनेमें उसकी दुगुनी संख्या व्याज महाराज कर

देते हैं। बेचारोंके घरमें खानेको अन्न नहीं, पहिननेको वस्त्र
इनकी दुर्दशाका वर्णन करते हृदय विदीर्ण होता है।

हमारे देशमें कृषकोंसे मालगुजारी किस कड़ाईसे वसू
जाती है—जैसे भेड़ बकरीके शरीर परसे कसाई खाल उचेड़
करते हैं। यहाँके प्रायः सबके सब जमींदार 'शायलाक'के
हैं। किसान बेचारे 'एण्टोनियों'के पात्रसे भी नम्र और ईमानदा
जमीनकी मालगुजारीके अतिरिक्त और भी कितने ही प्र
लगान उनसे वसूल किये जाते हैं जिसका कुछ हिसाब नहीं। वे
नीमें कमसे कम ५० भाँतिके होंगे। इनके हकदार राजके तह
दार, पटवारी और चपरासी होते हैं। जिस कृषकको सत्यना
भगवान्की पूजाके लिये आठ आने पैसे मुश्किलसे मिलते हैं;
ये विधातागण जुर्माने (!) के रूपमें पाँच पाँच रुपये तक
कर लेते हैं। और जुर्म भी यही कि तुमने बाबू साहबकी
बढ़ानेके लिये दो सेर दूध अथवा दही और एक चर्बीदार
नहीं भेजा! उन्होंने बाइसिकल या हार्मोनियम बाजा खरीदा,
तुमने कुछ भी चन्दा नहीं दिया इत्यादि! इस विषयमें Bis
Heber (बिशाप हेबर) साहब कहते हैं कि:—

"भारतमें टैक्स (लगान) इतना लिया जाता है कि
अपनी उन्नति नहीं कर सकते। जब उपज अच्छी होती है त
यहाँके लोगोंके पास कर देनेके उपरान्त बहुत कम धन बचत
और उपज हुई तो—यद्यपि सरकार दुर्भिक्षके समय लोगोंकी
यताके लिये सैकड़ों रुपये व्यय कर देती है—फिर भी न जाने ि
स्त्रियाँ, पुरुष और बच्चे गलियोंमें भूखे मरते ही रहते हैं। इस
यमें मैंने जिन जिन लोगोंसे एकान्तमें बातें की हैं, वे सब
एक स्वरसे यही कहते हैं कि ये सब फसाद यहाँके लग

घेक होनेसे हैं और इन्हीं कारणोंसे देश दिन दिन दरिद्री होता रहा है।" दूसरे स्थानमें सर थियोडर होप साहबका कहना कि:—

"To our revenue system must in candour as cribed a large part of the indebtedness of he ryot."

अर्थात्—"लगानकी ज्यादतीके सबबसे ही रैयत कर्जके बोझसे बी जा रही है।"

वास्तवमें यह बात यथार्थ है। गरीबीकी आँच और लगानके कोड़ेसे कृषक बिलकुल तंग आ गये हैं। फिर भी सरकारके पक्षपाती स बातको कैसे कुबूल करेंगे? वे तो अपने खरीतेमें लिखेंगे—

"Our assesment is not a source of poverty r indebtedness in India-it cannot be fairly regarded as a contributory cause of famine."

अर्थात्—"हमारा लगान भारतकी दरिद्रता या ऋणका कारण नहीं है। भारतीय दुर्भिक्षके कारणोंमेंसे यह एक कारण नहीं समझा जा सकता।"

सुना है, इसके अलावा भी वे कहते हैं कि प्राचीन कालमें राजा लोग भूमि पर आजकलसे कुछ अधिक ही लगान लेते थे, और बात भी सत्य है। किंतु मालूम नहीं सरकार इसका क्या उत्तर देती है कि वह और नीतियोंमें प्राचीन राजाओंका अनुकरण क्यों नहीं करती? बस, लगान प्राप्त करनेको भारतीय प्राचीन राजाओंके अनुयायी बन गये। क्या यही न्याय कहाता है? वे कहते हैं, टैक्स नाम मात्रका है। ठीक, किंतु जरा और देशोंके टैक्ससे मीलान तो कर देखिए।

जिस खेतकी सौ रुपये वार्षिक आय है उसका लगान यों पड़ता है:—

देशका नाम,	लगान रुपये।
इंग्लैण्ड	८।) ,,
इटाली	७) ,,
जर्मनी	३) ,,
बेल्जियम	२॥। ,,
हॉलैण्ड	२॥।) ,,
भारतवर्ष	१५।से २०) ,, तक।

कठिनता तो यह है कि इस दरिद्रावस्थामें भी अन्य कई देशों अपेक्षा भारत पर टैक्स पाँच पाँच छः छः गुना अधिक है। सो भी ठीक वक्त पर दाखिल हो जाना चाहिए। चाहे तुम्हारी फसल हो या न हो। लगान देनेमें देर हुई कि जमीन नीलाम की गई। परिणा यह होता है कि हमें महाजनोंकी शरण लेनी पड़ती है। वे सूद कमाल हासिल करते हैं। मूल धन १) रु० है तो दूसरे वर्ष उसी तीन हो जाते हैं। कृषकोंको रुपया देते ही महाजनकी नीयत ब हो जाती है। वे पहले दो चार साल तक तो कड़े सूद पर रुप लगाते जाते हैं, और अन्तमें जब इच्छा होती है तब रुपयों नालिश कर जमीन जायदाद अपने अधिकारमें कर लेते हैं। अद लत भी आँखें मूद कर एक रुपयेके सूद सहित ५) रु०की डि दे ही देती है।

महाजनों या साहूकारोंके यहाँसे कृषकोंको बहुत कड़े सूद रुपया मिलता है, जिसकी वजहसे भी वे तबाह-हाल रहते हैं अत एव जहाँ तहाँ देहाती बेंक—सहयोग समितियाँ (Co-oper

e Societies) स्थापित होना परमावश्यक है, जिनके द्वारा
तकारोंको अल्प व्याज पर यथेच्छ रुपया मिल सके। हमारे मान-
। सम्राट् महोदय पंचम जार्जने एक बार अपने श्रीमुखसे कहा
के:—

"यदि इस देशमें सहकारिताकी प्रथा प्रचलित की जाए और
का पूरा उपयोग किया जाए तो मुझे इस देशके कृषि-सम्बन्धी
र्योंमें एक विशाल सुन्दर भविष्य दिखाई देता है।"

जर्मनी, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, इग्लैण्ड आदि देशोंकी स्थिति
मारे देशसे भी अत्यंत खराब थी, किंतु देहाती बैंकों तथा सहयोग-
मितियों द्वारा इन्होंने अपूर्व उन्नति प्राप्त कर ली। हमारे भारतमें
बसे पहले सर विलियम वैडर्बर्नने सहकारिताका प्रस्ताव किया,
रन्तु इसका प्रभाव सन् १८९५ ई० तक कुछ न हुआ। पर सन्
८९५ ई० में मद्रास प्रान्तीय सरकारने फ्रेडरिक निकोल्सन नामक
हाशयको यूरोपमें इस लिये भ्रमण करनेकी आज्ञा और सहायता दी
कि वे देखें कि सहकारिताके कौन कौनसे प्रकार यहाँ भारतमें प्रच-
लित हो सकते हैं। इनके भ्रमण परिश्रमका फल दो विशाल खं-
डोंमें संकलित है, उनका नाम Land Banks for the
Madras Residency मद्रास प्रान्तके वास्ते जमीन सम्बन्धी बैंक।
इधर संयुक्त प्रान्तमें चिरस्मरणीय छोटे लाट टॉमसन साहबने
ड्यूपर्ने महाशयसे इस ओर विचार तथा परिश्रम करनेका अनुरोध
किया। तदनुसार ड्यूपर्नेने Peoples Ban k for N.I. उत्तर
हिन्दुस्थानके लिये जनताके बैंक नाम्नी पुस्तक लिख कर सहकारि-
ताका प्रसार किया। इस समय तक यह कार्य जनता और प्रान्तीय
सरकारका ही रहा। भारत-सरकारका विशेष ध्यान इस ओर न
गया। पर सन् १९०१ में हिंदुस्थानके उपकारक लार्ड कर्जनने

एक कमेटी सर एडवर्ड लॉके आधिपत्यमें नियुक्त की और सन् १९
ई० में सहकारिताका पहला एक्ट पास हुआ। इससे
एक्टके त्राससे सहयोग-संस्थाएँ बचीं और इन संस्थाओंके
अधिक सुधार और उन्नति हुई।

सरकारने दया कर अब इस असुविधाको दूर करना प्रारंभ
है। जगह जगह पर सहयोग-समितियाँ (Co-operati
Credit Societies) स्थापित हो रही हैं। किसानोंको
मात्रके सूद पर रुपया दिया जा रहा है। इनकी उत्तरोत्तर वृद्धि
रही है। इस समय भारतवर्षमें १२००० से अधिक देहाती
स्थापित हैं। जिनके ६ लाख मेम्बर और ५॥ करोड़ीकी पूँजी
अस्तु।

अब प्रश्न उठता है कि लगान कम कैसे हो? इसका एक
उत्तर है कि दवामी बन्दोबस्त—स्थायी प्रबन्ध (Permane
Settlement) से। इस बन्दोबस्तसे इस समय बहुत लाभ
सकता है। अँगरेजोंके शासनके समय शुरू शुरूमें जमीनके
नका निर्ख निश्चित कर दिया जाता था। इस तरह अनेक बुरा
पैदा होती थीं। यह देख कर पहले पहले लार्ड कार्नवालि
बंगाल अहातेका दवामी बन्दोबस्त कर दिया। जो मालगुजारी
१७९३ ई० में वहाँके लिये ठीक कर दी गई थी, वही आज तक
जाती है। इस कामसे सरकारकी आमदनी कम अवश्य हो गई
किंतु राजनैतिक दृष्टिसे उसे बड़ा भारी लाभ हुआ। देखिए हॉर्न
साहब इस विषयमें क्या कहते हैं:—

" While the natives of the soil gained th
permanent settlement as it is called, the Bri

ıh have in the end lost much revenue + + +
ıt if there has been a loss in money there
ıs been an incalculable gain politically. The
undation of all Government settlement of
ɜngal has bound the people in loyal devotion
ɪ the British Government "

ʼअर्थात्—" देशी कृषकोंके लिए दवामी बन्दोवस्त हो जाने पर
टिश गवर्नमेंटको अन्तमें लगानका बड़ा नुकसान हुआ। लेकिन
दि रुपयोंकी हानि हुई तो राजनैतिक लाभ अपरिमित हुआ। सर-
ारकी सारी नींव प्रजाकी इच्छा पर निर्भर होती है और बंगालके
ायी बन्दोवस्तसे बंगाली ब्रिटिश सरकारकी राजभक्तिमें बँध गये।"

इसमें विशेष बात यही है कि राज्यशासनकी नींव प्रजाकी प्रस-
ता पर अवलंबित है, और बंगालके दवामी बन्दोवस्तके कारण
ाँकी प्रजा सरकारकी भक्त बन गई है। यह लाभ कुछ कम नहीं
। पुस्तकके उत्तरार्द्ध भागमें पुराने अकालोंकी कथा पढ़नेसे मालूम
गा कि बहुतसे अकाल तो केवल लगान वसूल करनेसे पड़े।
जा-प्रजा दोनोंके हितके विचारसे यह अत्यावश्यक है कि लगान
म कर दिया जाय। कितना कम किया जाना उचित है, इस
षयमें मि० ओकानरकी शिफारिश है कि "लगान अभी कमसे
म २५ फी सैंकड़ेके हिसाबसे अवश्य ही कम हो जाना चाहिए।"
विदित नहीं होता कि सरकारको प्रजाके दुःख दूर करनेमें इतनी
ाना-कानी क्यों होती है! यहाँके देशभक्त नेताओंने सारे देशके
ये स्थायी प्रबन्ध करनेकी कई बार प्रार्थना की, पर सब निष्फल हुई।
न् १८८३ ई० में तो उसने ऐसा करनेसे साफ ही इन्कार कर दिया
। किंतु अब इन्कार करनेसे काम नहीं चलेगा। जब तक सरकार

लगान कम न करेगी, हम लोगोंका उद्धार होना असंभव है—
दुर्भिक्षोंका दूर होना असंभव है। तुम दया करके ही कुछ
करो जिसमें लोग यह कहनेसे भी बाज आवें किः—

"The condition of agriculture labo
India is a disgrace to any country calli
civilized.

अर्थात्—भारतीय कृषक मजदूरोंकी दशा, किसी
जो अपनेको सभ्य कहता हो, लज्जाकी बात है"

दरिद्रता।

दरिद्रताको भी हम पहले दुर्भिक्षका एक कारण लिख आये हैं। देखिए दरिद्रता क्या कर सकती है। उदाहरणार्थ, एक दरिद्र काश्तकारकी दशा पर जरा ध्यान दीजिए—घरमें बैल नहीं, बोनेको अन्न नहीं। फसलके तैयार होने पर निदाईके लिये मजदूरोंके देनेको पैसे नहीं। कहींसे भाड़े पर बैल लाकर जल्दी जल्दी जैसा जुत सका, खेत जोत डाला। कहींसे ऋण लेकर बीज बखेर दिया। वर्षा अधिक होनेके कारण वह बीज पानीमें बह गया या गल गया तो फिर कहींसे हाथ-पैर जोड़ कर जैसा बुरा भला बीज मिला लाकर खेतमें बो दिया। जब खेतमें १०।१२ इंच ऊँचे पौधे हुए तो महाजनके यहाँसे ४) रु० निदाईके लिये ले आये। उस महाजनने एक रुपयेके १५ सेरके भावसे ६० सेर अन्नकी चिट्ठी लिखा ली, टिकट लगा कर उस पर उसके अँगूठेकी छाप लगवाली और दो मनुष्योंके गवाहीके स्थान पर हस्ताक्षर करा लिये। उस कृषककी फसल पक कर जब कुछ अन्न हाथ-पल्ले पड़ा तो सबसे पहले महाजनको, रुपयेका ग्यारह सेरका भाव होने पर भी पन्द्रह सेरके हिसाबसे ही देना पड़ा। इस प्रकार वह ४) रु० में ५।≈) का अन्न दे आया। खेतकी जुताई, बीज तथा निदाई अच्छी न होनेके कारण उपज भी कम हुई। कुछ महाजनने तौलमें भी अधिक लेकर अपनी नीचता प्रदर्शित की। अन्तमें उस बेचारेके हाथमें केवल इतना अन्न रह गया कि एक आदमी भले प्रकार तीन महीने भी उससे पेट नहीं भर सकता। लगान इत्यादिका तकाजा सिर पर सवार है। अब जरा सोचिए, वह दरिद्र कृषक कब तक मौतसे बच सकता है! एक न

एक दिन वह भूखों छटपटा कर अपने प्राण छोड़ देगा और उ
शवको गीदड़, चील आदि मांसभोजी जीव खा जावेंगे !

भारतीय दरिद्रताका सवाल सार्वभौम दृष्टिसे भी हल किया
सकता है। आप ही सोचिए कि यदि आप किसी समय रात्रिमें
सुसज्जित उत्तम भवनमें किवाड़ बंद कर आराममें सोते हों
उस निशीथ रजनीकी प्राकृतिक शान्तिकी मधुरिमाको भंग करने
क्रन्दनध्वनि जो किसी एक दीन दिनके भूखे, जाड़ेसे काँपते हुए मनुष्य
उजाड़ झोपड़ीसे निकलती हो, और उसे आप सुनें तो क्या वह आ
सुनी जायगी ? या तो उसे आप उस स्थानसे हटा देंगे, अथवा
सहायता कर उसकी जीवन-रक्षा करेंगे, ताकि फिर ऐसी कालि
आवाज आपके कर्ण-गोचर न हो। सड़कों पर चलते समय भिख
आपको दिक करें—, जैसे आजकल तीर्थों पर पण्डे किया करते
तो आपको यह भला मालूम होगा ? या वे शान्ति-पूर्वक कोई रोज
कर अपना जीवन निर्वाह करें तो भला मालूम होगा? आप यदि
हैसियतमें कहींके सम्राट ही क्यों न हों, तथापि बहुत संभव है
आपको पिछली बात बहुत ही अच्छी और उचित जँचेगी। बात
सत्य है, गरीबी-अमीरीका प्रश्न एक ऐसा पेचीदा है, जिसके हल
बिना पूरी शान्ति स्थापित करना हर एक शासनप्रणालीकी श
बाहरकी बात है। पुलिस रख कर ही कोई शान्ति रक्षा कर सक
यह कोई बात नहीं। जबरदस्ती आप किसीको कानूनका
तभी कर सकते हैं जब तक कि उसमें उस बंधनसे छूट जा
शक्ति नहीं आई हो। ज्यों ही उसमें आपसे बढ़कर शक्ति पैद
जायगी त्यों ही वह तुरन्त आपके फेरेसे निकल कर आपहीक
दबावेगा। अतएव यह परमावश्यक है कि हम दूसरेकी, निर्दय
उसकी स्वाधीनता छीन कर उसे अपने मातहत न बनावें। इस
में यह अँगरेजी कविता उद्धृत करना अनावश्यक न होगा:—

Where half the Power that fills the world with terror,
Where half the wealth that spent on camp and court
Given to redeem the human mind from error
There were no need of arsenals nor forts."

अर्थात्—" यदि उससे आधी शक्ति जिससे कि संसार कंपित किया जाता है, यदि उससे आधी संपत्ति जो अदालतों और दौरोंमें व्यय होती है मनुष्य मात्रकी भूल सुधारनेके उपयोगमें लाई जाती तो शस्त्रशालाओं और किलोंकी कोई आवश्यकता न पड़ती !"

सुशासनमें वर्तमान कालके जैसी पुलिस-नियोजनाकी मैं आवश्यकता नहीं समझता। ज्यों ज्यों प्रजावर्गमें विद्याके प्रभावसे समझदारोंकी संख्या बढ़ेगी त्यों त्यों अत्याचार या अशान्तिकी मात्रा कम होती जायगी। पर विचारनेकी बात है कि हम दरिद्रताके चंगुलमें फँसे रह कर या भूखों मरते कानूनकी रक्षा कहाँ तक कर सकते हैं? कहावत भी है "बुभुक्षितः किं न करोति पापं" अर्थात्—मरता क्या न करता। हममें केवल अन्नका ही तो दुर्भिक्ष नहीं है जिसे निवारण कर लें। शिक्षा-सम्बन्धी बातोंका भी तो यहाँ अकाल है। इसमें इतना नैतिक या धार्मिक बल नहीं कि लोग भूखों मर जायँ तो मर जायँ पर जीव-हत्या न करें। यदि दो चारमें उक्त बल हो तो भी तो उनकी आत्महत्या अनिवार्य है। फिर हम कैसे मान सकते हैं कि बिना दरिद्रता दूर किये, कहीं स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती है। दरिद्रताके कारण हम अनेक प्रकारके अत्याचार कर सकते हैं और आज कर भी रहे हैं और न जान कब तक करते रहेंगे। हमा[रे] देशके सब निंद्य कार्यों और अत्याचारोंका मूल कारण दरिद्रता है

"The crying need of the humanity is not for better morals, cheaper bread, temperance liberty culture, redemption of fallen sisters and erring brothers, nor the grace love fellowship, of the Trinity (त्रिमूर्ति) but simply for enough money. And the evil to be attacked is not sin, suffering, greed, priestcraft, kingcraft, demagogy, monopoly, ignorance, drink war, pestilence nor any other of the scapegoat which reformers sacrifice, but simply poverty.

—*Bernard Shaw.*

मि० वर्नर्डशा कहते हैं—" मनुष्यताकी सबसे बड़ी आवश्यकता न तो श्रेष्ठ आचरण, सस्ता भोजन, संयम, स्वाधीनता, शि (Culture), पतित बहिनों तथा भूले हुए भाइयोंका सुधार है और त्रिमूर्तिका प्रेम, सहानुभूति और अनुकम्पा ही है; किन्तु पर्य्याप्त धन है। और जिस बुराई पर हमें आक्रमण करना चाहिए वह न पाप, न लालच, न पोपजाल, न राजनीति, न गुरुघण्टालपन, न विक्रयका अधिकार, न मूर्खता, न मद्यपान, न युद्ध, न मरी और न भेंटका बकरा है जिसे सुधारक बलिदान करते हैं, किंतु वह आवश्यकता एक मात्र दरिद्रता ही है।"

हम लोग इस समय तक ऐसे अनुशासनके अन्दर हैं, जो आज संसारको उच्च कोटिकी सभ्यताके सामने दो पुश्तका पुराना माना जाने लगा है। जिसके विषयमें Ibid (एबिड साहब) का कथन है कि—

"The excessive costiliness of the foreign ~ncy, is not however, its only evil. There is

noral evil which, if any thing is even greater
kind of dwarfing or stunting of the Indian
ce is going on under the present system, we
ust live all the days of our life in an atmos-
iere of infiorrity and the tallest of us must
end in order that the agencies of the existing
ystem may be satisfied."

अर्थात्–" सिर्फ राज्य-प्रबन्ध पर अत्यन्त व्यय ही इसकी बुराई
ही है। नैतिक बुराई यदि कोई वस्तु है तो उससे भी अधिक है,
ो हिन्दू जातिकी वृद्धिमें बाधक है। जिसके कारण हमको अपना
ारा जीवन अपने आपको दीन हीन समझते हुए बिताना पड़ता
। और हममें जो सबसे ऊँचे हैं उन्हें भी वर्तमान प्रणालीको
ंतुष्ट करनेके लिये झुकना ही पड़ता है।"

इसके लिये आजकलका प्रचलित शब्द एक और है—" राज-
त्ता" अर्थात् (Bureaucracy) इससे एक दर्जे उन्नत
ासनको राजनीति-विशारद प्रजातन्त्र (Democracy) के
ामसे पुकारते हैं। यही शासनप्रणाली अभी संसारके अधिकांश
ागमें स्थापित हो रही है, जिसके विषयमें एबिड महोदय
लिखते हैं:—

"Democracy is a spirit–a mental attitude–
which can be held by every man and every
woman in the country. And upon its accept-
ance, national prosperity in the future will
depend. It is not a subversivo force–it is not
a Clustering loud voiced policy–it is a force
which must ensure law and order; for under
the truly democratic rule everybody has a
voice in the Government of the Country in

"The crying need of the humanity is nc for better morals, cheaper bread, temperanc liberty culture, redemption of fallen siste and erring brothers, nor the grace love fellov ship, of the Trinity (त्रिमूर्ति) but simply fc enough money. And the evil to be attacke is not sin, suffering, greed, priestcraft, kin craft, demagogy, monopoly, ignorance, drin war, pestilence nor any other of the scapegoa which reformers sacrifice, but simply poverty

—Bernard Shaw.

मि० बर्नर्डशा कहते हैं–" मनुष्यताकी सबसे बड़ी आवश्यकत न तो श्रेष्ठ आचरण, सस्ता भोजन, संयम, स्वाधीनता, शि (Culture), पतित बहिनों तथा भूले हुए भाइयोंका सुधार है और त्रिमूर्तिका प्रेम, सहानुभूति और अनुकम्पा ही है; किन्तु पर्य्याप्त ध है। और जिस बुराई पर हमें आक्रमण करना चाहिए वह न पा न लालच, न पोपजाल, न राजनीति, न गुरुघण्टालपन, न विक्रयव अधिकार, न मूर्खता, न मद्यपान, न युद्ध, न मरी और न भेंटव बकरा है जिसे सुधारक बलिदान करते हैं, किंतु वह आवश्यक एक मात्र दरिद्रता ही है।"

हम लोग इस समय तक ऐसे अनुशासनके अन्दर है, जो आ संसारको उच्च कोटिकी सभ्यताके सामने दो पुश्तका पुराना मा जाने लगा है। जिसके विषयमें Ibid (एबिड साहब) क कथन है कि—

"The excessive costiliness of the foreig agency, is not however, its only evil. There i

moral evil which, if any thing is even greater kind of dwarfing or stunting of the Indian ce is going on under the present system, we ust live all the days of our life in an atmosnere of infiorrity and the tallest of us must end in order that the agencies of the existing ystem may be satisfied."

अर्थात्-" सिर्फ राज्य-प्रबन्ध पर अत्यन्त व्यय ही इसकी बुराई ही है। नैतिक बुराई यदि कोई वस्तु है तो उससे भी अधिक है, ो हिन्दू जातिकी वृद्धिमें बाधक है। जिसके कारण हमको अपना ारा जीवन अपने आपको दीन हीन समझते हुए बिताना पड़ता । और हममें जो सबसे ऊँचे हैं उन्हें भी वर्तमान प्रणालीको तुष्ट करनेके लिये झुकना ही पड़ता है। "

इसके लिये आजकलका प्रचलित शब्द एक और है—" राजत्ता" अर्थात् (Bureaucracy) इससे एक दर्जे उन्नत ासनको राजनीति-विशारद प्रजातन्त्र (Democracy) के ामसे पुकारते हैं। यही शासनप्रणाली अभी संसारके अधिकांश ागमें स्थापित हो रही है, जिसके विषयमें एविड महोदय िखते हैं:—

"Democracy is a spirit-a mental attitude-which can be held by every man and every woman in the country. And upon its acceptance, national prosperity in the future will depend. It is not a subversive force-it is not a Clustering loud voiced policy-it is a force which must ensure law and order; for under the truly democratic rule everybody has a voice in the Government of the Country in

। रूसमें इस दलवालोंने काम करना भी आरंभ कर दिया है।
नीकी भी यही दशा है। वहाँके कितने ही सेठ-साहूकार अपने
-जायदाद, कल-कारखाने जमीन-जोतसे वे दखल कर दिये गये
यहाँ तक कि उन्होंने राजवंश तकका नाश कर डाला है।
हवाका रुख देख कर क्या हम इस बातका पता नहीं लगा
ते हैं कि स्वतंत्रताकी यह लहर उठ कर यहीं तक न रहेगी,
केन्तु आगे भी बढ़ सकती है, और अवश्य बढ़ेगी। अब आप
रेद्र भारतका ध्यान कीजिए कि वह कहाँ तक इन बातोंकी समता
रनेमें समर्थ है। हम क्या लिखें? जहाँ संसार सोशलिष्टोंका
गत करनेको तैय्यार है, जहाँ इंग्लैण्डके प्रधान मंत्री मि०
यड जार्ज तक कुछ दिन पूर्व ही "Universal old age
Pension" और "Legal Maximum wage" के प्रस्ताव
श कर जीविका (living) के सवालको हल करना चाहते थे।—
जिस पर लोगोंने असंतुष्ट हो कर कहा था कि "Universal
Pension for life" कराये बिना काम न चलेगा—यह दरि-
ता समूल नष्ट न हो सकेगी) शोक है कि वे सब बातें आज भी
ारतके लिये स्वप्नवत् हो रही हैं। भारतकी दरिद्रता दूर करनेके
ये एक मात्र उपाय "स्वराज्य" है।

आज हम न तो अधिक प्रजातन्त्र ही चाहते हैं; न एक बार
। मात्र हो जानेकी इच्छा रखते हैं। प्रार्थना केवल इतनी ही
कि हमारी इतनी बढ़ी-चढ़ी दरिद्रता दूर कीजिए, ताकि हम
मियोंका सामना करनेसे सदाके लिये बच जावें। क्योंकिः—

"Money is the counter that enables life
o be distributed socially, it is life as truly as
overeigns and Bank notes are money."

—*Bernard Shaw.*

वैश्य-समाज।

हमारे शास्त्रकारोंने चारों वर्णोंके कर्मोंका पृथक् पृथक् बतलाते हुए वैश्योंके लिये:—
" कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् " बतलाय
मनुजीने लिखा है:—

" पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।

अर्थात्—उस परमात्माने पशुओंकी रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार, व्याज और खेती ये कर्म वैश्यके लिये बनाये।

किन्तु वर्तमान समयमें हमारे वैश्य-समाजकी बहुत ही दुर्दशा है। पशु पालन, व्यापार और कृषि ये लोग कैसी करते हैं यह सब प्रकट है। हाँ शास्त्राज्ञाके विरुद्ध इनका प्रत्येक कार्य निस्सन्देह है। अपने देशकी दशाका इन्हें तनिक भी ध्यान नहीं—

" तुम मर रहे हो तो मरो, तुमसे हमें क्या काम है?
हमको किसीकी क्या पड़ी है, नाम है धन-धाम है।
तुम कौन हो जिनके लिये हमको यहाँ अवकाश हो,
सुख भोगते हैं हम, हमें क्या जो किसीका नाश हो?

—भारतभारती।

ये किसीके भले बुरेकी तनिक भी पर्वाह न करके, "भज कल्दारं भज कल्दारं कल्दारं भज मूढ़मते" का पाठ अहर्निशि किया करते हैं। थोड़ेसे लाभके लिये अपना, अपने समाजका और अपने देशका भविष्य बिगाड़ रहे हैं। उनका व्यापार ...

को हानि और अन्य देशोंको लाभ है। मूर्खता-वश वे अपने पूरेको भी नहीं पहचान सकते। बलिहारी ऐसे व्यापारियोंके [illegible]रकी जो दूसरे देशोंको धन-धान्यसे पूरित कर स्वदेश भारतको अन्न प्राणहीन कर डाले। हमारा वैश्य-समाज थोड़ेसे लाभ अपने देशका सारा अन्न विदेशियोंके हाथ बेच कर अपने भार-बन्धुओंको, अगणित भूख प्याससे मरते हुओंको, हायोंका अपने सिर पर ले रहा है। हम स्वीकार करते हैं कि यह भी [illegible]र है, किंतु देश और कालका ध्यान रख कर व्यापार करना ही [illegible] व्यापार कहाता है। यदि आपके पास भोजनको ४ रोटियाँ और भूख इतनी है कि इतनी रोटियोंसे उसका शांत होना [illegible]न है। इसी बीचमें यदि कोई आकर आपको द्विगुण मूल्य देकर [illegible]टियाँ लेना चाहे और आप दे दें तो निस्सन्देह आपको भूखों [illegible] पड़ेगा। इसी भाँति यदि भूखे भारतका अन्न आप दूसरोंको [illegible] लाभ पर देते रहेंगे तो भारतकी क्या दशा होगी, इसे आप [illegible]चार कीजिए! ऐसी हालतमें वह अन्य देशोंसे अधिक मूल्य [illegible] भी अपना उदर नहीं भर सकता। अन्य देशोंके पास असंख्य है। वहाँके लोग साहसी उद्यमी और स्वतंत्र-जीवी हैं। भला बेचारा दरिद्र, असहाय, परतंत्र दीन भारत उनकी समानता कर सकता है? समय पड़ने पर विदेशीय लोग रुपयेका [illegible] [illegible] अन्न खरीद कर भी "दुर्भिक्ष है" ऐसा कदापि न कहेंगे! यहाँ तो दशा ही कुछ और है। वर्तमान समयमें लोग जिस विप-[illegible] का सामना कर रहे हैं, वह आँखोंके आगे है। सहस्रों भारतीय [illegible]णोंके प्राण अन्नके एक एक दानेके लिये तरसते तरसते निर्द-[illegible]तासे बध कर रहे हैं! शिव शिव!! कैसा भयङ्कर समय उप-

संवत् १९५६ में रुपयेका छः सेर अन्न मिलता था। ...
भी लोगोंकी लाशें सड़कों पर यों ही पड़ी हुई दिखाई पड़ती ...
थे इतनी अधिक थीं कि उन्हें श्वान, गृद्धादि मांस-भोजी ...
नहीं खाते थे। परन्तु आज वह समय है कि रुपयेका ६ से...
मिलना सुभिक्ष समझा जाने लगा। लोगोंको धीरे धीरे दु...
अभ्यास सा पड़ गया। इतना होने पर भी यदि हम लोग इसी
गफलतमें रहे तो एक वह भयङ्कर दिन आनेवाला है कि...
अन्नके हम लोग छटपटा कर ठंडे हो जायँगे और सदा ...
लिये ऋषियोंके पावन वंशके वंश इस दुर्भिक्षके महोदरमें
जायँगे। यहाँ अन्नका ही नहीं, बल्कि प्रत्येक वस्तुका दु...
घोरतर दुर्भिक्ष है। प्यारे वैश्य भाइयो! जरा अपने निर्धन
दशा पर दो आँसू डालो। देखो तो क्या हो रहा है, तुम्हारा
देश भारतवर्ष क्यों रो रहा है? "टका धर्म टका कर्म ...
परमं पदं" को छोड़ दो। इस समय भारतवर्षको तुमसे ...
सहायताकी आशा है। अपने या अपनी आल-औलाद...
केवल पैसे ही संग्रह करके न छोड़ जाओ, बल्कि थोड़ा सा ...
भी कर जाओ जिससे तुम्हारी भावी सन्तानें बिना अन्न...
प्राण न छोड़ें। इस भूखे भारतके मुखका ग्रास इसके ...
जाने दो, इसको छीन कर अन्य देशोंके सपर्द न करो।

रहे हैं। हमारी आँखोंमें सरासर धूल झोंक रहे हैं। " मियाँकी मियाँके सिर " वाली कहावत चरितार्थ कर रहे हैं। हमारे कच्चा माल अर्थात् सामग्रियाँ सस्ते दामों पर खरीद ले जाते हैं अपने देशमें उसकी वस्तु बना कर फिर मनमानी कीमत पर ही सिर मँढ़ जाते हैं और हम लोग मूर्खकी भाँति उसे खरीद हैं, इस बातका हमें तनिक भी ध्यान नहीं। जिस देशके पारी-समाजकी ऐसी दुरवस्था हो, भला वह कैसे उन्नत हो ता है ? जिस देशमें यथोचित व्यापार नहीं वह देश समृद्धि-शी क्यों कर हो सकता है ? जहाँका व्यापारी-समाज मूर्ख और उद्यमी हो तथा अपना ही भला चाहनेवाला हो वह देश कब तक विक्षसे बच सकता है ? जहाँसे कला और शिल्पका नाम गया हो वह देश कब तक अपनी कुशल मना सकता है। अपनी निर्बलतासे अपनी आवश्यकताओंको स्वयं पूर्ण नहीं कर ते। हम प्रत्येक बातमें दूसरोंकी ओर आशा लगाये देखते रहते —किन्तु यह नहीं पता कि " पराई आशा करना नरक-यातनाके य है। " हम इतने आलसी हो गये हैं कि हमारी इच्छा यही ती है कि हम अपने मुंहसे रोटी भी न खायँ; कोई दूसरा ही कुच-कर हमारे मुखमें भोजनका ग्रास दे दिया करे। इस यूरोपीय ।हायुद्धके समय हमें अपनी आवश्यकताएँ पूर्ण करना कठिन हो गा। यदि हमारा वैश्य-समाज इस विषयमें कुछ भी सावधान ता तो अपने देशका मुख उज्ज्वल रखता और आज धनसे परि-पूर्ण दृष्टि आता। यह वर्तमान घोर दुर्भिक्ष यहाँ फटकने तक नहीं ता! जब हमें विदेशी चीजें नहीं मिलीं तो हम ही उन कौड़ीकी वस्तुओंको रुपयोंसे खरीदने लगे; परन्तु उसे तैयार करनेकी तरकीब । उसी मूल्य पर लेनेका कोई भी उपाय किसीने भी नहीं सोचा।

संवत् १९५६ में रुपयेका छः सेर अन्न मिलता था। फि
भी लोगोंकी लाशें सड़कों पर यों ही पड़ी हुई दिखाई पड़
थे इतनी अधिक थीं कि उन्हें श्वान, गृद्धादि मांस-भोजी ज
नहीं खाते थे। परन्तु आज वह समय है कि रुपयेका ६ से
मिलना सुभिक्ष समझा जाने लगा। लोगोंको धीरे धीरे दु
अभ्यास सा पड़ गया। इतना होने पर भी यदि हम लोग इसी
गफलतमें रहे तो एक वह भयङ्कर दिन आनेवाला है कि
अन्नके हम लोग छटपटा कर ठंडे हो जायँगे और सदा
लिये ऋषियोंके पावन वंशके वंश इस दुर्भिक्षके महोदर
जायँगे। यहाँ अन्नका ही नहीं, बल्कि प्रत्येक वस्तुका दु
घोरतर दुर्भिक्ष है। प्यारे वैश्य भाइयो! ज़रा अपने निर्धन
दशा पर दो आँसू डालो। देखो तो क्या हो रहा है, तुम्हा
देश भारतवर्ष क्यों रो रहा है? "टका धर्म टका कर्म
परमं पदं" को छोड़ दो। इस समय भारतवर्षको तुम
सहायताकी आशा है। अपने या अपनी आल-औला
केवल पैसे ही संग्रह करके न छोड़ जाओ, बल्कि थोड़ा सा
भी कर जाओ जिसमे तुम्हारी भावी सन्तानें विना अन्न
प्राण न छोड़ें। इस भूखे भारतके मुखका ग्रास इसके
जाने दो, इससे छीन कर अन्य देशोंके सपुर्द न करो।

वैश्योंका एक कर्म व्यापार है अवश्य किन्तु उन्हें व्याप

ं हैं। हमारी आँखोंमें सरासर धूल झोंक रहे हैं। "मियाँकी मेयाँके सिर" वाली कहावत चरितार्थ कर रहे हैं। हमारे कच्चा माल अर्थात् सामग्रियाँ सस्ते दामों पर खरीद ले जाते हैं अपने देशमें उसकी वस्तु बना कर फिर मनमानी कीमत पर हीं सिर मँढ़ जाते हैं और हम लोग मूर्खकी भाँति उसे खरीद ;, इस बातका हमें तनिक भी ध्यान नहीं। जिस देशके ारी-समाजकी ऐसी दुरवस्था हो, भला वह कैसे उन्नत हो ा है? जिस देशमें यथोचित व्यापार नहीं वह देश समृद्धि- ी क्यों कर हो सकता है? जहाँका व्यापारी-समाज मूर्ख और धमी हो तथा अपना ही भला चाहनेवाला हो वह देश कब तक ाशसे बच सकता है? जहाँसे कला और शिल्पका नाम गया हो वह देश कब तक अपनी कुशल मना सकता है। अपनी निर्बलतासे अपनी आवश्यकताओंको स्वयं पूर्ण नहीं कर ते। हम प्रत्येक बातमें दूसरोंकी ओर आशा लगाये देखते रहते —किन्तु यह नहीं पता कि "पराई आशा करना नरक-यातनाके य है।" हम इतने आलसी हो गये हैं कि हमारी इच्छा यही ती है कि हम अपने मुंहसे रोटी भी न खायँ; कोई दूसरा ही कुच- कर हमारे मुखमें भोजनका ग्रास दे दिया करे। इस यूरोपीय ायुद्धके समय हमें अपनी आवश्यकताएँ पूर्ण करना कठिन हो ा। यदि हमारा वैश्य-समाज इस विषयमें कुछ भी सावधान ता तो अपने देशका मुख उज्ज्वल रखता और आज धनसे परि- र्ण दृष्टि आता। यह वर्तमान घोर दुर्भिक्ष यहाँ फटकने तक नहीं ता! जब हमें विदेशी चीजें नहीं मिलीं तो हम ही उन कौड़ीकी वस्तुओंको रुपयोंसे खरीदने लगे; परन्तु उसे तैयार करनेकी तरकीब ं। उसी मूल्य पर लेनेका कोई भी उपाय किसीने भी नहीं सोचा।

हाय, ऐसे अच्छे अवसरको हमने यों ही खो दिया और
उठना न सीखा ! " महँगीके मारे परेशान हैं " इत्यादि
रहे, पर आलस्यकी चादर अपने सिरसे न उतारी गई।
देखिए, उसने क्या कर दिखाया ! कलका होश सँ
बाजी ले गया। उसने दुनियाको और विशेष कर
कैसा लूटा। हमारी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेका बी
लिया। अपनी बनाई सब प्रकारकी वस्तुओंसे भारतको
भर दिया और भारतका धन अपने देशमें भर लिया।
जो भारतमें अमेरिका, आस्ट्रिया, इंग्लैण्ड, जर्मनी, इ
देशोंसे आती थीं, उन सबको देनेका साहस एक छोटे
किया। यद्यपि वह मजबूतीमें किसीकी समानता न कर स
नकल करनेमें वह पीछे भी नहीं रहा। उसकी वस्तुएँ

तिके अत्युच्च शिखर पर चढ़ा हुआ था, और आज उसीके
ओंकी मूर्खतासे भारत विदेशियोंकी भोग्य वस्तु बन गया।
ोंको यह सेठ अर्थात् श्रेष्ठकी पदवी इसी लिये उस समय दी गई
कि वे कृषिकार्य, गौ-रक्षा, वाणिज्य आदि श्रेष्ठ कार्योंमें संलग्न
। कृषिसे पूर्ण लाभ प्राप्त करनेके लिये गौ-रक्षा परमावश्यक है।
भारतके दुर्भाग्यसे ऐसा कुसमय आ गया कि अन्य वर्णोंके कर्त-
च्युत होनेके साथ ही वैश्य इतने कर्तव्य भ्रष्ट हो गये कि यदि
के गुण-कर्मसे देखा जाय तो वे वास्तवमें वैश्य कहानेके अधि-
री भी नहीं हैं। भारतमें दुर्भिक्षका एक कारण हमारे वैश्य-बन्धु भी
अत एव हमें इन्हींके विषयमें लिखना है। कृषि वैश्योंका सबसे
म कर्म है; जिसे उन्होने सोलहों आने त्याग दिया है। व्यापार जो
तीसरा कर्म है उसमें वे लगे हुए हैं, सो भी अनुचित रीतिसे।
न्तु जब पदार्थ ही पैदा नहीं किये जाते तब व्यापार कैसा? यही
रण है कि हमारा व्यापारी समाज सट्टे और फाटकेमें संलग्न है।
यदि व्यापार उचित रीतिसे किया जाय तो भारतके दुःख-दारिद्रय
होनेमें एक क्षण भी न लगे। सब देशोंकी उन्नति उनके व्यापार
ही निर्भर होती है। व्यापारकी उन्नति जब तक नहीं की जाती
ब तक उस देशकी भी उन्नति नहीं होती। जब तक विदेशियोंके
थमें देशके शासनकी बागडोर है तब तक हमारे व्यापारकी उन्नति
ी कठिन है। इस तरह शासन और व्यापारकी बुनियाद एक दूस-
से मिली हुई है। व्यापार सुचारु रूपसे तब ही चल सकता है
ब कि देशके शासनका भार देशवासियोंके ही हाथमें हो। वर्तमा-
कालमें जापान आदि पर दृष्टि डालिए, उन्होंने व्यापार आदिमें
स प्रकारकी उन्नति प्राप्त कर ली है। यह उनके शासनकी बाग-
ोर हाथमें रहनेका ही फल है।

व्यापारका अर्थ एक देशसे दूसरे देशको माल भेजना और
ना ही है। कच्चा माल दूसरे देशोंसे मँगा कर उसकी हरेक
चीजें बना कर दूसरे देशोंको भेजना और अपने देशके लिये
श्यक वस्तुएँ तैय्यार करना सच्चा व्यापार कहलाता है।
वैश्य-समाजको इस बातका कुछ भी ज्ञान नहीं। वे जो व्या
आजकल भारतमें चला रहे हैं—वह सच्चा व्यापार नहीं कहा
सकता। वह तो व्यापारकी नकल मात्र है। कच्चा माल
देशसे जाता है और उसकी नाना भाँतिकी मनोमोहक वस्तुएँ त
होकर यहाँ आती हैं। इस पर भी असली नफा तो विदेशी खा
हैं और जूठन मात्र हमारे हाथमें आती है। विदेशी महाप्रभु
बहुत गुलामी करने पर जो बची हुइ जूठन यहाँके व्यापारी
जके पल्ले पड़ती है, वही जूठन खा कर यहाँके
मूछों पर हाथ फेर कर संतुष्ट रहते हैं। हम यहाँ पर देशसे
कच्चे मालका और विदेशोंसे तैय्यार होकर आए हुए पक्के मा
दिग्दर्शन कराते हैं—

" सन् १९०६–७ से १९१३–१४ तक अर्थात् लड़ाईके पू
औसत निकाला जाये तो प्रति वर्ष २१०९८८१०००) रु० का
भारतवर्षसे विदेशोंको जाता है, उसमेंसे तैयार माल ६९७३८४०
रु० का, कच्चा माल १३५८६२००००) का और सोना-चाँ
७२८७७०००)का; और १८५८३६२०००) का माल विदेशोंसे
साल आता है, जिसमें तैयार माल १३६९१०८०००) का, क
माल ६४२४२०००) का और ४२२०१२०००) का सोना-चाँदी
इसमें २५१५१२०००) का माल हिन्दुस्तानसे हर साल जो आ
नीसे ज्यादा जाता है, यह कर्जके सूदमें, अँगरेज अफसरोंकी
खाह और पेन्शनमें, स्टेट सेक्रेटरीकी तनखाह और उसके आ

में देना पड़ता है। उसके बदलेमें कुछ नहीं मिलता। जितना
विदेशोंसे हिन्दुस्तानमें आता है उसमेंसे रुईके सूत और कप-
ो कीमतका सालाना औसत ४६३९४७०००) अर्थात् एक चौथा-
कुछ ज्यादा है। इस लिए इस पर ध्यान देना जरूरी है। यहाँसे
ाल ४११०००) टन रुई जाती है और २४२०००) टन कपड़ा
सूत आता है। यद्यपि तोलमें सिर्फ आधेसे कुछ ज्यादा माल
र होकर आता है, लेकिन उसका दाम ड्योढ़ेसे ज्यादा होता है।
ात् २९२३११०००) रुईका दाम पाकर कपड़े और सूतके लिए
१९४३००) देना होता है।

मुख्य आवश्यकता

हिन्दुस्थानके व्यापारकी यह दशा क्यों हुई, उसकी दुःखदायक
कहना अब मैं जरूरी नहीं समझता। क्योंकि वाइसराय
स्टेट सेक्रेटरीने अब इस बातको स्वीकार कर लिया है कि यहाँके
ग और व्यापारकी उन्नति करना बहुत जरूरी है और उसकी
करना गवर्नमेंटका कर्तव्य है। मेरी समझमें यह लाजिमी है
इसमें अब न तो देर होनी चाहिए और न कमी। यों तो बहुत
सी बातें हैं जो देशकी आर्थिक उन्नतिके लिए जरूरी हैं,
न दो बातें परम आवश्यक हैं, एक तो हर तरहके कल-पुरजे
ीन) बनानेके, दूसरे जहाज बनानेके कारखाने। ईश्वरकी कृपासे
, लकड़ी कोयला इत्यादि जो इन कारखानोंके चलानेके लिये
ी चीजें हैं वे यहीं निकलती और मिलती हैं।

ो कुछ हो, हमारे वैश्य-समाजको इस बातका बिलकुल ही
नहीं है कि आजकलके इस व्यापारमें हमारे देश-भाइयोंका
ना नुकसान हो रहा है। असलमें " जिसके कमी न

व्यापारका अर्थ एक देशसे दूसरे देशको माल भेजना और
ना ही है। कच्चा माल दूसरे देशोंसे मँगा कर उसकी हरेक प्र
चीजें बना कर दूसरे देशोंको भेजना और अपने देशके लिये
श्यक वस्तुएँ तैय्यार करना सच्चा व्यापार कहलाता है।
वैश्य-समाजको इस बातका कुछ भी ज्ञान नहीं। वे जो
आजकल भारतमें चला रहे हैं—वह सच्चा व्यापार नहीं क
सकता। वह तो व्यापारकी नकल मात्र है। कच्चा माल
देशसे जाता है और उसकी नाना भाँतिकी मनोमोहक वस्तुएँ
होकर यहाँ आती हैं। इस पर भी असली नफा तो विदेशी खा
हैं और जूठन मात्र हमारे हाथमें आती है। विदेशी महाप्र
बहुत गुलामी करने पर जो बची हुइ जूठन यहाँके व्यापारी
जके पल्ले पड़ती है, वही जूठन खा कर यहाँके
मूछों पर हाथ फेर कर संतुष्ट रहते हैं। हम यहाँ पर देश
कच्चे मालका और विदेशोंसे तैय्यार होकर आए हुए पक्के
दिग्दर्शन कराते हैं--

"सन् १९०६-७ से १९१३-१४ तक अर्थात् लड़ाईके
औसत निकाला जाये तो प्रति वर्ष २१०९८८१०००) रु० क
भारतवर्षसे विदेशोंको जाता है, उसमेंसे तैयार माल ६९७३८४
रु० का, कच्चा माल १३५८६२०००
७२८७७०००)का; और १८५८३६२
साल आता है, जिसमें तैयार
माल ६४२४२०००) का
इसमें २५१५१२०००)
नीसे ज्यादा ज
खाह और

ा देना पड़ता है। उसके बदलेमें कुछ नहीं मिलता। जितना
विदेशोंसे हिन्दुस्तानमें आता है उसमेंसे रुईके सूत और कप-
कीमतका सालाना औसत ४६३९४७०००) अर्थात् एक चौथा-
कुछ ज्यादा है। इस लिए इस पर ध्यान देना जरूरी है। यहाँसे
ाठ ४११०००) टन रुई जाती है और २४२०००) टन कपड़ा
सूत आता है। यद्यपि तोलमें सिर्फ आधेसे कुछ ज्यादा माल
: होकर आता है, लेकिन उसका दाम ड्योढ़ेसे ज्यादा होता है।
त् २९२३११०००) रुईका दाम पाकर कपड़े और सूतके लिए
:९४३००) देना होता है।

मुख्य आवश्यकता

हिन्दुस्थानके व्यापारकी यह दशा क्यों हुई, उसकी दुःखदायक
कहना अब मैं जरूरी नहीं समझता। क्योंकि वाइसराय
स्टेट सेक्रेटरीने अब इस बातको स्वीकार कर लिया है कि यहाँके
ा और व्यापारकी उन्नति करना बहुत जरूरी है और उसकी
करना गवर्नमेंटका कर्तव्य है। मेरी समझमें यह लाजिमी है
समें अब न तो देर होनी चाहिए और न कमी। यों तो बहुत
सी बातें हैं जो देशकी आर्थिक उन्नतिके लिए जरूरी हैं,
न दो बातें परम आवश्यक हैं, एक तो हर तरहके कल-पुरजे
ीन) बनानेके, दूसरे जहाज बनानेके कारखाने। ईश्वरकी कृपासे
, लकड़ी कोयला इत्यादि जो इन कारखानोंके चलानेके लिये
ी चीजें हैं वे यहाँ निकलती और मिलती हैं।

ो कुछ हो, हमारे वैश्य-समाजको इस बातका बिल्कुल ही
नहीं है कि आजकलके इस व्यापारमें हमारे देश-भाइयोंका
ना नुकसान हो रहा है। असलमें " जिसके कमी न

फटी बिवाई वह क्या जाने पीर पराई"। जिसका पेट
होता है वह भूखे आदमीकी पीड़ाका अनुभव नहीं
सकता। जिन महापुरुषोंको इसका अनुभव है उनके पास
दूर करनेका कोई साधन नहीं है। क्योंकि व्यापार तथा
बागडोर दूसरोंके हाथमें है। स्वराज्य ही हमारे व्य
उन्नतिका एक मात्र बीजमंत्र है।

वर्तमान मांटगू-चेम्सफोर्ड सुधारमें यह एक बड़ी त्रुटि है,
इस त्रुटिका कारण यह है कि प्रान्तीय सुधारोंके सिवाय बड़ी
कारमें कुछ भी सुधार नहीं किये गये हैं। शासन-सुधारोंमें
स्वराज्यके साथ साथ ही प्रान्तीय व्यापार भी दिया गया है।
जरा सोचनेकी बात है कि किसी देशके उत्थानके लिये केवल
देशीय व्यापार कदापि अधिक लाभप्रद नहीं हो सकता। किंतु
का बल और पूँजी तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारसे ही बढ़ती है और
ओर सरकारने एक कदम भी आगे नहीं रखा है। यह बड़े ही
बात है। भविष्यको सोच कर हम और भी अधिक भयभीत हैं।

अपने कृषकोंकी दीनताका दोषारोपण हम वैश्य-समाज
करेंगे। क्योंकि बोनीके समय किसानके पास सब कुछ है,
बीज नहीं। अब क्या करे? इसके सिवाय कि वह महाजनके
जाय और या तो बीज लावे, या रुपये। दोनों हालतोंमें महाज
जमानत चाहिए। किसानकी जमानत क्या? उसकी जमीन
उसकी पैदावार। प्रायः पैदावार ही किसानकी जमानत होती
अब चूँ कि उसकी जमानत अच्छी नहीं, अत एव साहूकार खूब
कर उससे व्याज लेता है। यदि किसान १००) रु० ले तो
उसे कुछ तो स्टाम्पके लिये खर्च करना पड़ता है। फिर से

सेर-बट्टा काट लिया और १००) की जगह ९६) रु० उसके हाथ रखे। और यदि बहुत ही दया की तो २४) रु० साल सूदका लिया।

एक तो फसलके होनेका कुछ ठिकाना नहीं। अगर अच्छी हुई सस्ते भावमें बेचनी पड़ी। क्योंकि सेठजी तकाजा करते हैं कि जल्दी रुपये दो, नहीं तो सूद दरसूद लगेगा। आखिर वह उन्हींके हाथ अपने खरे पसीनेकी कमाई बच देता है। सेठजी इस खरीदमें १२४) रु० के २००) बना लेते हैं। सेठजीको देकर कुछ बच गया तो बाल-बच्चोंकी परवरिश, कपड़े, ढोरोंकी खूराक इत्यादिमें खर्च करना पड़ता है— असली मलाई सेठजी चाट गये, केवल छीके दूध पर बेचारे किसानको पेट भरना पड़ता है, वह भी पूरी मिकदारमें नहीं। कभी पूरा भोजन पाया, कभी आधा ही पेट भरा, और कभी कभी तो पेटको पट्टी बाँध कर ही रह जाना पड़ा। पट्टी बाँधनेको कपड़ा भी तो नहीं मिलता। ऐसी दशामें वह क्या करे? क्या पेट पर पत्थर और बदन पर राख डाले। लाचार हो सेठजीसे कर्जकी प्रार्थना करनी पड़ती है। वे भी हाँ, नाँ कर आखिर राजी हो जाते हैं और बेचारे किसानके गलेमें कर्जका फन्दा इस तरह डाल देते हैं कि उसकी तमाम जायदाद हजम हो जाती है और वह दर दर मारा फिरता है। यदि हमारे बन्धु चाहें तो खुद भी अच्छी तरह लाभ उठा सकते हैं और किसानोंकी भी दुर्गतिसे रक्षा कर देशको दुर्भिक्षसे बचा सकते हैं।

वह इस तरह कि सहकारी समितियोंमें हिस्से खरीद लिये जावें। हिस्सा ५०) रु० का होता है, और ८ किस्तोंमें देना पड़ता है। हर एक किस्तकी माँग प्रति तीन मासमें होती है अर्थात् हर तीसरे महीने

दस रुपये देने पड़ते हैं। तीन महीनोंमें दस रुपयेकी रकम हर्गि
ज्यादः नहीं है। यह रुपया सरकार काश्तकारोंको सस्ते सूद
देगी और साहूकारोंको वार्षिक नफा। इस तरहसे साहूकार
रुपया कमावेंगे और हमारा वैश्य-समाज संसारमें प्रतिष्ठा और
प्राप्त कर सकेगा। यहाँ एक बात और कह देनेकी है कि धर्म
खातेका बहुत सा रुपया हर एक स्थान पर जमा रहता है।
यों ही किसीके यहाँ पड़ा रहता है और वह उसे चट कर जाता है।
ऐसी दशामें उस धर्मादेके रुपयेको भी सहकारी बैंकके हिस्सोंमें ल
देना चाहिए।

अब जरा छोटे छोटे दूकानदारोंकी ओर दृष्टि डालिए। इन
भी प्रायः कधिकांश वैश्य भाई ही होते हैं। उनकी सारी दूका
विदेशी मालसे परिपूर्ण होती है। या यों कह दें तो अनुचित न हो
कि उनके चारों ओर विदेशी सामानकी दीवारें बनी होती हैं
ढूँढ़ने पर दूकानमें एक भी देशी वस्तु न मिलेगी। इनको
बातका स्वप्नमें भी ध्यान नहीं कि हम क्या कर रहे हैं? व्यापार क
रहे हैं या कि विदेशोंकी दलाली अथवा अपने घरको खाली? कु
मुनाफा लेकर अपना उदर पोषण करते हैं और अपने देशका ध
अपने हाथों विदेशियोंके सपुर्द करते हैं। जरा सोचिए आपके इ
व्यापारसे देशको कितना लाभ है! भारतको कितना धन आप
इस व्यापारसे प्रति वर्ष मिल जाता है? फूटी कौड़ी नहीं—ब
उसने भारतको कंगाल और दरिद्र कर डाला। अपनी मूर्खताके
करोड़ों रुपये प्रति वर्ष विदेशोंको प्रसन्नता-पूर्वक दे रहे हैं। क्या इ
बातका भी कभी दिलमें विचार उत्पन्न हुआ है कि वह पूँजी
अपनी दूकानमें लगा कर विदेशी माल भर लिया था, आपके ह
आवेगी? नहीं, कदापि नहीं। आप कहेंगे कि हम उसे बेच

से भी सवाई या ड्यौढ़ी रकम ले सकेंगे; परंतु वह रकम आप विदेशोंसे ले सकेंगे? नहीं, इस दीन भारतसे ही वसूल रेंगे। वह धन जो विदेशोंको दे चुके उसका लौट आना तो अब ढ़ी खीर है। हम चाँदी देकर राँगा खरीद रहे हैं। हीरे देकर त्थरोंसे घर भर रहे हैं। अब भी सँभल जानेका समय है।

हमारे वैश्य-बन्धु इस स्वदेशी विदेशीके नामसे ही घबड़ा उठते होंगे और इसे राजद्रोही बात समझते होंगे, पर यह उनकी भारी भूल है। क्या अपने देशकी वस्तु काममें लाना कोई अपराध है? कदापि नहीं। हाँ, अपने देशकी वस्तुएँ काममें न लाना गुरुतर अपराध है, महापाप है, कृतघ्नता है। यदि अपने देशका पक्ष समर्थन ही अराजकता है तो इस समस्त भूमण्डलको हम एकदम अराजक कह देंगे। क्योंकि सिवाय भारतवासियोंके, सबको अपने अपने देशसे तथा तत्सम्बन्धी प्रत्येक बातसे प्रेम है। वैश्य-बन्धुओ! घबरा-इए मत, आपके साहससे भारत धन-धान्यसे परिपूर्ण हो सदा सुखी हो सकता है। परन्तु आवश्यकता यही है कि अपना प्रत्येक कार्य आप देश-हितकी दृष्टिसे करना आरंभ कर दें।

हमारे शास्त्रकारोंका कथन है कि:—

" राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठा पापे पापा समे समा।
प्रजा तदनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा।"

अर्थात्—जैसा राजा वैसी प्रजा। किन्तु यह बात आज साफ झूठ दृष्टि आ रही है। क्योंकि हमारी सरकार एक अच्छी व्यापारी है; परन्तु प्रजाको यह भी ज्ञान नहीं कि व्यापारका असली अर्थ क्या है। हमारे वैश्य भाइयोंको ध्यान देना चाहिए कि हमारी व्यापारी सरकारने किस भाँति भारतका धन व्यापार द्वारा अपने देशको

पहुँचा दिया । न्यायसे या अन्यायसे, इस विषयमें हमें कुछ
कहना है । हाँ इतना अवश्य कहेंगे कि अँगरेजी शासन-का
भारत विलकुल दरिद्र और दुर्भिक्षका अखाड़ा बन गया है ।
राज्यमें कई धन-लोलुप बादशाह हुए और उन्होंने अगणित
अपने देशोंको भेजे, पर वे व्यापारी नहीं बने । उन्होंने अपने देश
बनी वस्तुओंको जबरन् भारतमें नहीं भरा । वे केवल
और धनके भूखे थे । नित्य लड़ाइयाँ ठनती थीं—कि
राज्य जाता तो किसीके हाथ आता । यवन-कालमें इ
सिवाय और कोई बात नहीं हुई । इसके अतिरिक्त
मुसलमान भाई विदेशोंसे भारतमें आये, वे सबके सब
बस गये—भारतीय बन गये । इस कारण हमारे देशका धन देश
रहा, बाहर नहीं गया । यवनोंने भी हिन्दुओंके दिल दुखानेमें
उठान रखा—लूट-खसोट भी कम नहीं की; परन्तु प्रत्यक्ष ।
बृटिश गवनमटने किस होशियारीसे भारतको अपने अ
कारम कर लिया ! किसीको मालूम भी न होने दिया ! किस
धानासे यवनोंको ठिकाने लगाया—कहीं खून-खराबी न होने
और भारत पर पूर्ण अधिकार कर लिया । बृटिश सरकारने शस्त्र
भारत पर शासन नहीं किया, बल्कि अपनी कुशाग्र बुद्धि द्वारा
व्यर्थ ही सहस्रों मनुष्योंका बलिदान नहीं किया, जैसा कि यवन
कालमें हुआ था । हमारे भारतीय व्यापारी-समाजके लिये कितनी
लज्जास्पद बात है कि विदेशी व्यापारियोंने उनके स्वदेश भारत
व्यापार द्वारा शासन कर लिया ! जरा आप व्यापारके महत्त्व
देखिए । व्यापारमें शासन करनेकी शक्ति भी मौजूद है । एक
भारतीय व्यापारी भी हैं जिन्होंने देशको दुर्भिक्षका क्रीड़ास्थल
भिखारी बना कर पराधीनताके दृढ़ पाशमें बाँध दिया ।

सकको व्यापार नहीं करना चाहिए, यह बात दूसरी है।
त व्यापारी स्वार्थी होता है, उसे अपने मतलबसे मतलब होता
ो राजाके लिये बड़े कलंककी बात है। राजा प्रजाका वही
ध है जो कि पिता-पुत्रका है। ऐसी दशामें व्यापारी पिता
निर्धन पुत्रका धन चूसनेका इरादा करे ऐसे पिताको पुत्र कब
पिता ही मानता जाय! व्यापारसे ही नहीं, बल्कि अनेक प्रका-
ग़ावनोंसे हमारा धन खींचा जाता है। मानो हमारे प्रभुओंने
केन प्रकारेण टका कमाना ही अपने शासनका मुख्य उद्देश माना
फुचे पालनेका भी कर इस असहाय भारतको देना होता है।
सैकल आदि सवारियों पर चढ़कर घूमनेका कर भी देना होता
हाय अपने देशमें हम ही सवारी पर चढ़नेके लिये भी टेक्स दें!
इस अन्यायकी पराकाष्ठा हो चुकी! बात तो यह है कि
ों पर चलनेका किराया है, क्योंकि हमारी सरकार व्यापारी
हम लोग कहा करते हैं कि सरकारने हमारे हितके लिये रेल,
, नहर, सड़क आदि अनेक सामान उपस्थित कर रखे हैं, किंतु
हमारी भूल है—यह सब कुछ उनके स्वार्थ-साधनका मसाला है।
तको दरिद्र बनानेका षड़यंत्र है। इन सबके संचालक विदेशी
पारी हैं। हमारा व्यापारी-समाज अचेत है। हम तो तब सरका-
न्याय समझें जब कि वह सब वस्तुएँ भारतीय व्यापारियों द्वारा
ार करा कर उनसे खरीद कर रेल, तार आदिका प्रबन्ध करे।
उनके पास कच्चा माल न हो तो अन्य देशोंसे मँगा दे। परन्तु,
ं वे प्रत्येक वस्तु अपने देशकी बनी ही भारतमें काम लाते हैं।
। ताताका लोहेका कारखाना रेलें (पटरियाँ) भी तैय्यार करके
सकता है? अवश्य दे सकता है, पर वे लेते नहीं, क्योंकि विदेशी
ापारी जो भारतके धन पर आज गुल छर्रे उड़ा रहे हैं, कल ही

भूखों मरते दिखाई पड़ेंगे। इस प्रकारके व्यापारसे भारतकी लक्ष्मी विदेशोंको चली गई। भारत श्रीहीन हो गया—कान्ति... गया। शासकोंका यह कर्तव्य नहीं है कि जिस देश पर... करना हो उसीको स्वार्थान्ध हो चूस डालें—जिस खेतसे ... करना हो उसकी रक्षा न की जाय। जिस वृक्षसे अच्छे फल... आशा हो और पा रहे हों उसकी जड़में आग लगा दी जाय। ... तक भारतके पास धन है वह देगा, बादमें कहाँसे मिलेगा, ... पर भी कभी सरकारने कुछ सोचा है। तिलोंका तेल निकल... पर खलीमेंसे तेल नहीं मिलेगा। यदि भारत-रूपी कामधेनुसे फल प्राप्त करना है तो इसे निर्बल न कीजिए। इसे पौष्टिक ... खिलाइए, कभी कभी हाथ भी फेरिए ताकि वह अपने ... पहचानने लगे। यदि चारा ही न दोगे तो क्या लेंगे? ... वही ले लें। अतः हम सरकारसे प्रार्थना करते हैं कि ... बातका ध्यान रखे कि भारत दरिद्र है, भूखा है, ... रहा है। यही एक मात्र निवेदन वैश्य-समाजसे है कि ... करते समय इस भूखे भारतकी याद मत भूलो।

" यत्र देशेऽथवा स्थाने भोगान्भुक्त्वा स्ववीर्यतः।
तस्मिन् विभवहीने यो वसेत्स पुरुषाधमः ! ॥ "

वैश्य-समाजके विषयमें हम अब विशेष लिख कर ... समय नष्ट नहीं करना चाहते। " गौ-रक्षा " भी वैश्योंका ए... है. अत एव हम प्रसंग आने पर आगे चल कर इस विषयमें ...

उद्योग-धन्धे ।

" नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वाऽयं नावसीदति । "

सी महत्त्व-पूर्ण और सर्वोपरि कल्याण-प्रचुरा उक्ति है । यदि ठीक सोच विचारके साथ देखा जाय तो आजकलके इस प्रगतिके ँ जो भला बुरा देखा जाता है, इस उक्तिका अर्थ उसी पर र है । इसका सारांश यह है कि कोई देश उन्नत हो गया हो वा उन्नति चाहता हो तो बिना उद्योगके वह कदापि उन्नति कर सकता । अर्थात् सब सुखोंका प्रधान साधन उद्योग ही है । कोई पौराणिक अथवा ऐतिहासिक बात नहीं समझना चाहिए, े हमें पूज्य मान कर अंगीकार करना ही पड़े । किन्तु प्रत्येक ारशील मनुष्य देख सकता है कि आजकलका युग किस का है । इस प्रगतिशील युगमें जिन जिन देशोंने उन्नति की है, ल उद्योग-धन्धोंसे ही की है, और उद्योग-धन्धोंसे ही वे प्रभाव- ली और शक्ति-सम्पन्न हो रहे हैं । परन्तु उद्योग-धन्धोंके साधन क्या हैं और वे किसी रीतिसे प्राप्त किये जाते हैं इसका भी विचार ना आवश्यक है । जिन साधनोंसे देशकी साम्पत्तिक स्थिति सुधार , उन्नति की जा सकती है उसके लिये विशेषतासे उसके निसर्ग- साधन उस देशमें अवश्य होने चाहिए । जैसे कि खनिज और ैज पदार्थोंकी विपुलता, यांत्रिक साधनों तथा शास्त्रीय शोधोंसे उन ार्थोंके तरह तरहके रूपान्तर कर व्यवहारोपयोगी वस्तु बनानेके रखाने, देशमें तैय्यार किये हुए पदार्थ और कीमत, गुण और विपुल- में सुभीतेके साथ दूसरे प्रगतिशील राष्ट्रोंके कारखानोंका मुकाबि- कर उन्हींके अनुरूप हरेक बातमें चलनेकी ताकत रख कर

चीजोंकी बिक्री करना। इसीका स्वर्ग—उद्योग-धन्धे, क
शल और व्यापार इस वर्गीका निरन्तर ऐक्य रहना है। औ
राष्ट्की उन्नतिका द्योतक है। इन पूर्वोक्त बातों पर विचार-पूर्वक
डाली जाय तो सामान्यसे सामान्य मनुष्यको भी हमारे इस
देश पर दया आये बिना न रहेगी। एक वह समय था जब
हमारा भारतवर्ष औद्योगिक उन्नतिके शिखर पर स्थित था; इसके
नैसर्गिक सम्पत्ति, हस्त-कौशल, कारीगरी, दस्तकारी आदि विशे
और विशेषताओंकी बराबरी करनेवाला कोई देश नहीं था। कु
मीनारके पास जो लोहेका अद्भुत स्तंभ है, उसके विषयमें
फरगुसन लिखते हैं--

" यह स्तंभ हमारी आँखें खोल कर निस्सन्देह बतलाता है
हिन्दू लोग उस समयमें लोहेके इतने बड़े खम्भे बनाते थे जो
यूरोपमें बहुत इधरके समयमें भी नहीं बने हैं और जैसे कि अब
बहुत कम बनते हैं। और इसके कुछ ही शताब्दीके इस ल
बराबरके खंभोंको कनरिकके मन्दिरमें शहतीरकी भाँति लो
मिलनेसे हमको विश्वास करना चाहिए कि वे लोग इस धातुका
बनानेमें अपने बादके कारीगरोंकी अपेक्षा बड़े दक्ष थे और
बात भी कम आश्चर्य-जनक नहीं है कि १४०० वर्ष हवा
पानीमें रह कर उसमें अब तक भी मोरचा नहीं लगा है। और उ
का सिरा तथा खुदा हुआ लेख अब तक भी वैसा ही स्पष्ट
गहरा है जैसा कि १४०० वर्ष पहले बनाया गया था।"

पाँचवीं सदीके आरंभमें फाहियान नामक एक चीनी यात्री
तमें आया था। वह पटनेमें कोई तीन वर्ष तक रहा। मह
आशोकके बनवाये हुए छः सातसौ-वर्षके टूटे-फूटे राजम

। मैंचेस्टरसे भारतमें जब कपड़ा आना आरंभ हुआ, तब
बराबरीका कपड़ा बनानेवाली मिलें यदि भारतवर्षमें स्थापित
ो जातीं तो न जाने आज हमारा भारत किस दुरवस्था तक
।। परंतु उपर्युक्त धनाढय महाशयोंने किसी बातका भय न
र साहस और दीर्घोद्योगसे बम्बई तथा अहमदाबादमें सन्
ई० से १८६५ तक तेरह कारखाने कपडेके खोले। जिसमें
नके सदुद्योगका सुमधुर फल मिला और भारतमें उनका
यश फैला।

के उद्योगको फला-फूला देख कर दूसरे लोग भी उत्साहित
हैं और वैसा उद्योग करनेका साहस करते हैं। ठीक इसीके
ार और और लोगोंने भी कारखाने खोले जो दिनों दिन बढ़ते ही
किन्तु ये बातें व्यक्तिशः अथवा एक दिशासे हो गई है;तथापि
कौनसे इतर धंधे और कलाएँ नष्ट हो चुकी हैं और उनसे देशकी
ी हानि हुई इस बातको लोगों पर अच्छी तरह प्रकट
के लिये और उस औद्योगिक हानिका राष्ट्रीय दृष्टिसे
र करनेके लिये कुछ थोड़ी मंडलियाँ शीघ्र ही संगठित
किन्तु उनमें अग्रणीयताका मान किसको दिया जाये, यदि
प्रश्न उपस्थित हो तो उसके लिये स्व० माधवराव रानडे,
व मोरेश्वर कुण्टे इन्हीं दो महाराष्ट्र सज्जनोंका नाम जबान
आता है, किन्तु और और देशके नेता इसमें गिने ही न जावें ऐसा
ना गलत है। अस्तु, इसी बीचमें एक अनुकूल परिस्थिति सर-
की ओरसे उपस्थित हुई। वह यह थी कि सन् १८८८ में लार्ड
रिनने यह मत प्रकट किया कि—" हिन्दुस्थानमें उद्योग-धन्धे,
का विस्तार, उनकी प्रस्तुत स्थिति तथा हरेक जिले अथवा इला-
चलने योग्य धन्धे और उनको जरूरतका कच्चा माल इत्यादि

बृटिश सत्ताके शुरू होते ही हमारे देशके कला-कौशल पर उसका बड़ा विलक्षण प्रभाव पड़ा, जिससे कि उसका विपरीत हुआ। १८ वीं शताब्दीके अन्तमें और उन्नीसवींके इंग्लैण्डमें यांत्रिक शोध हुए और उसके थोड़े काल बाद धीरे राजकीय सत्ता स्थापित हुई। उस सत्ताके कारण द्रव्य प्राप्तिका भण्डार अपने व्यापारके प्रवेशके लिये किया हुआ इंग्लैण्डका भगीरथ प्रयत्न और उस प्रयत्नका भूत होना आदि अनेक अनुकूल परिस्थितियोंके कारण व्यापार, कला-कौशल और कारखानोंको एक साथ ही जना मिली। ऐसी अनुकूल अवस्थामें इंग्लैण्डके व्यापारोंकी स्थिति, सर्वतोपरि समाधानकारक और जनक होने पर उसी दम उसने खुले तौर पर अपनी व्यापार निधड़क आरंभ कर दी। और इस घातक पद्धतिके द्वारा यूरोपीय राष्ट्रोंका माल भारतमें अपना पैर जमा कर जबर्द गया; जिसका परिणाम यह हुआ कि व्यापार-सम्बन्धी स्पर्द्धा विस्तारके साथ आरंभ हुई। अर्थात् बाहिरी माल पर ही संतुष्ट एक पेशा सा हो गया। क्यों न हो, जब कि व्यापारके साधन यांत्रिक साधन ही उस समयके यूरोपियन व्यापारियोंका सामना नेके लिये हमारे देशमें नहीं थे; किन्तु ऐसा होना भी देशके अनुचित था। खैर, परिणाम यह हुआ कि भारतके उद्योग कला-कौशल नाम मात्रको रह गये। आश्चर्यकी बात है कि मौके पर रावसाहब रानडे महाशयने जो बौद्धिक कार्य ठीक उसीके जोड़का था; बल्कि उससे बढ़कर कहा तो भी अतिशयोक्ति न होगी। हमारे गुजराती, पारसी और बन्धुओंने भी उस समय जो कार्य किया है उसको कभी भू

। मँचेस्टरसे भारतमें जब कपड़ा आना आरंभ हुआ, तब
बराबरीका कपड़ा बनानेवाली मिलें यदि भारतवर्षमें स्थापित
ी जातीं तो न जाने आज हमारा भारत किस दुरवस्था तक
ा। परंतु उपर्युक्त धनाढ्य महाशयोंने किसी बातका भय न
र साहस और दीर्घोद्योगसे बम्बई तथा अहमदाबादमें सन्
ई० से १८६५ तक तेरह कारखाने कपड़ेके खोले। जिसमें
उनके सदुद्योगका सुमधुर फल मिला और भारतमें उनका
यश फैला।
कके उद्योगको फला-फूला देख कर दूसरे लोग भी उत्साहित
हैं और वैसा उद्योग करनेका साहस करते हैं। ठीक इसीके
ार और और लोगोंने भी कारखाने खोले जो दिनों दिन बढ़ते ही
किन्तु ये बातें व्यक्तिशः अथवा एक दिशासे हो गई हैं;तथापि
ौनसे इतर धंधे और कलाएँ नष्ट हो चुकी हैं और उनसे देशकी
ी हानि हुई इस बातको लोगों पर अच्छी तरह प्रकट
के लिये और उस औद्योगिक हानिका राष्ट्रीय दृष्टिसे
र करनेके लिये कुछ थोड़ी मंडलियाँ शीघ्र ही संगठित
किन्तु उनमें अग्रणीयताका मान किसको दिया जाये, यदि
प्रश्न उपस्थित हो तो उसके लिये स्व० माधवराव रानडे,
व मोरेश्वर कुण्टे इन्हीं दो महाराष्ट्र सज्जनोंका नाम जबान
ाता है, किन्तु और और देशके नेता इसमें गिने ही न जायें ऐसा
ना गलत है। अस्तु, इसी बीचमें एक अनुकूल परिस्थिति सर-
की ओरसे उपस्थित हुई। वह यह थी कि सन् १८८८ में लार्ड
रिनने यह मत प्रकट किया कि—"हिन्दुस्थानमें उद्योग-धन्धे,
का विस्तार, उनकी प्रस्तुत स्थिति तथा हरेक जिले अथवा इला-
चलने योग्य धन्धे और उनकी जरूरतका कच्चा माल इत्यादि

प दो प्रकारके औद्योगिक विभाग खोले जायँ। भारतीय औद्यो-
बोर्ड वायसरायकी कार्यकारिणी कौंसिलके एक मेंबरकी मात-
हे रहेगा, और उसमें तीन अन्य उत्तरदायित्व-पूर्ण सज्जन
। एक इम्पीरियल इण्डस्ट्रियल सर्विस खोली जायगी। बोर्ड
उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिका काम सोचा और किया करेगा।
तिक बोर्डों पर कार्यके विस्तारका भार रहेगा। प्रान्तिक काममें
नसे विशेषज्ञ और यंत्र-सम्बन्धी काम जाननेवाले आदमी रहेंगे।
रतीय औद्योगिक डिपार्टमेण्ट देहलीमें खोला जायगा। प्रांतिक
भाग औद्योगिक डाइरेक्टरके ताल्लुक रहेगा। प्रांतिक बोर्डमें
धिकांश गैर-सरकारी आदमी ही रहेंगे। बोर्डके विशेषज्ञ इण्डस्ट्रि-
ल सर्विसके ही नौकर होंगे। इस प्रकार डाइरेक्टर प्रांतिक सरका-
का सेक्रेटरी भी हो जायगा।

कार्य-विभाजनके प्रथम अध्यायमें भारतीय औद्योगिक स्थितिका
र्णन करते हुए कहा गया है कि इस देशके निवासी अब भी प्राचीन
णालीके अनुसार खेती करते हैं, इसी कारण उन्हें भर पेट अन्न
क भी नहीं मिलता। पश्चिमी ढग पर अब भी उद्योग-धन्धोंका
चार बहुत कम हो पाया है। दूसरे भारतीय मजदूरोंको कुछ भी
ज्ञान नहीं होता। जंगल तथा मछलीके उद्योग-धन्धोंसे अच्छी
आमदनी हो सकती है, पर यहाँके लोग व्यापारमें तो रुपये लगा
सकते हैं, लेकिन कला-कौशलकी उन्नतिमें अपने रुपये फँसाते हुए
डरते हैं। युद्धके पूर्व लोग बाहरसे आनेवाले माल पर ही अवलम्बित
रहते थे, सरकार भी इन्हें इसी ओर मदद देती थी। इस देशमें सभी
प्रकारके कच्चे माल उपजते हैं, पर न तो लड़ाईके समयमें ही और
न शान्तिके समय ही यह देश अपनी आवश्यक वस्तुओंके बनानेमें
समर्थ हुआ। कपड़े बुननेका काम यहाँ बड़े जोरशोरसे चल सकता
है

ो प्रकारके औद्योगिक विभाग खोले जायँ । भारतीय औद्यो-
ई वायसरायकी कार्यकारिणी कौंसिलके एक मेंबरकी मात-
रहेगा, और उसमें तीन अन्य उत्तरदायित्व-पूर्ण सज्जन
एक इम्पीरियल इण्डस्ट्रियल सर्विस खोली जायगी । बोर्ड
[illegible] ेवा और किया करेगा ।
[illegible] रहेगा । प्रान्तिक काममें
विशेषज्ञ और यंत्र-सम्बन्धी काम जाननेवाले आदमी रहेंगे ।
प औद्योगिक डिपार्टमेण्ट देहलीमें खोला जायगा । प्रांतिक
ग औद्योगिक डाइरेक्टरके तालुक रहेगा । प्रांतिक बोर्डमें
कांश गैर-सरकारी आदमी ही रहेंगे । बोर्डके विशेषज्ञ इण्डस्ट्रि-
सर्विसके ही नौकर होंगे । इस प्रकार डाइरेक्टर प्रांतिक सरका-
सेक्रेटरी भी हो जायगा ।

ार्य-विभाजनके प्रथम अध्यायमें भारतीय औद्योगिक स्थितिका
न करते हुए कहा गया है कि इस देशके निवासी अब भी प्राचीन
ालीके अनुसार खेती करते हैं, इसी कारण उन्हें भर पेट अन्न
मी नहीं मिलता । पश्चिमी ढंग पर अब भी उद्योग-धन्धोंका
ार बहुत कम हो पाया है । दूसरे भारतीय मजदूरोंको कुछ भी
न नहीं होता । जंगल तथा मछलीके उद्योग-धन्धोंसे अच्छी
मदनी हो सकती है, पर यहाँके लोग व्यापारमें तो रुपये लगा
करते हैं, लेकिन कला-कौशलकी उन्नतिमें अपने रुपये फँसाते हुए
रते हैं । युद्धके पूर्व लोग बाहरसे आनेवाले माल पर ही अवलम्बित
हते थे, सरकार भी इन्हें इसी ओर मदद देती थी । इस देशमें सभी
कारके कच्चे माल उपजते हैं, पर न तो लड़ाईके समयमें ही और
शान्तिके समय ही यह देश अपनी आवश्यक वस्तुओंके बनानेमें
मर्थ हुआ । कपड़े बुननेका काम यहाँ बड़े जोरशोरसे चल

क विभाग पर रहेगा। इंजीनीयरिंग तथा धातु-विद्याके दो
मी खोले जायँ। अन्य अध्यायोंमें इस बातका वर्णन है कि
किन किन बातोंमें दखल रखे और यह कि सरकार अपनी
क नीतिको छोड़ दे; क्योंकि अब उससे काम न चलेगा।
तब तक विदेशी माल न ले, जब तक उसे यह न मालूम
कि भारतमें वह माल नहीं मिल सकता। भूमि किस प्रकार
सकेगी और रेलवेकी असुविधाओंको किस प्रकार दूर
जायगा इत्यादि बातों पर विचार करते हुए कमीशन बतलाता
यूँ कि लोग उद्योग-धन्धोंमें रुपये नहीं लगाते अतः सरकार
गेक बैंक भी खोले।

नमें कमीशन बतलाता है कि भारतमें कच्चे मालकी बहुतायत
उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिके लिये यहाँ यंत्र नहीं हैं। यहाँके
र तथा कारीगर यंत्र-विद्यासे अनभिज्ञ हैं, अतः यहाँवालोंको
तोंका मुँह ताकना पड़ता है, इस सब बातोंका सुधार करनेके
बोर्डोंकी स्थापना जरूरी है। इस कामके लिये २६ लाख रु०
होंगे। फिर सात वर्षके भीतर इन स्कूलोंकी तरक्की करनेमें
लाख रु० और लगाने पड़ेंगे।

मालवीयजीका कहना है कि वैज्ञानिक तथा उद्योग-धन्धोंकी शिक्षा
बड़े जोरशोरके साथ ध्यान दिया जाना चाहिए। इन विषयोंकी
कई-संस्थाएँ खड़ी की जानी चाहिए। वैज्ञानिक खोज तथा
व्यापार-सम्बन्धी शिक्षाकी ओर भी पूरा पूरा ध्यान दिया जाना
हिए। कम्पनी-शासनके समयसे भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश
ना कर दिया जाता है, आपने इसका बड़ा मार्मिक चित्र
खींचते हुए कहा है कि मेरी रायमें भारतवर्षके कृषि-प्रधान देश

होते जानेमें ब्रिटिश सरकारकी पॉलिसी ही मुख्य कारण है, जो
लगातार भारतको कच्चे माल भेजनेके लिये लाचार करती आई
१८५८ ई० से भारत-सरकार ब्रिटिश कारखानोंके फायदेके लि
भारतीय रुईकी पैदावार तथा उत्तमता बढ़ाती चली आई
किन्तु भारतवर्ष अच्छे किस्मकी रुई भले ही पैदा करे, पर वह दो
लिये (इंग्लैण्ड और भारतके) काममें आनी चाहिए। सरकार
रुईका माल यहाँ ही बुनवानेकी पॉलिसी अख्त्यार करे। माल
जीका कहना है कि उद्योग-धन्धोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें मिलने
छात्र-वृत्तियाँ बहुत ही कम हैं। भारत-सरकारकी पॉलिसीका इति
इस बातसे भरा पड़ा है कि उसने औद्योगिक उन्नतिकी तर्फ बहुत
कम पैर बढ़ाया है। बड़े मार्मिक शब्दोंमें मालवीयजीका कहना
कि मैं बतला देना चाहता हूँ कि गत डेढ़ शताब्दीमें भारत
इंग्लैण्डकी समृद्धिके लिये क्या क्या दिया है, और अनुदार पॉ
सीके कारण उसने क्या क्या कष्ट सहे हैं। यहाँ तक कि
प्रकारकी प्राकृतिक पैदावार रखते हुए भी आज वह संसा
सबसे अधिक गरीब देश है। मैं जापानी ढंगकी कृषि, उद्
धन्धों तथा साधारण प्रकारकी शिक्षाके प्रचार पर जोर देता
यह अफसोसकी बात है कि इंग्लैण्डको तो प्राथमिक शिक्षा
आवश्यकता है, पर भारतवर्ष उससे वंचित रखा जाता है। य
भारतीय उद्योग-धन्धोंकी उन्नति होनी बदी है तो भारतीयों
संसारकी स्पर्द्धाके लिये तैय्यार हो जाना चाहिए। इसके लिये उ
शिक्षाके औद्योगिक विद्यालय तो खुलें ही, पर साथ ही विदेशोंमें
भारतीय विद्यार्थी भेजे जायँ। मालवीयजीकी राय है कि आय
निर्यातकी बहुतायतके कारण यह अत्यन्त आवश्यक है कि सर
रतीय जहाज बनवाये। आप औद्योगिक विशेषज्ञोंके घूम-घूम

करनेका घोर विरोध करते हुए कहते हैं कि यह गाड़ीके पीछेमें पहिया बाँध देना है। इससे कुछ भी काम नहीं। स्थान पर आदर्श कारखाने या खोज करनेवाली संस्थाएँ खोली जानी चाहिए। साथ ही आपकी राय है कि इम्पीरियल ोगिक बोर्डकी रचना ऊट-पटांग है। उसकी जगह सिर्फ एक रामर्श-दाता बोर्ड स्थापित किया जाय, जिसके अधिकांश स्य व्यवस्थापक कौंसिलके गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा ही चुने यें। इससे दो लाख रुपये वार्षिककी बचत होगी। साथ ही बोर्डको रत-सरकारका पुतला बना कर छोड़ देना भी एक महज लचर त है। अन्तमें आपका कहना है कि भारतीय ग्रेज्युएटोंको ही पार्टमेंटमें पद मिलने चाहिए। १५ लाखक मकानात और तीस ख एकबारगी तथा ६ लाख रुपया वार्षिक कला-कौशल आदिकी उन्नतिके लिये यदि खर्च किये जायँ तो भारतका दरिद्रता और निःसंदेह शीघ्र ही छुटकारा हो सकता है।

होते जानेमें ब्रिटिश सरकारकी पॉलिसी ही मुख्य कारण है, जो
लगातार भारतको कच्चे माल भेजनेके लिये लाचार करती आई
१८५८ ई० से भारत-सरकार ब्रिटिश कारखानोंके फायदेके लि
भारतीय रुईकी पैदावार तथा उत्तमता बढ़ाती चली आई
किन्तु भारतवर्ष अच्छे किस्मकी रुई भले ही पैदा करे, पर वह दो
लिये (इंग्लैण्ड और भारतके) काममें आनी चाहिए । सरकार
रुईका माल यहाँ ही बुनवानेकी पॉलिसी अख्त्यार करे । माल
जीका कहना है कि उद्योग-धन्धोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें मिलने
छात्र-वृत्तियाँ बहुत ही कम हैं । भारत-सरकारकी पॉलिसीका इति
इस बातसे भरा पड़ा है कि उसने औद्योगिक उन्नतिकी तर्फ बहु
कम पैर बढ़ाया है । बड़े मार्मिक शब्दोंमें मालवीयजीका कह
कि मैं बतला देना चाहता हूँ कि गत डेढ़ शताब्दीमें भारत
इंग्लैण्डकी समृद्धिके लिये क्या क्या दिया है, और अनुदार
सीके कारण उसने क्या क्या कष्ट सहे हैं । यहाँ तक कि
प्रकारकी प्राकृतिक पैदावार रखते हुए भी आज वह सं
सबसे अधिक गरीब देश है । मैं जापानी ढंगकी कृषि, उ
धन्धों तथा साधारण प्रकारकी शिक्षाके प्रचार पर जोर देत
यह अफसोसकी बात है कि इंग्लैण्डको तो प्राथमिक शि
आवश्यकता है, पर भारतवर्ष उससे वंचित रखा जाता है
भारतीय उद्योग-धन्धोंकी उन्नति होनी बदी है तो भारत
संसारकी स्पर्द्धाके लिये तैय्यार हो जाना चाहिए । इसके लिये
शिक्षाके औद्योगिक विद्यालय तो खुलें ही, पर साथ ही विदेश
भारतीय विद्यार्थी भेजे जायँ । मालवीयजीकी राय है कि अ
निर्यातकी बहुतायतके कारण यह अत्यन्त आवश्यक है कि र
भारतीय जहाज बनवाये । आप औद्योगिक विशेषज्ञोंके घूम-घ

रनेका घोर विरोध करते हुए कहते हैं कि यह गाड़ीके चिवाँ पहिया बाँध देना है। इससे कुछ भी लाभ नहीं। स्थान पर आदर्श कारखाने या खोज करनेवाली संस्थाएँ की जानी चाहिए। साथ ही आपकी राय है कि इम्पीरियल रक बोर्डकी रचना ऊट-पटांग है। उसकी जगह सिर्फ एक मर्श-दाता बोर्ड स्थापित किया जाय, जिसके अधिकांश व्यवस्थापक कौंसिलके गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा ही चुने इससे दो लाख रुपये वार्षिककी बचत होगी। साथ ही बोर्डको [illegible] छोड़ देना भी एक महज लचर [illegible] कि भारतीय ग्रेज्युएटोंको ही [illegible] १५ लाखके मकानात और तीस [illegible] वार्षिक कला-कौशल आदिकी के लिये यदि खर्च किये जायँ तो भारतका दरिद्रता और से शीघ्र ही छुटकारा हो सकता है।

ो कर लगाया जाता है उससे दुगुना कर यहाँके देशी व्यापारी
के बनाये हुए कपड़े पर लगाया जाता है। क्या कोई इस
यका कारण बतला सकता है? कपड़े पर कर लगाना अथवा
ाना हिन्दुस्थानके लोगोंके अधिकारमें नहीं है। ये सब बातें
जी अधिकारियोंके अधीन हैं। तभी तो भारतीयोंके माल पर
तमें ही अधिक कर वसूल किया जाता है!
मंव खेतीका उदाहरण लीजिए। जैसे जैसे खेतमें अना-
दा होता है वैसे वैसे हरेक बीस अथवा तीस वर्षोंके बाद
न पर महसूल बढ़ाया जाता है। इससे जो किसान अपने
में कष्ट करके खेतीकी उपज बढ़ाता है, उस उपजका फायदा
को पूरी तरहसे सदाके लिए नहीं मिलता। इसका कारण क्या
! इसका कारण यह है कि जमीन पर महसूल बढ़ाना न बढ़ाना
तानके अधीन नहीं है। वे सब बातें अँगरेजी अधिकारियोंके हाथमें
। अँगरेजी अधिकारी विदेशी होनेके कारण भारतीय किसानोंकी
वा नहीं करते। व्यापारके बारेमें तो लिखनेकी भी जरूरत
ीं है। क्योंकि अँगरेजी अधिकारी छोटेसे बड़े तक मैंचेस्टरके
ापारियोंके कल्याणकी ओर विशेष ध्यान देते हैं। वे हिन्दुस्थानके
ापारियोंके कल्याणकी ओर कम ध्यान देते हैं—बल्कि ध्यान ही
ीं देते।
जब तक ये ही बातें—वर्तमान अवस्था—बनी हुई हैं, तब तक
न्दुस्थानी व्यापारी और किसान अपना व्यापार और खेती बढ़ा कर
नति नहीं कर सकते। यह साधारण बात है कि जिस प्रकार
येक मनुष्य अपने अपने हितकी ओर ध्यान देता है उसी तरह
ंगरेज अधिकारी भी अपने अँगरेज भाइयोंके हितकी ओर अधिक
यान देते हैं।

आर्थि कदशा।

लॉर्ड माण्डेगू साहब ' लण्डन टाइम्स ' नामक समाचार लिखते हैं कि हिन्दुस्थानके राजनैतिक सुधारों आर्थिक सुधार होने चाहिए—

" The economic development of India is more important than the alternation of the machinery of Government."

" अर्थात्–भारतीय राजनीतिमें हेरफेर करनेकी अपेक्षा हिं स्थानकी आर्थिक अवस्था सुधारनेकी अधिक आवश्यकता है।"

हिन्दुस्थानके आर्थिक साधन बढ़ानेके ३-४ तरीके हैं। खेती उन्नति होनी चाहिए। व्यापारकी उन्नति होनी चाहिए। वैज्ञानिक और औद्योगिक शिक्षा बढ़ानी चाहिए। वैज्ञानिक और औद्योगिक शिक्षा बढ़ानेसे भारतवासियोंकी बुद्धिमें वृद्धि होगी। परन्तु उसके लिये मौका तो चाहिए? लॉर्ड मांटेगू साहब कहते हैं कि खेती और व्यापारकी उन्नति होनेसे भारतकी आर्थिक उन्नति होगी। क्या यह बात ठीक है? हाँ जरूर, बात उचित तो है, परन्तु आधी। क्योंकि जब तक खेती और व्यापार पूर्ण-रूपसे हिन्दुस्थानी लोगोंके अधीन नहीं हैं तब तक खेती और व्यापारकी उन्नति होनेसे हिन्दुस्थानके लोगोंको कुछ भी फायदा नहीं है। आज कल बम्बई सरीखे शहरोंमें जो व्यापार बढ़ा हुआ दृष्टि आता है वह विदेशी लोगोंका व्यापार है। कपड़ेके व्यापारमें हिदुस्थानी लोग मेंचेस्टरवाले व्यापारी लोगोंका सामना नहीं कर सकते। क्योंकि मेंचेस्टरवाले व्यापारी लोगोंके मा

क इस देशके लोगोंकी अवस्था बड़ी ही सोचनीय है, और
पारके आँकड़े दिखा कर हमें हमारी समृद्धि बताई जाती है
कटे पर नमकका काम करती है; क्योंकि वास्तवमें समृद्धिके
रिद्रता है और आँकड़ोंकी बाजीगरी उसे समृद्धि बताती है।
गत मि० डिगवीने 'अपने समृद्धशाली भारत' नामक ग्रंथमें
र दिया है कि भारत बड़ा गरीब देश है और उसमें इध-
कालोंमें जितने मनुष्य मरे हैं उतने सौ वर्षोंकी लड़ाइयोंमें भी
रे हैं। भारत-पितामह दादाभाई और मि० डिगवीके सर-
कागज-पत्रोंसे भारतकी दरिद्रता सिद्ध करने पर भी अभी तक
ननेमें आ रहा है कि भारतकी आर्थिक उन्नति हो रही है।
वा-विश्वविद्यालयमें, भूतपूर्व अर्थशास्त्राध्यापक श्रीयुत् मनु सूबे-
बम्बईके सिडनहम व्यापारिक कॉलिजकी ग्रेज्युएट्स एसोसि-
और स्टूडेण्ट्स यूनियनकी ओरसे सप्रमाण सिद्ध कर दिया है
० वर्षोंमें भारतकी आर्थिक उन्नति होनेकी जो बात कही
है यह कल्पना-मात्र है। मि० सूबेदारका कहना है कि व्यापा-
आँकड़ोंमें वृद्धि या रोकड़-बाकी, सोनेकी आमद या ज्वाइंट
कम्पनियोंके मूलधनमें वृद्धि तथा धूमधामी दिल्ली-दरबार
बाहरी बातें भारतकी समृद्धिकी झूठी कसौटियाँ हैं।
न्तु यदि भारत समृद्ध नहीं है तो व्यापार बढ़ता क्यों दिखता
मि० सूबेदार कहते हैं कि २५ लाख आदमी प्रति वर्ष
रते हैं और भारतमें " औद्योगिक क्रांति " नामकी विपत्ति
है, इस लिये भारतका व्यापार बढ़ रहा है। जो चीजें खाई
जाती उनकी तथा कच्चे मालकी खेती बढ़ रही है और रेलें
के कारण यह कच्चा माल यहाँ तैय्यार होनेके बदले विदेशोंको
। जाता है। भारतवर्षकी शिल्पकलाका नाश हो जानेसे चतुर

भारतीय किसान और व्यापारी तब तक अपनी खेती
व्यापारकी कुछ भी उन्नति नहीं कर सकते जब तक कि
अपने काममें स्वाधीन अथवा स्वतंत्र नहीं हैं। अत एव
रूपसे कह सकते हैं कि राजनैतिक सुधार और आर्थि
हमेशा साथ ही होते हैं। पहले आर्थिक सुधार औ
राजनैतिक सुधार हों, यह वात बिलकुल गलत है। हा
बतला चुके हैं कि राजनैतिक एवं आर्थिक सुधार हमे
साथ ही होते हैं। जैसे जैसे राजनैतिक सुधार होंगे,
आर्थिक सुधार भी होंगे और आर्थिक सुधारोंके साथ साथ
और औद्योगिक सुधार भी बढेंगे। जब तक आर्थिक सुधा
तब तक वैज्ञानिक और औद्योगिक सुधार होनेके लिये भी
नही मिलेगा। क्योंकि सब बातें आर्थिक सुधारों पर निर्भर
आर्थिक उन्नति राजनैतिक उन्नतिके साथ साथ होती है। हम
प्रार्थना करते हैं कि राजनैतिक सुधार करनेके लिये हमें वा
दे जिससे हमारी आर्थिक उन्नति हो। आर्थिक उन्नति
भारतकी दरिद्रता दूर होगी और साथ ही दुर्भिक्षसे छुटकार

भारतकी आर्थिक दशाके विषयमें इधर कई वर्षोंसे दो
जा रहे हैं। अँगरेज और वर्तमान अँगरेजी शासनके पक्षपा
हैं कि भारतकी आर्थिक अवस्था दिनों दिन उन्नत हो रह
भारतवासी कहते हैं कि हम दिनों दिन दरिद्र होते जा
इसी मतद्वयीके कारण ऋषिकल्प दादाभाई नौरोजीने कहा
भारत दो हैं, एक हिन्दुस्थानियोंका तथा दूसरा अँगरेजों अ
यूरोपियनोंका। भारतवासियोंका भारतवर्ष गरीव है, पर अँग
यूरोपियन नाना प्रकारसे—अफसर और व्यापारी रूपसे—
धन ले जाते हैं, इस लिये भारत उन्हें अमीर देख पड़ता है।

मुच इस विषयकी ओर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए नहीं दिया जाता । इसका फल यह होता है कि भारतकी शका सच्चा वृत्तान्त प्रकाशित नहीं होता । आर्थिक अवस्थाका त्र मि० सूबेदारने खींचा है, वह बड़ा ही भयंकर है । मि० की बातोंसे जाना जाता है कि भारत एक प्रकारसे विदेशियोंके न्धक हो रहा है । यहाँ विदेशियोंका जितना अधिक व्यापार जाता है उतने ही हम दबते जा रहे हैं । हम इस बातके ही विरुद्ध रहे हैं कि हमें आवश्यकताके समय तो विदेशोंसे न व्याज पर रुपया लेना पड़े और हमारा रुपया विदेशियोंके कम व्याज पर लगे । पर भारतकी अर्थ-व्यवस्थाकी यह विचित्रता र जब तक इसका संशोधन न होगा तब तक यही दशा । दूसरी बात यह है कि आवश्यकता होने पर हम विदेशियोंसे उधार लें सही, पर उन्हें अपने रुपयेसे देशका दोहन न करने एक देशका दूसरेसे उधार लेना बुरा नहीं है और काम पड़ने पयेसे अधिक लाभ उठानेके लिये रुपया उधार लेना भी त ही है, पर उस रुपयेकी व्यवस्था हमारी आज्ञासे होनी हिए । रेलें बनानेमें पानीकी तरह रुपया खर्च किया गया है । समें एक मील रेल बनानेमें ३४ लाख रु० खर्च किये गये थे, कि पूंजीवाले समझते थे कि हमें तो मूल पर व्याज मिलेगा, है रुपये रेल बनानेमें लगा दिये जावें या नदीमें फेंक दिये जावें । अनापशनाप खर्चके कारण कई वर्षों तक रेल भारत पर बोझ रही । मि० सूबेदार कहते हैं कि धन एकत्र करने, सामान और ह खरीदने, पटरी आदि बिछानेके ठेकोंमें बेढब घूँस खोरी ही का कारण है ।

मि० सूबेदारने करेन्सी और नोटोंके विषयमें भी मार्केकी बातें

कारीगर मातृभूमिके भाररूप बन मजदूरी करनेको लाचार।
लाखों मनुष्यों पर गत तीस वर्षोंमें जो यह विपद् आई
व्यापारके आँकड़े या पाश्चात्य ढंगके कारखाने बढ़नेसे दूर न
सकती। खाद बाहर भेजने और कण्डे जलानेसे खेतीमें
हुइ है उससे विशेष लाभ नहीं हो सकता। भारत ऋणी
और विदशियोंके अपना मुनाफा फिर इसी देशमें लगा
कारण इस पर बाहिरी लोगोंका दावा ह। इस देशकी म
अधिकाधिक बन्धक हो रही है, क्योंकि जिस आसानीसे
विदेशी मूलधन लगाया जा सकता है, और शीघ्रतासे विदे
नील-चायके बागीचों, खानों, जंगलों, जहाजी-कम्पनियों, रेल
खानों, बैंकों आदिमें लगा रुपया बढ़ रहा है—और जिस
इस देशमें प्रति वर्ष कर रूपसे बहुत सा रुपया विदेश चला
उससे हमें अपनी आर्थिक अवस्था पर विचार करना चाहिए
१० करोड़ पौण्ड या डेढ़ अरब रुपया हमने बृटिश सरकारको
है, उसका अर्थ यह है कि इस देशके उद्योग-धन्धे तीस वर्षसे
बन्द कर दिये गये। भारतका १ अरब रुपया विदेशमें भी
है; जिसमें प्रायः सत्तर करोड़ तो पेपर-करेन्सी-रिजर्वमें और
तीस करोड़ गोल्ड-स्टेण्डर्ड-रिजर्व या स्वर्ण-भाण्डारमें है। य
अरब रुपया गरीब भारतने बहुत धनी देशको ३॥) से ४
सैकड़े व्याज पर दिया है और इसमें प्रत्येक १०० का दाम
५२ से ७० रह गया है। जब विदेशोंमें हमारी इतनी का
लगी हुई है और उसका दाम इस तरह घट रहा है, तब हि
नमें विदेशियों द्वारा परिचालित ज्वाइण्ट स्टॉक कम्पनियाँ औ
वेट कारखाने बढ़ रहे हैं। होम चार्जेज या हिन्दुस्थानके वि
खर्चके विषयमें जो बातें हैं उनसे ये भिन्न और अधिक महत्त्व

ुच इस विषयकी ओर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए
नहीं दिया जाता। इसका फल यह होता है कि भारतकी
का सच्चा वृत्तान्त प्रकाशित नहीं होता। आर्थिक अवस्थाका
र मि० सूबेदारने खींचा है, वह बड़ा ही भयंकर है। मि०
की बातोंसे जाना जाता है कि भारत एक प्रकारसे विदेशियोंके
ध्यक हो रहा है। यहाँ विदेशियोंका जितना अधिक व्यापार
जाता है उतने ही हम दबते जा रहे हैं। हम इस बातके
ी विरुद्ध रहे हैं कि हमें आवश्यकताके समय तो विदेशोंसे
ब्याज पर रुपया लेना पड़े और हमारा रुपया विदेशियोंके
म ब्याज पर लगे। पर भारतकी अर्थ-व्यवस्थाकी यह विचित्रता
जब तक इसका संशोधन न होगा तब तक यही दशा
। दूसरी बात यह है कि आवश्यकता होने पर हम विदेशियोंसे
उधार लें सही, पर उन्हें अपने रुपयेसे देशका दोहन न करने
क देशका दूसरेसे उधार लेना बुरा नहीं है और काम पड़ने
पयेसे अधिक लाभ उठानेके लिये रुपया उधार लेना भी
ही है, पर उस रुपयेकी व्यवस्था हमारी आज्ञासे होनी
ए। रेलें बनानेमें पानीकी तरह रुपया खर्च किया गया है।
में एक मील रेल बनानेमें १४ लाख ६० खर्च किये गये थे,
पूंजीवाले समझते थे कि हमें तो मूल पर ब्याज मिलेगा,
रुपये रेल बनानेमें लगा दिये जावें या नदीमें फेंक दिये जावें।
अनापसनाप खर्चके कारण कई वर्षों तक रेल भारत पर बोझ
रही। मि० सूबेदार कहते हैं कि धन एकत्र करने, सामान और
खरीदने, पटरी आदि बिछानेके ठेकोंमें बेहद घूँस खोरी ही
ा कारण है।
मि० सूबेदारने करेन्सी और नोटोंके विषयमें भी मार्केकी बातें

कही हैं। बताया है कि जबर्दस्ती १ शिलिंग ४ पेंसका लग
रखनेकी व्यवस्था पर प्रसन्नता प्रकट की जा रही है।
१९०७-९ ई० में और अब समरके कारण यह व्य
हो गई है। जब भारतसे जानेवाले मालके पक्षमें ए
दर गिर रही थी, तब १ शिलिंग ४ पेन्स कर दी
जब वह बढ़ने लगी और उससे भारतीय व्यापा
पहुँचने लगी तब दर बढ़ने दी गई; क्योंकि
करनेसे इंग्लेण्डसे आनेवाले मालको हानि पहुँचती।
व्यवस्था पर कैसी सुंदर टीका है। नोटोंके विषयमें मि०
कहना है कि जब नोट चला कर सोना बचाया जाय
उद्योग-धन्धोंके सहायतार्थ देशके बैंकोंमें रखा जाय, पर
पर दूसरोंको न दिया जाय, तब नोट चलानेसे किफाय
हमें सब विषयों पर अपने देशके हितकी दृष्टिसे वि

पशु-धन।

स्तु पशु देशकी एक बड़ी भारी संपत्ति है। भारत प्रत्येक
बातमें दरिद्र है। यदि अन्न और धनमें दरिद्र है तो पशु-
कंगाल है। हमें दुःख है कि यहाँ कृषक तो अधिक हैं,
तु कम हैं। धुरन्धर डाक्टरों और वैद्य-शास्त्रियोंका यही मत
ध बड़ा बलवर्धक भोज्य पदार्थ है; क्योंकि उसमें मनुष्य-
रक्षा करने और शरीरको बलिष्ट बनानेवाली सभी वस्तुएँ
पाये जाते हैं। केवल दूधके ही पीनेसे मनुष्य भली भाँति
ो कर रह सकता है—फिर चावल, आटे आदि किसी पदा-
ावश्यकता नहीं रहती। इसके अतिरिक्त रोगियों, बूढ़ों,
और जवानों आदि सभीके लिये एक मात्र पुष्टिकारक द्रव्य
है। परन्तु ऐसे आवश्यक और उपयोगी पदार्थका प्राप्त होना
न दुर्लभ होता जा रहा है। भारतके अर्थशास्त्र-विचक्षण
न भिन्न प्रकारके लेखो तैय्यार करनेवालोंका मत है कि
या बीस वर्षके पश्चात् शुद्ध और ताजे दूधका दर्शन ही
गा। इस बातके ध्यानमें आते ही बड़ी गंभीर चिंता उप-
ती है। इसमें सन्देह नहीं कि सभ्यताके बढ़नेके साथ ही
दूरोंकी मजदूरी और अन्यान्य आवश्यकीय पदार्थोंमें वृद्धि
रही है। परन्तु भारतमें इस समय जो दूधका भाव
हा है वह आवश्यकतासे अधिक और असामान्य है, पर
रीति पर चीजोंके दाम चढ़नेके कारण वह महँगा होता
रहा देता है। क्योंकि इंग्लैण्ड और अमेरिकामें अन्यान्य
कीय पदार्थ भारतसे दुगुने और तिगुने दामों पर बिकते

पर भी वहाँ दूधका भाव एक आने सेरसे अधिकका नहीं जब कि भारतमें, गाँवों या शहरोंमें कहीं पर भी दूधका आने सेर और ४ आने सेरके औसतसे कभी कम नहीं होता।

बालकोंकी चढ़ी बढ़ी मृत्यु-संख्या, राजयक्ष्मा आदि प्राण-नाशक रोगोंका प्रकोप, शरीरकी शक्तिका ह्रास और आक्रान्त होनेकी संभावना ये सब यथेष्ट पुष्टिकारक भोज्य न मिलनेके ही कारण होते हैं। विशेष रूपसे दूधके अभाव ये विपत्तियाँ घेरती हैं।

भारतीय राष्ट्रकी रक्षा और उन्नतिके लिये हम सबको उन बातोंके दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिए जो शुद्ध और दूधकी प्राप्तिमें विघ्न डाल रही हैं और दूधके भावको बेहद हैं। हम यहाँ यह सिद्ध करनेका प्रयत्न करेंगे कि गो-पालन गो-रक्षण ही भारतवासियोंकी दूधकी प्राप्तिकी समस्या हल लिये ठीक उपाय नहीं है, बल्कि भारतके अनेक शिक्षित अशिक्षित नव युवाओंको लिये व्यवसायकी व्यवस्था कर देनेका परमोत्तम साधन है।

नीचेका लेखा पढ़नेसे यह बात स्पष्ट हो जायगी कि एक गायके द्वारा जो खालिस आमदनी होगी वह आमदनी एक क्लार्क या एक स्कूलके मास्टरकी आमदनीके बराबर है। दो गायोंकी जितनी आमदनी होगी उतनी ही एक एम० ए० व्यक्तिकी, एक स्कूलके सेकण्ड मास्टरकी अथवा किसी ऑफिस हेडक्लार्ककी आमदनी होगी। एक स्कूलका हेडमास्टर या या जूनियर मुंसिफ जितना पैदा कर सकता है उतना ही आदमी पैदा कर सकता है जिसके यहाँ चार गायें हैं।

महीने तक गौकी गर्भावस्थामें उसका
नग ५०) रु० खर्च होंगे और जिस समय
च सेर दूध नित्य देगी उस समय वह दूने

ुधार गौओं और दूधकी बहुलताके लिये
ाज भी भारतमें गौओंकी संख्या जितनी
ही है; किन्तु साथ ही यहाँकी जन-संख्या
के भारतीय गौएँ भारतीय प्रजा-जनोंके
ो अच्छी नहीं रहीं, जितनी कि पहले हुआ
ले सरीखा दूध ही देती हैं। मूर्खतामें फँस
ाका व्यवहार करके ही हमने इस प्रका-
है। परन्तु अब इस बातकी आवश्यकता है
अपनी की हुई भूलको सुधारें।

करना चाहिए कि दूधके इतने कम परि-
नक रीति पर मिलनेका कारण क्या है?
को दूर करनेका हम क्या उपाय कर सकते
ोटा प्रदेश भी अपने यहाँके जमे दूधके
को पाट सकता है और भारत जैसा सुवि-
कताके लिये भी दूध नहीं पैदा कर सकता
ुखी होता है।

प्रधानतया दो कारण हैं। एक तो गौओंकी
ुनके दूध · · ·नेकी सामर्थ्यका ह्रास।

पर भी वहाँ दूधका भाव एक आने सेरसे अधिकका नहीं जब कि भारतमें, गाँवों या शहरोंमें कहीं पर भी दूधका आने सेर और ४ आने सेरके औसतसे कभी कम नहीं होता

बालकोंकी चढ़ी बढ़ी मृत्यु-संख्या, राजयक्ष्मा आदि प्राण-नाशक रोगोंका प्रकोप, शरीरकी शक्तिका ह्रास और आक्रान्त होनेकी संभावना ये सब यथेष्ट पुष्टिकारक भोज्य न मिलनेके ही कारण होते हैं। विशेष रूपसे दूधके अभा ये विपत्तियाँ घेरती हैं।

भारतीय राष्ट्रकी रक्षा और उन्नतिके लिये हम सबको उन बातोंके दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिए जो शुद्ध और दूधकी प्राप्तिमें विघ्न डाल रही हैं और दूधके भावको बेहद हैं। हम यहाँ यह सिद्ध करनेका प्रयत्न करेंगे कि गो-पाल गो-रक्षण ही भारतवासियोंकी दूधकी प्राप्तिकी समस्या हल लिये ठीक उपाय नहीं है, बल्कि भारतके अनेक शिक्षि अशिक्षित नव युवाओंको लिये व्यवसायकी व्यवस्था कर देने परमोत्तम साधन है।

नीचेका लेखा पढ़नेसे यह बात स्पष्ट हो जायगी कि एक गायके द्वारा जो खालिस आमदनी होगी वह आमदनी एक क्लार्क या एक स्कूलके मास्टरकी आमदनीके बराबर है। दो गायोंकी जितनी आमदनी होगी उतनी ही एक एम० ए० व्यक्तिकी, एक स्कूलके सेकण्ड मास्टरकी अथवा किसी ऑ हेडक्लार्ककी आमदनी होगी। एक स्कूलका हेडमास्टर या प्र या जूनियर मुंसिफ जितना पैदा कर सकता है उतना ही उ आदमी पैदा कर सकता है जिसके यहाँ चार गायें हैं।

ऐसा कठिन आ गया है, और दूधकी माँग इतनी बढ़ी
; अब दूधके व्यापारको जाहिल और लालची ग्वालोंके
उ छोड़ना कदापि उचित नहीं है। हमें अब उठ कर होशि-
जाना चाहिए और अपने नवयुवाओंको इस व्यापारकी
त करना चाहिए। क्योंकि इसमें पूंजी भी कम लगती है
क्षाकी भी बहुत कम जरूरत है। नहीं तो यह होगा कि
पान्य व्यवसायोंको यूरोपियन व्यापारियोंने रुपया लगा कर
ाथमें कर लिया उसी तरह इस व्यापारको भी वे अपने
कर लेंगे।

हमें यह देखना चाहिए कि एक गायके लिये कितनी पूँजी-
वश्यकता है? उसके दूधसे कितनी आमदनी होगी और
खिलाने पिलानेमें कितना खर्च पड़ेगा।

लीजिए एक देहाती गाय पाँच सेर दूध नित्य प्रति देती है।
च सेरवाली गायका मूल्य १००) और ९०)के बीचमें होगा।
ाने सेरके हिसाबसे उसका ५ सेर दूध १।) रु० नित्यकी
अब जरा नित्यका खर्चा जोड़िए। दो पैसे प्रति सेरके हिसा-
सेर भूसा छः पैसेका हुआ, एक आने सेरवाली खली आधा
पैसेकी हुई और भूसी-चोकर इत्यादि दो आने रोजकी
लीजिए, अत एव सारा खर्च मिला कर।) आने रोज हुआ।
ार खालिस आमदनी १) रु० रोजकी हुई। सुतरां एक मही-
३०) रु० आमदनी हुई, जो कि एक सामान्य ग्रेज्युएट स्कूलके
या किसी दफ्तरके हेडक्लर्ककी मासिक आयके बराबर है।

बात यहाँ पर यह कह देना है कि ऊपरके आमदनी और
लेखेमें, गौशालाका किराया, नौकरोंका वेतन, दूधकी बिक्रीकी

ोंकि ६ या ७ महीने तक गौकी गर्भावस्थामें उसका
ा करनेसे लगभग ५०) रु० खर्च होंगे और जिस समय
के बाद वह पाँच सेर दूध नित्य देगी उस समय वह दूने
केगी।

ालसे भारत दुधार गौओं और दूधकी बहुलताके लिये
ता आया है। आज भी भारतमें गौओंकी संख्या जितनी
, उतनी कहीं नहीं है; किन्तु साथ ही यहाँकी जन-संख्या
क है। खेद है कि भारतीय गौएँ भारतीय प्रजा-जनोंके
स्वास्थ्यमें उतनी अच्छी नहीं रहीं, जितनी कि पहले हुआ
, और न वे पहले सरीखा दूध ही देती हैं। मूर्खतामें फँस
के प्रति निर्दयताका व्यवहार करके ही हमने इस प्रका-
ति पैदा कर दी है। परन्तु अब इस बातकी आवश्यकता है
ावधान होकर अपनी की हुई भूलको सुधारें।

हमें यह विचार करना चाहिए कि दूधके इतने कम परि-
और असन्तोष-जनक रीति पर मिलनेका कारण क्या है?
न्तोष-प्रद स्थितिको दूर करनेका हम क्या उपाय कर सकते
जरलैण्ड जैसा छोटा प्रदेश भी अपने यहाँके जमे दूधके
संसारके बाजारोंको पाट सकता है और भारत जैसा सुवि-
ा अपनी आवश्यकताके लिये भी दूध नहीं पैदा कर सकता
ा हृदय बेतरह दुखी होता है।

े कम मिलनेके प्रधानतया दो कारण हैं। एक तो गौओंकी
कमी और दूसरे उनके दूध पैदा करनेकी सामर्थ्यका ह्रास।
क्यों पैदा होती है। इस लिये कि एक तो अच्छे साँड
ाथ और दूसरे गोचर-भूमिका अभाव तथा खाने

उचित और यथेष्ट चारेकी कमीके कारण गौओंकी शारीरिक
ठीक नहीं रहती। इनके आतिरिक्त रोगोंके कारण गौओं
और अन्य विधियोंके द्वारा गोवंशका बढ़ता हुआ क्षय भी
तीसरा कारण है। उत्तम साँडों और गोचर-भूमिका प्रबंध
पारस्परिक सहयोगिता और सहायतासे तथा सरकार और म्यु
पालिटियों या ज़िला बोर्डोंके ध्यान देनेसे हो सकता है।

गौके दूधका परिमाण, उसकी स्वास्थ्य-वर्द्धक तथा दूध
करनेकी शक्ति यह सब उत्तम साँडों पर निर्भर है। दुर्भा
साँड अब न तो यथेष्ट संख्यामें ही मिलते हैं और न वे सर्वथा
प्रकारसे योग्य ही होते हैं। उदाहरणार्थ हवड़ा जिलेमें
गौओंके बीचमें एक साँड है। यह बड़े आश्चर्यका विषय है
साँडोंका तो इतना अभाव और हम गोवंशको उन्नत देखना
प्रत्येक गाँवके निवासियोंको चाहिए कि वे ५० गौओंके बीच
उत्तम साँड रखें। हमारे यहाँ शास्त्रोंमें इस अभावको दूर
लिये "वृषोत्सर्ग" नामक एक कर्मका विधान है, जिसमें मृ
नाम पर चक्र-त्रिशूलादि चिन्होंसे अंकित कर बैल स्वतन्त्र छोड़
जाते हैं। किन्तु खेद है कि हमारे धार्मिक कृत्योंमें भी इस दा
शिथिलता उत्पन्न कर दी, तभी तो हमारी यह अधोगति है।
कभी ऐसी भी आवश्यकता पड़ेगी कि अधिक दूध देनेवाली
अच्छी गो-सन्तान उत्पन्न करनेके लिये, कम दूधवाली म
गायके साथ अन्य स्थानका उत्तम साँड बुला कर समागम क
पड़ेगा। यदि ऐसा किया जाय तो बड़ी होशियारीके साथ
करनेकी आवश्यकता है। बड़े बड़े शहरों और गाँवोंमें
सिपालिटियों और ज़िला बोर्डोंको उत्तम साँडोंका प्रबन्ध करना चा

वर-भूमिका प्रबन्ध जमींदारोंकी सहायतासे हो सकता है ।
। जो गोचर-भूमि थी वह खेतीके काममें ले ली गई है, अत एव
से भी इस विषयमें सहायता माँगनी चाहिए ।
ुओंके भिन्न भिन्न रोगोंके निदान और चिकित्सा-सम्बन्धी
प्रकाशित होनी चाहिए । भिन्न भिन्न प्रान्तोंकी सरकारें इस
ो कर भी रही हैं । प्रत्येक गो-पालन करनेवालेको गौका
-पोषण-सम्बन्धी कार्य स्वयं देखना चाहिए । नौकरोंके रहते
ी सब कार्योंको अपनी दृष्टिसे देखना आवश्यक है ।
रतके प्रधान प्रधान नगरोंमें कुछ-न-कुछ अच्छी नस्लकी गायें
बछड़े नित्य ही मारे जाते हैं । अब ऐसा समय आया है कि
विचारे गौओंके वध किये जानेकी प्रथाको रोकनेके लिये
न बनना चाहिए । जो लोग कसाईके हाथ अपनी गौएँ बेच
ते हैं उनमें सदुपदेश द्वारा कुछ धार्मिक प्रवृत्ति भी उत्पन्न करनी
ए । बंगालमें जिस प्रकार हबड़ेकी पशु-रक्षिणीशाला है उसी
रकी अनेक संस्थाएँ बननी चाहिए, जहाँ कि नाम मात्रका
ले कर गौओंकी रक्षा की जाय । ऐसा होने पर गो-पालन
वाले अधिक नफा उठानेके लिये अपनी गौओंको बधिकके
न बेचेंगे । प्यारे धार्मिक भारतीयो ! उठो इन कामको अपने
में लो और अब अधिक बेपरवाही इस विषयमें न दिखाओ ।
आजकलकी स्थितिको देख कर यही समुचित मालूम देता है
" डेरी " की प्रणाली पर गो-पालनका कार्य किया जाय और
धीरे डेरीका उद्देश और भी अधिक विस्तृत कर लिया जाय ।
उसमें कृषि-कार्य भी आरम कर दिया जाय, जिससे कि डेरी
के लिये स्थायी हो जाय ।

हिन्दू लोग गौको पवित्र एवं पूजनीय पशु मानते हैं। ए
"गौ माता" कहते हैं। पंचगव्यके (गोवर, गोमूत्र, गो
गोदधि और गोघृत) पान द्वारा हमारे शास्त्रकारोंने बड़े
पापोंकी भी शुद्धि कही है, जिसे समय समय पर हम लोग पान
अपनी आत्माको पवित्र करते हैं। किंतु खेद कि जिसे हम
कहते हैं उसका माताके जैसा सम्मान कभी स्वप्नमें भी नहीं
अपनी माताके दुःख निवारणार्थ कोई उपाय नहीं सोचते
उसे अपवित्र स्थानमें रखते हैं, अपवित्र भोजन देते हैं—
पानी पिलाते हैं—भरपेट आहार नहीं देते! ज्यों ही दूध
ठहरी अथवा दुबली, पतली या कमजोर हुई कि प्रसन्नतासे
हाथ अल्प मूल्य पर बेच डालते हैं।

बड़े शहरोंमें गौओंकी बड़ी ही दुर्गति है। हम कलकत्ते
गौओंका वर्णन पाठकोंके आगे रखते हैं। श्री० हासानन्दजी
२४-१२-१९१८ को एक लेख समाचार पत्रोंमें छपाय
लिखते हैं कि "कसाई लोग भी अपने घरकी दूधकी गौओंके
दूध पीते बछड़े-बछड़ीको जुदा करक नहीं मारते। कलकत्तेमें
हिन्दू ग्वाले, हिन्दुओंकी जमींदारीमें बस कर, हिन्दू ब्राह्मणों
बेच बच खिलाते हैं और छोटे छोटे दुधमुंहे बछड़े-बछड़ी
सामने एक, दो, तीन रुपये तक कसाइयोंको प्रति दिन बे
जिसकी संख्या कलकत्तेके एक म्युनिसीपालिटीके कसाई
प्रति वर्षकी रिपोर्टमें १०००० एवं ११००० छपती है।
अच्छी अच्छी गौ-जाति भी प्रायः कलकत्तेमें आआ कर नष्ट
अब बंगालमें ४-६ सेर दूधकी गौ खोजने पर भी कठिनता

दिनों कलकत्तेमें पंजाब, राजपूताना, युक्त प्रदेश और विहार
न्तोंसे अच्छी अच्छी गौएँ-भैंसें आआ कर नष्ट हो रही हैं।
त्तेके ग्वालोंके घरोंमें न तो कभी गौ-भैंस गाभिन होती हैं,
ब्याती ही हैं। वे थोड़े दिनकी ब्याई बाहरसे आई हुई
रीदते हैं और तत्काल उनके बछड़े-बछड़ी कसाईयोंको बेच,
स दिन-रात एक तंग स्थानमें—ऐसे तंग स्थानमें जहाँ बारी-
एक गाय बैठ कर रह सकती है और अन्य गौओंको
हना पड़ता है,—बाँध कर, फूँका दे दूध निकालते हैं।
ध कम होने पर, लाभ न होनेसे, दूध देते समय १२५)
१२००) तक खरीदी हुई गौ-भैंसें, ३१), ४१) या ५१)
क कसाईयोंको बेच डालते हैं। और दूसरी दूधकी गौ खरीद
पने दूधका कार-बार पूर्ववत् चलाते हैं। फिर उसकी भी
लिखे अनुसार दुर्गति करते हैं। जिस भाँति कलकत्तेमें दूधके
ारी गाय-भैंसोंके साथ उनके बच्चोंका भी नाश कर रहे हैं
प्रकार बम्बईमें भी दूधके पश्चात् यह उपयोगी पशु नाश हो
। भारतके अन्य नगरोंमें भी इसी प्रकार दूधके कारबारियों
गो-वंशका नाश हो रहा है। जो हो, अगर अपना और अपनी
न सन्तानोंके साथ साथ देशका भी मंगल चाहते हो तो पूर्व
नुसार, गोचर-भूमि छोड़नेके निमित्त भारत-सरकार, राजा
राजाओं और जमींदार-तालुकेदारोंसे प्रार्थना करो और जब
गोचर-भूमि छूटे लगातार इसकी चेष्टा करते रहो।"
...मीजीके उक्त कथनसे ऐसा कौन निर्दय होगा जिसके मनमें
...ार दयाका संचार न हो उठे। जो नगर-निवासी इस भाँति

दुखी गाय-भैंसोंका दूध पीते हैं वे उनका दूध नहीं व
पीते हैं, यह कह दें तो अनुचित न होगा।

गायका धर्मसे क्यों सम्बन्ध है? इस प्रश्नका यह उ
हमारे त्रिकालदर्शी महर्षि प्रत्येक उपकारी पदार्थका धर्मसे
सम्बन्ध जोड़ गये हैं कि अज्ञानी जन उनके गुणोंको न
कहीं उनके अपमान द्वारा संसारका अपकार न कर
कारण वे उपकारी गौ आदि चैतन्य पदार्थोंसे लेकर पीपल
आदि जड़ पदार्थों तकका धर्मसे सम्बन्ध जोड़ गये हैं कि
अज्ञानी जन धर्मके भयसे उपकारी पदार्थोंका अपमान या
कर सकें। यह कृत्य केवल हमारे ही महर्षियोंका नहीं है
हजरत मोहम्मद साहब खजूरके वृक्षकी कैसी बड़ाई क
मोहम्मद साहब फरमाते हैं--"बड़ाई करो अपने खजूरके
जो मिट्टी आदमकी बनावटसे बची थी, उससे खजूरका वृक्ष
बनाया।" इसी लिये मोहम्मद साहबने आज्ञा दी है कि
वृक्षको मान्य समझो।

अब यह प्रश्न होगा कि खजूरका वृक्ष इतना मान्य क्यों है?
यह है कि यदि खजूरके वृक्षको इतना आदर नहीं दिया जाता
मुसलमान लोग उस वृक्षको नष्ट कर डालते और उसके नष्ट हो
जीवन-निर्वाहके लिये उन्हें कठिनाई पड़ती। क्योंकि उस समय
सिवाय खजूर-वृक्षके और कोई पदार्थ मनुष्योंके जीवनका
नहीं था। इसी कारण उसका इतना मान करना लिखा गया है
बेरिया देशके रहनेवाले बकरीके चमड़ेको पूजते हैं, जब उनसे
पूजाका कारण पूछा जाता है तो वे उत्तर देते हैं कि यदि व

न हो तो हम इस शरद-देशमें मर जायँ, इसी कारण हम
ाते हैं। स्वीडन और फिनलैण्डके रहनेवाले भी जानवरोंको
हैं। मनुष्यका यह स्वभाव ही है कि जिससे उसको लाभ
है, उसकी वह इज्जत और बड़ाई करता है। फिर यह दूध,
था अन्न-वस्त्र-दाता, गाय और बैलका हमारे महर्षि धर्मसे
न्ध कर गये तो कुछ बुरा काम नहीं किया, बल्कि वे संसार
ा उपकार ही कर गये हैं।

ब हमें यह देखना है कि क्या दुर्भिक्षका कारण गो-वध है?
किल जो भारतके प्रत्येक प्रान्तमें घोर दुर्भिक्ष फैला हुआ है
के अनेक कारणोंमेंसे एक प्रधान कारण गो-वंशका नाश भी है।
कि भारतभूमिकी उपजाऊ शक्ति गो-वंशके साथ-ही-साथ विनष्ट
जाती है। कारण भारतके बैल, गौ तथा भैंस आदि पशु
मनुष्य जातिको ही घृत-दुग्धादिसे परिपालित नहीं करते,
उनके गोबरकी खादसे खेतोंकी उपजाऊ शक्ति बढ़ती है,
कि कण्डोंसे भोजन बनता है, जिससे वृक्ष काट कर जलानेकी
श्यकता कम रहती है। जिस देशमें वृक्ष अधिक और हरे-भरे
हैं वहाँ वर्षा बहुत होती है। भारतके बैल और भैंसें हल
ने, कोल्हू चलाने और गाड़ियोंके द्वारा व्यापार तथा मनुष्योंकी
में बड़े ही काम देते हैं। हाय आज उसी गो-वंशका तथा महिष-
का ऐसे अविचारसे नाश किया जा रहा है कि जिससे थोड़ेसे
गोंका पेट पालन होता है, पर समस्त भारतका नाश होता
रहा है।

क ओर प्रति दस वर्षमें भारतकी जन-संख्या बढ़ती है तो दूसरी

ओर पशुओंकी संख्या घटती है। दूसरे बैलों और भैंसोंको व... बनाके पशु-वंशका नाश किया जाता है। तीसरे महा ... ग्वाले जो दूध बेचनेका व्यापार करते हैं; पशुओंको इतनी ... खूराक देते हैं कि जिससे उनके पशु प्रायः बीमार होकर मर ... करते हैं।

हम देखते हैं कि आजकल भारतके सब नगरोंकी म्यूनिसि... लिटियाँ पशुओं पर टेक्स लगा कर प्रति वर्ष हजारों रुपये वसूल ... हैं, परन्तु पशुओंकी चिकित्साके वास्ते ऐसे डाक्टर नहीं रखे ... जो पशुओंकी देख-भाल किया करें। हमने देखा है कि सैकड़ों ... ग्वाले गौ और भैंसोंका फूँकेसे दूध निकालते हैं, जो महा घृ... रीति है, इससे पशु बहुत जल्दी मरते हैं।

हिन्दुओंमें गो-वंशको बढ़ानेवाली वृषोत्सर्ग (श्राद्धमें बैलको द... कर छोड़ने) की जो रीति है, उसकी ऐसी बुरी दशा है कि जिस... वर्णन नहीं हो सकता। आजकल इस भयंकर दरिद्रताके कारण ... वृषोत्सर्ग-श्राद्धको कोई करता ही नहीं और यदि करते हैं तो ... दागे हुए साँडोंको लावारिस समझ कर या तो म्यूनिसिपालियों... मैलागाड़ीमें जोत दिया जाता है या कोई मार डालता है।

इसके अतिरिक्त आजकल गोमांसका व्यापार इतना बढ़ गया ... कि जिसके कारण भारतमें पशुओंकी संख्या घटती ही जा रही है ... भारतवर्षमें रहनेवाले मांस-भक्षियोंके पेट-पालनार्थ जितने ... मारे जाते हैं, उनसे अधिक वर्मादेशके सूखे मांस-व्यापारके ... केवल संयुक्त प्रांतमें प्रति वर्ष १२४०५८ पशुओंका वध होता ... जिसका निम्न-लिखित ब्यौरेवार हिसाब सन् १९१९ में भारत...

ाणी-सभाके सभापति आनरवल सुखवीरसिंहजीने अपने
ख्यानमें प्रकाशित किया था।

न्होंने कहा था कि सन् १९१२ में उक्त व्यापारके वास्ते मौजा
पुर, तहसील अनूपशहर, जिला बुलन्दशहरमें २०००, अली-
में २९५१०. सिकन्दराराऊमें ७०८९. सादाबादमें १६८०, मधु-
१७५०, झुरुआनाला इतमादपुर (आगरा) में २६५४०, फीरो-
बादमें ६००, इतमादपुरमें १४०, खन्दौली तहसील इतमादपुरमें
, फटाघरती (आगरा) में ४०५५, शजवाळपुर (तहसील अली-
ढ) में ५००, बरेलीमें १३१७२, फरीदपुरमें ५००, ग्राम शहवाज
रमें ५८००, जहानगंज रसूलपुरमें २५००, सती चौरी (ग्राम) में
००, संभलमें ७५८, भोजपुर (ग्राम) में २०००, अमरोहामें
८०, फतहपुरमें ३००, कसबा कमालपुरमें २५०, जहानाबादमें
; ऐरानमें ५००, कौंचा भँवरमें १०१९२, ललितपुरमें ७६६३,
चमें ४२५३, पनवाड़ी (ग्राम) में ८००, राठमे ८९९, मौदहामें
२२, महोबामें ४०७७, हुसेनपुरमें ४९३ और आजमगढ़में ६०
ुओंका वध हुआ था।

यह हिसाब केवल उस मांस-व्यापारका है जो वर्माको भारत-
के एक प्रान्तसे भेजा जाता है। यदि सब प्रान्तोंका हिसाब
ड़ा जाय तो न मालूम कितना हो! अब यह भी विचारना
हिए कि इस पशु-संहारसे भारतको कितनी हानि पहुँच चुकी है!
ठकवर्ग! अकबरके समयका अन्नका भाव तो आप पीछे पढ़ ही
ये हैं, उसमें हमने दूधका भाव नहीं बतलाया है। अब हम अला-
दीन खिलजीके शासन-कालका, अर्थात् सन् १३०४ ई० में दूधका

भाव बतलाते हैं। उस समय "एक रुपयेका छः मन दूध मि
था।" आश्चर्य न कीजिए यह बिलकुल सत्य है।

जब सन् १८५७ ई० में ईस्टइण्डिया कम्पनीका शासन फैला
था, उस समय एक रुपयेके ३९ सेर गेहूँ, साढ़े ५१ सेर चने
सेर चावल, ४ मन दूध और ४ सेर घी बिकता था।

सन् १८९० अर्थात् आजसे ३० वर्ष पूर्व ही एक रुपयेके
सेर गेहूँ, २८ सेर चने, १२ सेर चावल, पैसे सेर दूध, रुपये
सेर घी और २३ सेर उड़द मिलते थे।

परन्तु सन् १९१८ में एकदम दुर्भिक्षका वज्र टूट पड़ा औ
रुपयेके ५ सेर गेहूँ, ६ सेर चने, ३ सेर चावल, ४ सेर दूध,
उड़द और नौ छटाँक घी विकने लगा और सन् १९२० में
भाव ५॥ छटाँक ही रह गया!

जिन दुधमुंहे बच्चोंको भारतमें जलकी भाँति घी औ
पीनेको मिला करता था वही अब घी और दूधकी महँगी
देशोंसे अधिक भारतमें मरते हैं। उक्त सभापति महोदयने ब
मृत्यु-संख्याका हिसाब इस प्रकारसे बतलाया था।

एक वर्षसे दो वर्षकी अवस्थावाले बच्चे इंग्लैण्डमें फी सैकड़ा
आस्ट्रेलियामें ७ और भारतमें फी सैकड़ा ४८ मरते हैं। २ से
तकके बालक इंग्लैण्डमें फी सैकड़ा ९, आस्ट्रेलियामें १२ और भ
११ मरते हैं। ३ से ४ वर्ष तकके इंग्लैण्डमें फी सैकड़ा ७, आस
यामें १२ और भारतमें ५ मरते हैं। ४ से ५ वर्ष तककी अवस्थ
इंग्लैण्डमें फी सैकड़ा ९, आस्ट्रेलियामें १३ और भारतमें ११ मर

इस हिसाबसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि एकसे दो वर्ष त

वाले बच्चे भारतमें सब देशोंसे अधिक मरते हैं। जिसका कारण यही है कि भारतकी संतानवती स्त्रियोंको वह खाद्य- कि जिनसे उनके स्तनोंमें नीरोग दूध बनता है, इतने कम हैं कि जिनके अभावसे उनके बच्चे जी ही नहीं सकते। तो हमारे पाठक समझ गये होंगे कि भारतके दुर्भिक्षका ही रन् सर्वनाशका प्रधान कारण गो-वंशका नाश है। अत एव प्रजा-रक्षक गवर्नमेण्टको चाहिए कि गो-वध निवारणके वास्ते ही कोई उचित आईन बनानेका प्रबन्ध करे।

एक प्रसिद्ध बात है कि मुगल-सम्राट् अकबरने नरहरि निम्न पद्य सुन कर गो-वध बिलकुल ही बन्द करा दिया था। हमारी ब्रिटिश गवर्नमेंट हमारी प्रार्थनाओं पर तनिक भी न देगी!

तृण जो दन्त तर धरहिं तिनहिं मारत न सबल कोइ,
न नित प्रति तृण चरहिं बेन उच्चरहिं दीन होइ।
न्दु हि मधुर न देहिं कटुक तुरकहिं न पियावहिं,
य विशुद्ध अतिस्रवहिं बच्छमहि थंभ न जावहिं।
तुन साह अकब्बर! अरज यह कहत गऊ जोरे करन,
सो कौन चूक मोहिं मारियत मुए चाम सेवहुँ चरन।"

र्तमान कालमें गो-वध एकदम बन्द हो जानेकी अत्यन्त आव- ता है। हिन्दू लोग पशुओंकी रक्षा करनेका पूर्ण प्रयत्न कर रहे उन्होंने बहुतेरे पिंजरापोल तथा गोशालाएँ खोल रखी हैं। लोगोंसे उनकी संख्या ६०० से कम न होगी, तथा उनका व्यय, वर्ष भरमें १,००,००,०००) रु० होता है। परंतु ये यथा नियम

प्रत्येक देशकी तुलना करते समय, उस देशकी जन-संख्या
भी ध्यान रखिए। भारतकी पशु-संख्या अधिक देख कर
उच्च न मान लीजिए; क्योंकि यहाँकी जन-संख्या ३१ $\frac{1}{2}$ करोड़
डेन्मार्कमें सन् १८८१ में ९ लाख गौएँ थीं, और सन् १९
में १३ हो गईं। उस समय वे ४५० गेलन दूध देती थीं; किंतु
५८५ गेलन दूध प्रति वर्ष प्रति गाय हो गया! अन्य देशोंमें
पशु और अंडजोंको वैज्ञानिक रीतिसे पालते हैं और मालामा
जाते हैं, पर भारतवासी अपनी मूर्खता और दरिद्रताके
पशु-संख्या कम करते जाते हैं। यहाँ उत्तम वैज्ञानिक पशुशा
कहीं नामोनिशान भी नहीं है।

प्रति वर्ष हमारे ना-समझ मुसलमान भाई ईदके दिन सहस्रों
वध कर डालते हैं—गऊ-वधके साथ ही दंगे हो जाते हैं,
अनेकों हिन्दू-मुसलमान काम आते हैं।

सन् १९१० ई० में भारतमें कुल अठहत्तर हजार, एक सौ
अँगरेज थे। इन सबका प्यारा भोजन बीफ (Beaf) अर्थात्
है। यदि प्रति जन एक पौण्ड भी मान लिया जा तो नित्य
मन या वर्षमें ३,४५,२९० मन गोमांस ये हजम कर जाते हैं
ध्यान दीजिए, इतने गोमांसके लिए कितनी गौओंका वध
है? यह हम लोगोंकी प्रार्थनाओंका फल है कि आस्ट्
जहाँसे गोमांस सुविधाके साथ आ सकता है—नहीं
जाता और हमारे भारतसे ही यह जबरदस्ती लिया ज
अन्य देश अपने उपयोगी पशु-धनको कभी नहीं देना
यह तो निर्बल भारतके सिर ही दंड है। एक कहावत

की जोरू सबकी औरत" सो दशा भारतवर्षकी है ।
की गौएँ निकम्मी होती हैं । उनसे अँगरेजोंकी अवश्यकता
सकती है, पर नहीं, इन्हें तो भारतकी गौओंका ही मांस
लगता है । इधर मुसलमान भाई भी जिनकी संख्या लगभग
ड़ है, प्रायः गोमांस खाते हैं, मानों गाय मुसलमानोंके
ोको दूध-घी देकर पुष्ट नहीं करती, केवल हिन्दुओंको ही
रती है, और इनके खेत तो तुर्किस्तान और अरबसे ऊँट
र जोत जाते हैं । भारतकृषि प्रधान देश है । यहाँकी भूमिको
कर अन्न उत्पन्न करनेकी शक्ति केवल बैलोंमें ही है—इन गौ-
में ही है । गो-वंशकी क्षीणतासे बैलोंका मिलना कठिन सा हो गया ।
े बैलोंका मूल्य १५०) या २००) रुपया तक हो गया । कहिए
रनके दीन कृषक कहाँसे इतने मूल्यवान बैल खरीदें और खेती
ें । यहाँके दुर्भिक्षका कारण एक नहीं किन्तु अनेक हैं । जिस-
र पर ध्यान दोगे वही दुर्भिक्षका कारण नहीं तो सहायक अवश्य
ध होगी ।

प्रत्येक देशकी तुलना करते समय, उ...
भी ध्यान रखिए । भारतकी पशु-संख्या अ...
उच्च न मान लीजिए; क्योंकि यहाँकी जन-सं...
डेन्मार्कमें सन् १८८१ में ९ लाख गौएँ ...
में १३ हो गईं। उस समय वे ४५० गेलन दूध
५८५ गेलन दूध प्रति वर्ष प्रति गाय हो गया
पशु और अंडजोंको वैज्ञानिक रीतिसे पालते है...
जाते हैं, पर भारतवासी अपनी मूर्खता और...
पशु-संख्या कम करते जाते हैं। यहाँ उत्तम वैज्ञा...
कहीं नामोनिशान भी नहीं है।

प्रति वर्ष हमारे ना-समझ मुसलमान भाई ईदके
वध कर डालते हैं—गऊ-वधके साथ ही दंगे हो
अनेकों हिन्दू-मुसलमान काम आते हैं।

सन् १९१० ई० में भारतमें कुल अठहत्तर हज...
अँगरेज थे। इन सबका प्यारा भोजन बीफ (Be...
है। यदि प्रति जन एक पौण्ड भी मान लिया ...
मन या वर्षमें ३,४५,२२० मन गोमांस ये हजम
ध्यान दीजिए, इतने गोमांसके लिए कितनी गौ...
हैं? यह हम लोगोंकी प्रार्थनाओंका फल है
जहाँसे गोमांस सुविधाके साथ आ सकता
जाता और हमारे भारतसे ही यह जबरदस्त...
अन्य देश अपने उपयोगी पशु-धनको कभी न...
यह तो निर्बल भारतके सिर ही दंड है। एक

र्दकी जोरू सबकी औरत" सो दशा भारतवर्षकी है ।
क्षाकी गौएँ निकम्मी होती हैं। उनसे अँगरेजोंकी अवश्यकता
ो सकती है, पर नहीं, इन्हें तो भारतकी गौओंका ही मांस
दु लगता है। इधर मुसलमान भाई भी जिनकी संख्या लगभग
रोड़ है, प्रायः गोमांस खाते हैं, मानों गाय मुसलमानोंके
ोंको दूध-घी देकर पुष्ट नहीं करती, केवल हिन्दुओंको ही
करती है; और इनके खेत तो तुर्किस्तान और अरबसे ऊँट
र जोत जाते हैं। भारतकृषि प्रधान देश है। यहाँकी भूमिको
 कर अन्न उत्पन्न करनेकी शक्ति केवल बैलोंमें ही है—इन गौ-
में ही है। गो-वंशकी क्षीणतासे बैलोंका मिलना कठिन सा हो गया।
छे बैलोंका मूल्य १५०) या २००) रुपया तक हो गया। कहिए
रतके दीन कृषक कहाँसे इतने मूल्यवान बैल खरीदें और खेती
। यहाँके दुर्भिक्षका कारण एक नहीं किन्तु अनेक है। जिस-
। पर ध्यान दोगे वही दुर्भिक्षका कारण नहीं तो सहायक अवश्य
द होगी।

अमेरिका आदि देशोंमें घोड़ों और यंत्रों द्वारा भूमि जोती जाती
। अन्न बोया जाता है, खेत सींचा जाता है, निंदाई होती है, काटा
ाता है, पूले बँधते हैं, अन्न निकाला जाता है इत्यादि; किन्तु भार-
की भूमि जोत डालना घोड़ोंकी शक्तिके बाहर है। यंत्र आदि खरीद
र काम चलाना भी निर्धन भारतकी शक्तिसे बाहर है। खैर, यदि
त्रोंसे भूमिको जोता और बोया भी जाय तो क्या दूध-घी भी
त्रोंमेंसे दुह लोगे ? ग्वालियर राज्यान्तर्गत पढार स्थानके निवासी
मि० गोरावालाने अमरीकाके अनुसार घोड़ों द्वारा कृषिकार्य आरंभ

किया था, किन्तु सफलता न हुई। इस देशके लिए तो केवल बैल ही कृषिकार्यमें उपयोगी जानवर हैं।

यहाँ पर कसाइयोंकी संख्या ३,४५, ९३३, है। अन्य दे॰ भी कसाई और मांस-भोजी हैं, पर हमारे देशके कसाइ॰ भाँति उत्तम और उपयोगी पशुओंका गला वे नहीं काटते। भी उपयोगी पशु काटना निषेध है, किंतु धन-लोलुप पशु॰ डॉक्टरको कुछ रुपये घूँस दिये कि वह अच्छे पशुको भी मा॰ आज्ञा दे देता है।

जिस भाँति अन्न विदेशोंको जाता है उसी प्रकार भारतके जा॰ पशु भी बाहर जाते हैं। सन् १९०९ तक दस वर्षोंमें ३२०८॰ जीवित पशु २०५०४७३०) रु० मूल्यके जल-मार्ग द्वारा बाहर गये और स्थल-मार्गसे तिब्बत आदि देशोंको १५७५९२७ ९,४५५५६५) रु० के बाहर भेजे गये। हमने तो ढोरोंसे इतन॰ रुपया पैदा किया और भारतीय पशु-संख्याकी कमी की! पर अ॰ काने सन् १८९९ में ४३ करोड़ रुपयोंके अण्डे और ४१ करो॰ अण्डज जीव बेचे। जापानमें सन् १९०४ में १६२५०००० मु॰ और ७५ करोड़ अण्डे हुए। इंग्लैण्डने एक वर्षमें १६ करोड़, ॰ नीने २ करोड़, फ्रांसने ८ करोड़ नार्वेने ३ करोड़, और कना॰ ८ करोड़ रुपयोंकी आमदनी मछलियाँ बेच कर की।

भारत दरिद्र है, भूखा है, परतंत्र है, दुर्भिक्ष पर दुर्भिक्ष देख॰ है, या यों कहिए कि इसमें सदैव ही दुर्भिक्ष नाचा करता है, अवस्थामें गाय-बैल रखनेका साहस कौन कर सकता है। चा॰ अकाल भी तो साथ ही भयंकर रूपसे पशु-जगत्का संहार कर

न्तमें भूखों मरते अपनी गौएँ अपने हाथों जान-बूझ कर कसा-
हाथ अल्प मूल्य पर देकर हम अपनी जठर-ज्वालाको शांत
हैं। क्या इस भाँति गुजर करना गोमांस भक्षणसे किसी प्रकार
है? परन्तु "बुभुक्षितः किं न करोति पापम्? मरता क्या न
। अन्तमें अपने हिंदुत्वको हमें जलाञ्जलि दे देनी पड़ती है।
क्षके कारण लोग भूखों मरते हैं, ईसाई हो जाते हैं और मांस-
योंकी—गोमांस-भोजियोंकी—संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती ही
ी है। यही कारण है कि "अहिंसा परमो धर्म्मः" की दुहाई
ाला भारत, बुद्ध जैसे अहिंसा धर्मके प्रचारकको उत्पन्न करने-
ा भारत अपने उदरमें २० करोड़ मांस-भोजी लिये बैठा है!
श्रीकृष्णचन्द्र, हे गोपाल, तुम कहाँ हो, आओ अपनी प्यारी
जाति तथा अपनी मातृभूमिकी शीघ्र रक्षा करो। यदुनाथ!
म्ब करोगे तो अच्छा न होगा।

हम दिल्लीसे प्रकाशित होनेवाले—"हिन्दी-समाचार" के ता० १६
ाई सन् १९१९ के अंकमें प्रकाशित एक लेखको यहाँ उद्धृत
, अब इस विषयमें अधिक कुछ न लिखेंगे। कारण ठीक यही
ा सारे भारतवर्षकी है।

"बच्चे, बूढ़ों तथा निरामिष भोजियोंका एक मात्र बलवर्द्धक
ार्थ दूध, घी है। दिल्लीमें बहुतसे नौ जवान ऐसे हैं, जिन्होंने
पने बाल्यकालमें रुपयेका सवा सेर घी तथा एक आने सेर शुद्ध
ी लिया है। परन्तु अब कई वर्षसे विशेषतः जबसे दिल्लीके
र पर राजधानीकी कलगी लगी है, दूध, घीकी महँगीने अमीर
ीब सबका नाकमें दम कर रक्खा है।

इस समय सरकारको शत्रुके पराजित करनेके लिये
पराक्रमी योद्धाओंकी परम आवश्यकता है। हिन्दू-जातिके
पराक्रमका एक मात्र आधार दूध-घी है। यदि ये दोनों पदार्थ
दुर्लभ हो गये, जैसा कि दिनों दिन होते जाते हैं, तो हिन्
तेजहीन, निर्बल, कायर हो जायगी और फिर स्वदेश और स
रक्षा किस प्रकार कर सकेगी? इस बात पर हमारे शा
ध्यान-पूर्वक विचार करना चाहिए। यदि बल-वर्द्धक प
न्हाससे हिन्दुस्थानी नामर्द हो जायँगे तो साम्राजका पता न
२७ जूनको New Zaeland के प्रधान मंत्री Mr. Hu
ने जो वक्तृता Lonodon Chambers of Comm
के सम्मुख दी है उसकी ओर हम भारतवर्षकी प्रजा तथा
दोनोंका ध्यान दिलाते है। वे कहते हैं:-Two things
necessary to enable us to bold obr own. fi
ability to defend ourselves against our en
and secondly. ability to proqace wealth

पूँजीके ऊभायक उपायोंकी वृद्धि करें। यदि कोई जाति इन
बातोंकी सहयोगिता पर ध्यान न देगी तो उसका नाश
नय है।

ारतवर्षमें धरतीका आधार गो-जाति है; और सुखी-सन्तुष्ट,
दुर प्रजा-जनोंका भी एक मात्र आधार दूध, घीकी उत्पादक
ाति ही है । गौकी रक्षाको हम धार्मिक दृष्टिसे नहीं देख रहे
र यह वास्तवमें भारतवर्षके जीवन-मरणका प्रश्न है।

सल मशहूर है कि " मरतेको मारे शाहमदार । " दिल्लीमें
दिनों दिन महँगा क्यों होता जाता है, जरा पाठक ध्यान दें।
३-४ वर्ष पहले प्रायः सब घोसी शहरके आसपास रहा
ो थे। उनके पशुओं पर साधारण ॥) सेमाही टैक्स था और
को हलवाईकी दूकान पर पहुँचानेकी मजदूरी नाम मात्रकी थी
कोई चुंगी शहरमें दूध लाने पर न ली जाती थी। अब कोई
१ वर्षसे कमेटीकी कृपासे फसीलके आसपास रहनेवाले घोसि-
ो शहरसे निकाल कर यमुना पार झीलकुरञ्जा नामक गाँवमें
ाया गया है। जो घोसी बाहर जानेमें असमर्थ थे उनके पशुओं
फी भैंस ५) मासिक टैक्स लगाया गया। यही नहीं जो दूध
गाँवसे तथा म्युनिसिपलकी सीमाके बाहरसे आवे उस पर दो
ने मनकी चुंगी लगाई गई, जो शायद संसारमें कहीं नहीं है।
भारी टैक्स, दूसरी चुंगी, तीसरे दूधको इतनी दूर बाहरसे
नेका किराया—इन सब बातोंने मिल कर दूधको इतना महँगा कर
ा है कि अमीर गरीब सबको उसके लिए तरसना पड़ता है।
कुरंजा नामक गाँवमें कोई ८० घोसी हैं, जिनके पास कोई

कि अपने स्वत्वोंकी रक्षाके लिये वे कटिबद्ध हो जावें। हमारी
तिक संस्थाओं—यथा इंडियन-एसोसिएशन, हिन्दू-एसोसिएशन,
कमिटी, मुस्लिम-लीग तथा होमरूल-लीगको मिल कर इसका
तिवाद करना चाहिए। कमेटीके मेम्बर साहबान भी इधर
दें और दूध तथा दुधारे पशुओंके टैक्सको दूर करावें। सारांश
कि—

दूध परसे ≈) मनकी लज्जा-जनक चुंगी उठा दी जाय।
—गौ पर टैक्स बिलकुल न लगाया जाय और जो ३) रु०
ा लगता है वह भी उठा दिया जावे।
—भैंसोंका टैक्स घटा कर वही ॥) सेमाही या हद १) सेमाही
या जावे।
—शहरके आसपास कोई मशीन मक्खन निकालनेकी न
े पावे।
—दूधकी शुद्धता पर ध्यान दिया जावे।
—घोसियोंको सब प्रकारकी सहायता देकर दूधको सस्ता
या जाय।"

"एक दुःखी प्रजा।"

स्वदेशी वस्तु तथा पहिनावा।

श्रीयुत मिस्टर विपिनचन्द्र पाल कहते हैं—

"The Swadeshi movement is ostensiv an in offensive movement. The law of land does not touch it. To obstain from forei goods is no crime. To organise measures social and religious ex-communication agai those who may, from powery or perversity tempted to violate this boy-cott is also ab lutely lawful. No one can be punished resiving to .eat with a man who uses forei goods, and by the inoffensive means a soc terroism may be established in the count which will cow down the most spirited opp ent of this movement + + + The Governme even in India cannot interfer with the matters concerning the personal freedom the people etc.

अर्थात्—स्वदेशी आन्दोलन बिलकुल हानिप्रद नहीं है। दे कानूनोंका उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। विदेशी मालका प्र न करना कोई अपराध नहीं है। और ऐसे मनुष्योंके विरुद्ध— निर्धनतासे अथवा मूर्खतासे उस . बायकाटके विरुद्ध हों,—होना

और जातिसे उसे अलग कर देना नियमके विरुद्ध नहीं है। सी ऐसे मनुष्यको—जो विदेशी माल-प्रयोग करनेवालोंके साथ पान न रखे कोई सजा नहीं दी जा सकती, और ऐसे लाभका-र्कोसे एक प्रकारका सामाजिक भय स्थापित किया जा है, जो इस आन्दोलनके बड़ेसे बड़े शत्रुको भी डरा सकता + + + भारतमें भी सरकार इन बातोंमें—जो व्यक्तिगत से सम्बन्ध रखती हैं—किसी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं कर।"

लोग विदेशी वस्तुओंके एक गहरे कुएँमें पड़े हैं, जिससे ना दुस्साध्य नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य है। या यों कहें कि हम वस्तुओंके दृढ़ भवनमें बन्द हैं। हमारे चारों ओर विदेशी भरी हैं। हाथमें विदेशी लेखनी है तो, उसकी निब भी विदेशी ाही भी विदेशी रंगकी है। रंग २–३ रुपये तोला तक है, पर हम उसीसे लिखते हैं। कागज, जिस पर हम लिखते हैं, है। दावात, जिसमें स्याही है, वह भी भारतमें नहीं बनी है। चाकू, आदि सभी वस्तुएँ हमारे सामने विदेशी हैं। उदाहर-एक लालटेन लीजिए—वह डीट्ज कम्पनी अमरीकाकी ई है। उसका काच (ग्लोब) अमरीकाका या जापानका समें तेल भी अमरीकाका भरा हुआ है, अधिक क्या कहें उसमें बत्ती भी अमेरिकाकी ही बनी हुई है। यदि तेल या लाल-मारे लिये एक दम न मिलें तो अमावस्याकी रात्रिको लज्जित ाला महा अंधकार भारतमें हो जाय। लालटेनोंका मूल्य हो गया। वर्षमें एक दो काचके ग्लोब भी फूट जाते हैं,

जो फिर जुड़ नहीं सकते। मिट्टीका तेल भी तिगुनी कीमत पा
इतना होने पर भी हमने विदेशी वस्तुओंको नहीं छोड़ा,
उनसे नित्य और अधिक प्रेम करते गये। मिट्टीक दीपकमें
तेल जलाना आज कलक फैशनके विरुद्ध है, पाप है।

मैं उदाहरण रूपमें एक वस्तुके विषयमें लिख चुका। अब
वस्तुके विषयमें लिखना व्यर्थ पृष्ठ रंगना है। आप अपने
पड़ी किसी वस्तुको देखेंगे तो, वह अवश्य विदेशी होगी।
स्त्रियोंका सौभाग्य चिन्ह चूड़ियाँ भी विदेशी, बिल्लौरी काच
वे लग भग २) रु० खर्च करने पर हाथकी शोभा बढ़ावेंगी
गृहकार्य करते समय जरा ही किसी वस्तुसे टकराईं कि
हुए। टूटनेके बाद वे जोड़ी नहीं जा सकतीं, सिवाय
अन्य किसी उपयोगमें नहीं आ सकतीं। अब जरा
लाखकी चूड़ियों पर दृष्टि डालनेकी कृपा कीजिए। उनका
या ।।=) होता है। टूट जाने पर वे फिर जोड़ी जा सकती
बिलकुल खराब हो जाने पर भी चूड़ी बनानेवाले खरीद ले
सारांश यह कि हम अपनी देशी वस्तुओंका अपमान अपनी
करते हैं और अपना द्रव्य अपने हाथों विदेशी व्यापारियोंके
भर रहे हैं। लिखते दुःख होता है कि ब्राह्मणोंका वह पवित्र
तक भी विदेशी सूतका बाजारोंमें मिलता है, कभी कभी तो
धागोंका बना जनेऊ भी बाजारोंमें बिकता देखा गया है।

हमारे भारतीय बन्धु कपड़े भी विदेशी ही पहिनते हैं, जिस
दरिद्र होता जा रहा है और विदेशी वस्त्र-विक्रेता अपना
रहे हैं। कम-टिकाऊ चटक मटकदार विदेशी वस्त्र हम अधि

ीदते हैं, किंतु महीनों चलनेवाला सस्ता उत्तम देशी कपड़ा
बदनको चुभता है । कितनी अचंभेकी बात है। सुकुमार-
द हो चुकी ! उन वीरोंकी संतान जो मनों वजनके कवच
स्तर शरीर पर धारण करते थे, आज अपने हितकारी मोटे
भी नहीं पहिन सकते । देशी धोतियाँ मोटी होती हैं, उन्हें पहि-
ारोंका काम है इत्यादि कहते हम कुछ भी विचार नहीं करते।
ारसे तो विदेशी पतली धोती—जिसमेंसे बदनके बाल तक
है, और एक-दो महीने चलती है—पहिनना बिल्कुल ही
ा काम है।

आप अपने प्रिय स्वदेशको दरिद्र नहीं देखना चाहते और पह-
ाति उसे सुखी किया चाहते हैं तो स्वदेशी वस्तुओंका व्यवहार
ही आरंभ कर दीजिए। स्वदेशी वस्तुओंका व्यवहार कोई अप-
ी है, इससे डरना भारी भूल है । वह कृतघ्न है जो अपने
बनी वस्तुओंका आदर न कर विलायती वस्तुओंको अपनाता
ै आवश्यकतानुसार देशकी बनी वस्तुएँ प्राप्त होना कठिन है
नी मिल सकें उतनी ही काममें लाकर अपने भारतीय व्यापारी
यापारकी एवं कला-कौशलकी उन्नति कीजिए । भारतीय
। आलस्यका समय नहीं है, भारतमें दुर्भिक्ष और दरिद्रता
ारी तांडव नृत्य कर रहे हैं। सावधान होकर अपने देशका
भार अपने हाथोंमें लीजिए। देखिए, मि० सर टामसमनरो
ंगरेज भारतीय मालकी कैसी प्रशंसा करते हैं:—

हिंदुस्थानी माल विलायती मालकी अपेक्षा कई गुना अच्छा
। एक हिन्दुस्थानी शालको हम सात वर्षसे काममें ला रहे

हैं, किन्तु इतनों दिनों तक काममे लाने पर भी उसमें कोई
परिवर्तन नहीं हुआ। सच बात तो यह है कि यूरोपिय
मुफ्तमें मिलने पर भी हम उसका व्यवहार करना नहीं चाहते

बहुतसे विदेशी बने हुए माल हमें निर्धन ही नहीं बनाते;
हमारे निर्धन अति पवित्र धर्मसे भी भ्रष्ट करते हैं। उदाहरणार्थ
साबुनोंको लीजिए—ऐसा कोई विदेशी साबुन नहीं जिसमें च
प्रयोग न किया जाता हो! क्या ऐसी अपवित्र वस्तु भी जा
कर काममें लाना ऋषि-संतानोंका कार्य है?

जितना विदेशी वस्तुका व्यवहार हमें दरिद्र बना रहा है,
ना ही विदेशी पहिनावा भी हमें निर्धन बना रहा है। हम नीचे
नकशा देते हैं जिससे आपको पता लगेगा कि विदेशी पहि
क्यों कर अहित कर है। प्राचीन समयमें एक आदमीको अपने
की रक्षा करनेके लिये कितने मूल्यके कपड़ोंकी आवश्यकता प
थी उसका वर्णन हम नीचे देते हैं:—

१ साफा या पगड़ी, मूल्य	१)	१ अच्छा दुपट्टा	॥
१ कुरता या मिरजई	।)	१ जूती जोड़ा	॥
१ धोतीजोड़ा	१॥)		
		कुल जोड़	४।

यह तो आजसे ४०।५० वर्ष पूर्वका खर्च है, किंतु वर्तमान
दुर्भिक्षके समय भी जब कि कपड़ा चौगुनी कीमत पर है, एक म
ष्यको हिन्दुस्थानी पहिनावेमें:—

१ साफा या पगड़ी	३)	१ अच्छा दुपट्टा	२)
२ कुरत या मिरजई	२)	१ जूता जोड़ा	२)
१ जोड़ा धोती	४॥)		
		कुल जोड़	१३॥)

ुल साढ़े तेरह रुपये खर्च होंगे, जिसमें एक वर्ष भर गुज़र हो ी है। किंतु स्मरण रहे, कपड़ा स्वदेशी, मोटा और मजबूत होना ए। बिलकुल साफ रहनेके लिये धोबी आदिकी धुलाई, नाईको बनवाई ३) रु० वार्षिक और समझ लीजिए। यदि एक दो कुरते के साफा और अधिक रखना हो तो ५) रु० और ऊपरके मिला दीजिए अर्थात् २२) रु० सालमें एक भला आदमी ा वर्ष भर अच्छी तरह वस्त्र पहिन सकता है। अब जरा आज- े फैशनकी लिस्टको भी पढ़ जाइए:—

फेल्ट टोपी अच्छी	४)	१२ डिब्बी टूथ पाउडर(वर्षभर३)	
शीशियाँ बालोंमें लगाने-		३ बनियान	३)
के तेलकी प्रति-मास एक-		४ कमीजे	८)
के हिसाबसे वर्षभर	१२)	१ सेट कमींजके बटन	।)
ऐनक (चश्मा)	८)	२ वेस्टकोट (वास्कट)	४)
बाल काढ़नेका कंघा	≲)	२ हाफकोट	१४)
टोपी साफ करनेका ब्रुश	।≈)	२ नेकटाई	१॥)
बढ़ी साबुन (वर्षभर)	२।)	१ बो	।″)
टूथ ब्रश	।)	१ क्लिप	।)
वाचकोप घड़ी	५)	१ शीशी बूट पालिश	॥≈)
घड़ीकी चेन	॥।)	१ ब्रुश बूट साफ करनेकी	।)
पतलून	४॥)	१ बूट पहिननेका आँकड़ा	≲)
गेलिस	१॥)	६ रूमाल	१॥)
परकी मोजा जोड़ी	२)	१ वाकिंग छड़ी	।≈)
जोड़ी मोजोंके बन्धन	।≈)	१ जोड़ा धोती भी चाहिए	
जोड़ी डासन्स कं०के बूट१५)		जो बढ़िया हो।	(८)

कुलयोग १०१।≈)

कुल मीजान १०१।≶) हुआ। अभी दो खर्च और बा
जिनके बिना फेशन किसी कामका ही नहीं। वह ॥) मासिक
और १२ आने मासिक धोबी; वर्ष भरके १५) रु० और
दीजिए। अर्थात् एक वर्ष तक हमें अँगरेजी फेशन बनाये रख
११६।≶) खर्च पड़ते हैं।

अब घरमें पतलून पहनके बैठना कठिन है, अतः कुरसी
मेजोंकी सृष्टि घरमें होने लगी। और भी कई फेशन-सम्बन्धी
हैं, जैसे चाय, उसके लिये रकाबी और प्याले, सिगरेट आ
इसका अनुमान आप ही लगा लीजिए कि कितना अपव्यय ह
होगा। यदि भारतीय पहिनावेमें २२) रु० खर्च होता है तो वि
शीमें उससे ५ गुणा अधिक होता ह, यह सब पैसा विदेश
चला जा रहा है। इसके अतिरिक्त कई महाशय ओवरकोट पहि
हैं। इन कोटोंकी बाँहों पर तथा पीछे कमर पर सामने दु
बटन व्यर्थ ही लगा दिये जाते हैं। कई लोग वेस्ट कोटोंके कार
पर तीन तीन बटन व्यर्थ ही लगवाते हैं। कपड़ोंकी सिलाईमें क
कभी कपड़ोंके मूल्यसे अधिक सिलाई देनी होती है। यदि ह
विचारें तो इससे हमें, हमारे कुटुम्बको, समाजको या हमारे देशक
कुछ भी लाभ नहीं, बल्कि भारी हानि हो रही है। यह फेशन भा
तको दरिद्र एवं दुर्भिक्षका क्रीड़ास्थल बना रहा है।

हम पीछे लिख आये हैं कि भारतवासी पूर्व कालमें इत
सभ्य और चतुर थे कि जिनकी समानतामें अभी तक
एक भी मनुष्य आगे नहीं आ सकता। यह भारतवासियोंक
मिथ्या प्रशंसा नही है, बल्कि विदेशी लोगोंने भी इस बातक

ार किया है—तो विचारनेका स्थल है कि क्या हमारे पूर्वजोंमें
। पहिनावेको सुधारनेकी अक्ल नहीं थी जो हम
त्य पहिनावेको अपना रहे हैं। किंतु नहीं उन्होंने देशके लिये
प्रकारका अच्छा ही पहिनावा निर्माण किया है। हमें यहाँ भार-
पहिनावेकी उपयोगिता और विदेशी पहिनावेकी निन्दा करना
ट नहीं है, अतः हम कुछ विशेष न लिख कर, अपने देशबन्धु-
भारतीय ढंगके वस्त्र पहिननेकी प्रार्थना करते हैं। भारतीय
ावा कदापि निकृष्ट नहीं होता; क्योंकि इस भारतके लिये
श देवता लोग भी तरसते थे—देखो विष्णुपुराणमें लिखा है कि
ता भी ऐसे गीत गाया करते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं जो कि
और अपवर्गके हेतु-रूप भारतवर्षमें जन्म लेते हैं, वे हमसे भी
हैं।"

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
र्गापवर्गस्य च हेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।"

दि यह भारत, जिसे पूर्व कालमें जंगली और असभ्य होने तथा
ऊ पोशाक पहिननेका दोष लगाते हैं, वास्तवमें आपके कहे
ार ही होता तो देवतागण यहाँके लिये इस भाँति "स्वर्गाप-
र्ग च हेतुभूते" आदि कह कर उसकी प्रशंसा नहीं करते।

'जैसा देश वैसा वेश"

"As the country so the dress"

थवा—

"Where we are in Rome,
we must do as Romans dc."

यह बात बिलकुल सत्य है। "हम किसी देशके अनुकरण द्वा
अपनी उन्नति नहीं कर सकते।" यह महाशय रवीन्द्रनाथ ठाकुर
वाक्य है। इस विषयमें हम उनके कुछ कथनको उद्धृत करना उचि
समझते हैं। कवि-सम्राट रवीन्द्र बाबू कहते हैं—" विदेशोंके स
सम्बन्ध होनेसे भारतवर्षकी यह प्राचीन निस्तब्धता हिल उठी
अर्थात् निस्तब्ध भारतवर्ष चंचल हो उठा है। मेरी समझमें इ
हमारा बल नहीं बढ़ता; उलटे हमारी शक्ति क्षीण होती जा रही

इससे दिन दिन हमारी निष्ठा, अर्थात् विश्वास विचलित हो
है, हमारे चरित्रका संगठन नहीं होता, वह टूटता बिखरता ज
है, हमारा चित्त चंचल और हमारी चेष्टाएँ व्यर्थ हो रही हैं। प
भारतवर्षकी कार्यप्रणाली अत्यन्त सहज-सरल, अत्यन्त श
तथापि अत्यंत दृढ़ थी। उसमें किसी प्रकारका आडम्बर या दि
वा न था। उसमें शक्तिका अनावश्यक अपव्यय नहीं होता
सती स्त्री अनायास ही पतिकी चिता पर चढ़ जाती थी और सेन
सिपाही चने चबा कर समय पर उत्साह-पूर्वक युद्धभूमिमें ज
और लड़ता था। उस समय आचारकी रक्षाके लिये सब प्रका
अड़चनें भोगना, समाजकी रक्षाके लिये भारीसे भारी यन्त्रणाएँ स
और धर्मकी रक्षाके लिये प्राण तक दे देना बहुत ही सहज
निस्तब्धता या एकाग्रताकी यह अद्भुत शक्ति, इस समय भी
तमें संचित है; स्वयं हम लोग ही उसको नहीं जानते। हम
गिने शिक्षा-चंचल नवयुवक इस समय भी दरिद्रताके क
बलको, मौनके स्थिर जोशको, निष्ठाकी कठोर शान्तिको और वै
अर्थात् अनासक्तिकी उदार गंभीरताको अपनी शौकीनी, अवि

चार और अन्य अनुकरणके द्वारा इस भारतवर्षसे दूर नहीं कर
हैं। इस मृत्युके भयसे रहित आत्मगत शक्तिने संयम, विश्वास
ध्यानके द्वारा भारतवर्षको उसके मुखकी कांतिमें सुकुमारता,
मज्जोंमें कठोरता, लोक-व्यवहारमें कोमलता और स्वधर्मकी
दृढ़ता दी है। इस शान्तिमयी विशाल शक्तिका अनुभव करना
—एकाग्रताकी आधार-भूत इस भारी कठिनताको जानना
। भारतके भीतर छिपी हुई वह स्थिर शक्ति ही अनेक शता-
ोंसे, अनेक दुर्गतियोंमें, हम लोगोंकी रक्षा करती आती है।
रखो समय पड़ने पर यह दीन हीन वेशवाली, आभूषण-हीन,
हीन, निष्ठा-पूर्ण शक्ति ही जाग कर सारे भारतवर्ष पर अपनी
प्रदायक मंगलमय बाँहकी छाँह करेगी। अँगरेजी कोट, अँग-
दूकानोंका सामान, अँगरेज मास्टरोंकी गिटपिट बोलीकी पूरी पूरी
, इन सबमेंसे कुछ भी उस समय नहीं रहेगा; किसी काम
आवेगा। आज हम जिसका इतना अनादर करते हैं कि
उठा कर भी नहीं देखते; जिसे इस समय हम जान नहीं
; अँगरेजी स्कूलोंके झरोखोंमेंसे जिसके सँवार-सिंगारसे
त झलक देख पड़ते ही हम त्योंरी बदल कर मुंह फेर लेते हैं,
सनातन महान् भारतवर्ष है। वह हमारे व्याख्यान-दाताओंके
ग्यतो ढंगके ताली पीटनेके ताल पर हर एक सभामें नाचता
फिरता, वह हमारे नदी तट पर कड़ी धूपसे भरे भारी सुनसान
ानमें केवल कोपीन पहिने कुशासन पर अकेला चुपचाप बैठा
वह प्रबल भयानक है, वह दारुण सहनशील है, वह उपवास-
धारण किये हुए है। उसके दुर्बल हड्डियोंके ढाँचेमें प्राचीन

तपोवनकी अमृत, अशोक, अभय होमकी अग्नि अब भी ज
है। यदि कभी आँधी आवेगी तो आजकलका यह बड़ा आ
डींग, तालियाँ पीटना और झूठी बातें बनाना—जो कि हमा
रचना है, जिसे हम भारत वर्षभरमें एक मात्र सत्य और
समझते हैं, किन्तु यथार्थमें जो मुंहजोर चञ्चल और उमड़े
सागरकी उगली हुई फेनकी राशि है—इधर उधर उड़ जा
दिखलाई भी न पड़ेगा। तब हम देखेंगे कि इसी अचल शक्ति
संन्यासी (भारतवर्ष) की तेजसे भरी आँखें उस दुर्दिनमें
रही हैं, इसकी भूरी जटाएँ उस आँधीमें फहरा रही हैं। जब आँ
हाहाकारमें अत्यंत शुद्ध उच्चारणवाली, अँगरेजी वक्तृताएँ सुना
पड़ेंगी, उस समय इस संन्यासीके वज्र-कठिन दाहिने हाथके लो
कड़ेके साथ बजते हुए चिमटेकी झंकार आँधीके शब्दके उ
सुनाई देगी। तब हम इस एकान्तवासी भारतवर्षको जानें
मानेंगे। तब जो निस्तब्ध है उसकी उपेक्षा न करेंगे; जो मौन
उस पर अविश्वास न करेंगे; जो विदेशकी बहुतसी विलास सा
ग्रीको तुच्छ समझ कर उसकी ओर नजर नहीं करता उसको दरि
समझ कर उसका अनादर नहीं करेंग। हम हाथ जोड़ कर उस
आगे बैठेंगे और चुपचाप उसके चरणोंकी रज सिर पर धारण क
स्थिर भावसे घर आकर विचार करेंगे।"

महर्षि रवीन्द्र बाबूके उक्त कथनसे हमें बहुत शिक्षा लेनी चाहि
और एकदम अपनी भारतीयताको और भारतको प्रेम-पूर्वक अपने
हृदयसे लगा अपनेको धन्य एवं कृतकृत्य कर लेना चाहिए। इस
भयंकर विदेशी तूफानके सपाटेमें आकर अपनी और अपने देशकी

ा न कीजिए। थोड़ी शक्तिकी आवश्यकता है, फिर यह
र तूफान आपको तनिक भी विचलित नहीं कर सकेगा।
त यह कि अनुकरणकी मात्रा कम करनेसे हमारा सुधार एकदम
ायगा। देशको धनी बननेमें कुछ भी देर न लगेगी, फिर
ा तो आपसे आप दबे पाँव भाग जावेगा।

ो औषधि मरु-वासियोंको लाभप्रद है, वही मालव-निवासि-
ा मृत्युका कारण हो सकती है। जो पहिनावा पंजाबियोंका
ह बंगाली पुरुषोंको नितान्त असुविधा-जनक होगा। तो
ड जैसे सुदूरवर्ती देशका—जो सात समुद्रोंके परले तट है—पहि-
ः भारत जैसे गर्म देशके लिये क्यों कर लाभदायक हो सकता
इंग्लैण्ड आदि देश शीत-प्रधान हैं। वहाँ शीत-जन्य जन्तुओं—
खटमल, पिस्सू आदिसे—और ठंडसे बचनेके लिये तंग और
ों पर कपड़े होते हैं, पर भारतवासी न जाने कैसे हैं जो बिना
ः विचारे अपनेको यूरोपियन पोशाकसे विभूषित कर बाजारमें
ड़ते हुए निकलते हैं। नेकटाईके—जो ईसाकी फाँसीका चिन्ह
ः)—रामकृष्णके उपासक गलेमें देखा देखी बाँधते हैं।
तक कि सिर पर, टोप भी अपनेको पश्चिमी सभ्यता एवं
ाकका गुलाम प्रकट करनेके लिये लगाते हैं। रंग भले ही बिल-
ः काला क्यों न हो, सूरतसे भले ही प्लेग क्यों न भड़कता हो,
क जिन्हें देख कर प्रेत या राक्षस भले ही कहते हों, पर वे तो
ने सिर पर 'हैट' (टोप) जरूर ही लगावेंगे। स्वर्गीय महात्मा
ालकृष्ण गोखले गौरवर्णके खूबसूरत व्यक्ति थे, किंतु उन्होंने एक
र भी विलायतमें अपने सिर पर अँगरेजी टोपी नहीं रखी, वे वहीं

तमाखू।

री सम्मतिमें वह मनुष्य जो तमाखूका सेवन करता है, कभी पति या पिता बननेके योग्य नहीं है। अपनी स्त्रीके सामने कार बेहया और निर्लज्ज होनेका उसको कुछ भी अधिकार है, और अपने बच्चोंको चिर रोगी, निर्बल-शरीर बनानेका से कोई अधिकार नहीं है।"

—डाक्टर आर० टी० ट्राल एम० डी०।

ठी और गुजरातीमें अनेक पुस्तकोंके लेखक, कई वैद्यक पत्रोंके सम्पादक और आयुर्वेद-विद्यापीठके संस्थापक स्वर्गीय द महामहोपाध्याय श्री० शंकरदाजी शास्त्री महोदयने अपनी मिषक्" नामक पुस्तकमें तमाखूके विषयमें बहुतसा लिखा है। ते हैं—"तमाखूकी टेवसे मनुष्यको बड़ी हानि होती है, परन्तु नमें नहीं आती। तमाखू खानेसे मुंहमें बदबू उत्पन्न हो जाती दाँतोंको हानि पहुँचती है। बलगम उत्पन्न होता है, आँखोंको होती है और पित्त भड़कता है। इसी प्रकार तमाखू पीनेसे कफ उत्पन्न होता है और कलेजा जल जाता है। तमाखू ला कहीं थूकेगा, इसका कोई नियम नहीं। इतना बुरा इसका होता है फिर भी तमाखूकी टेव दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है बुरी टेव जब लोग छोड़ देंगे तब ही देशका भला होगा।"

रीकाके एक बुड्ढेने जिसकी उम्र १३८ वर्षकी है, अपने होनेका एक कारण यह भी बताया था कि "मैंने आज तक न तो खाई और न पी।"

धूम्रपानरतं विप्रं दानं कुर्वाति यो नरः।
दातारो नरकं यांति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः॥

—पद्मपुराण।

तमालं भक्षितं येन स गच्छेन्नरकार्णवे।

विदेशी लोगोंने तथा आधुनिक वैद्य-डाक्टरोंने ही तमाखूको ठहराया है, यह बात नहीं है। हमारे पुराण आदि भी साफ इ करते हैं। ऊपरके श्लोकोंमें तमाखू पीनेवाले ब्राह्मणको दान दे लेको नरक और ब्राह्मणको मृत्यु-बाद ग्राम-शूकर कहा है— खानेवालेको भी नरकका दुःख लिखा है।

"गोलोके गरुडो गोभिर्युद्धं चैव चकार सः।
गरुडस्य च तुण्डेन पुच्छकर्णस्तदापतन्।
रुधिरोपि पपातोर्व्यां त्रीणि वस्तूनि चाभवन्।
कर्णेभ्यश्च तमालश्च, पुच्छाद्गोभी बभूव च।
रुधिरान्मेहदी जाता मोक्षार्थी दूरतस्त्यजेत्।"

—एकादशी महात्म्य।

अर्थात्—एक बार गोलोकमें गरुड़ और गायोंमें युद्ध ठन गया। गरुड़की चोंचोंके प्रहारसे गायोंके कान और पूँछें गिर गईं जिनसे तीन वस्तुएँ उत्पन्न हुईं। कानसे तमाखू, पूँछसे गोभी और खूनसे मेहँदी, अत एव मोक्षके इच्छुकोंको इससे दूर ही रहना चाहिए।

यहाँ उक्त श्लोकोंको उद्धृत कर हमें न तो तमाखूकी ही निंदा करना है और न उसके सेवकोंको ही कुछ कहना है। हमें यहाँ यह दिखलाना है कि देशकी भयंकर दरिद्रता और प्रचण्ड दुर्भिक्षका कारण भारतवासियोंका तमाखूका सेवन भी है। देशका बहुतसा

नर्थकारी व्यसनमें बरबाद हो रहा है। प्रति शत बड़ी
६ या ७ मनुष्य ऐसे मिलेंगे जो तमाखूका व्यवहार नहीं
की कोई सूँघता है, कोई खाता है और कोई पीता है।
करोड़ भारतवासियोंमेंसे २½ करोड़ ऐसे मनुष्य मान
में जो तमाखूका सेवन नहीं करते तो २९ करोड़
खाने, पीने और सूँघनेवाले लोग बच रहते हैं।
का तमाखूका खर्च कमसे कम एक पैसा रोज मान लिया
एक मासमें १४५००००००) रु० और १७४००००००)
वर्ष भारतका तमाखू-खर्च है।

रमें आजकल प्रति वर्ष चालीस लाख मनुष्य केवल क्षयरोगसे
कवलित होते हैं। केवल बम्बई प्रान्तके ही विषयमें
वहाँ हर साल साठ हजार मनुष्य मरते हैं। बुद्धिमानोंकी
है कि जैसे जैसे तमाखूका सेवन दिन दिन बढ़ता जाता
वैसे तपेदिकसे मरनेवालोंकी संख्या वृद्धि पा रही है। डाक्टर
स साहबका कथन है कि "तमाखू सेवन करनेवालोंको
रोग हो जाय और उनका रुधिर सूख जाय तो कोई आश्चर्य
। इसका कारण यह है कि तमाखूमें अजीर्ण होता है जिसका
म यह होता है कि रक्त सूख जाता है, और शरीर काँटा सा
ता है। रुधिर ही जीवनका कारण है। इसके कम होनेसे
ला हो कर क्षय हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या?"

ख्यात डाक्टर और बहुतसी पुस्तकोंके लेखक, श्रीमान् आर०
ट्रेड साहब एम० डी० कहते हैं कि—"शराबसे भी अधिक
निक और नवयुवकोंमें अधिक प्रचलित एक भयानक और बुरी

आदत तमाखू-सेवनकी है। यदि हम इस आदतकी गन्दगी
असभ्यताको भुला नहीं देते तो अपने देशके नवयुवकोंके शरी
जड़से सत्यानाश करके शारीरिक बलको नष्ट कर उसका
नाश करते हैं। जिस वस्तुका ऐसा भयानक परिणाम है
प्रचार दिनों दिन बढ़ता जाता है।"

डाक्टर वुडबर्ड साहबका कथन है कि—"तमाखूसे
स्वरभंग, जीर्णज्वर, छाती और सिरमें दर्द, कम्पवात, शिरो
अजीर्ण, नाड़ीव्रण, उन्माद आदि कई रोग हो जाते हैं।"
ब्राऊन साहबका कहना है कि—"तमाखू खाने-पीने या
निम्न रोगोंके होनेका भय है। मन्ददृष्टि, शिरःशूल, मूर्च्छा,
निर्बलता, गला पड़ना, कम्पवायु, भूतोन्माद तथा ऐसे ही अ
प्रकारके रोग। कभी दिलका उदास होना और कभी कभी
भी तमाखूसे हो जाता है, यह कई डाक्टरोंका मत है।"

जो देश इसकी भयंकर हानिको समझते हैं
दुर्व्यसनके दूर करनेकी सतत चेष्टा करते रहते हैं। अ
तमाखूकी विरोधक अनेक सोसाइटियाँ हैं। उनका काम
तमाखू सेवनको घटाना है। वे अच्छी प्रकार सफलता पा
न्यूयार्ककी तमाखू-विरोधक सभाकी ओरसे नीचे लिखे अमु
प्रकाशित किये गये हैं—"जिन थैलियोंमें थूँक वनता है
खाने या पीनेसे वे थैलियाँ सूख जाती हैं, और इस कारणसे
सेवनके वाद अन्य किसी मादक द्रव्यके पान करनेकी इच्छा हो
डाक्टर अलसनका कथन है कि तमाखू "मुहँमें थूँक आ
करती है, और जव वह थूँक निकाल दिया जाता है त

लगती है और तब प्यासको शांत करनेके लिये किसी नशे-
उसी व्यवहारमें लानेकी इच्छा होती है।" वे युवक जो नशीली
का प्रचार रोकते हैं या जो टैम्प्रैन्सका काम करते हैं, कहते
तमाखू न पीनेवालोंकी अपेक्षा पीनेवाले अधिक बार अपनी
को तोड़ते हैं। डाक्टर वुडवर्ड कहते हैं कि तमाखू पीने या
लोंको पानी अथवा इस भाँतिकी दूसरी वस्तु पीनेसे तृप्ति
ती। डाक्टर कार्ण एम० डी० साहबका कथन है कि तमाखूके
राबका ऐसा सम्बन्ध है जैसा कि दिनके साथ रातका है।

र लिखी बातोंसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि तमाखू भारतवर्षकी
का भी एक कारण है, क्योंकि यही भाँग, गाँजा, चण्डू, चरस,
न, मदिरा आदि मादक द्रव्योंका प्रचारक है। मादक द्रव्योंसे
कितना अनिष्ट होता है, इसका विज्ञ पाठक स्वयं अनुमान
। इन नशोंसे भारत दिन दिन दरिद्र होता जा रहा है। नशेखोर
नें कमी कर देते हैं, पर नशेमें नहीं करते। नशेबाजी ही भारतवा-
ो चोर, व्यभिचारी, जुआरी, अनाचारी कर रही है। अधिकांश
भारतीय ही नशेबाज देखे गये हैं। उनकेपास खानेको नहीं है,
ा वे अवश्य करते हैं। कभी कभी अपनी आदतको, अपनी
दो पूर्ण करनेके लिये उन्हें चोरी तक करनी पड़ती है। भला ऐसा
ो नशा अधिक करता हो, किस भाँति अपनी उन्नति कर सकता
शेके कारण भारत निर्बल हो गया, निर्धन हो गया, बुद्धिहीन
या और आज मूखों मर रहा है! देशका अगणित द्रव्य भारत-
योंकी नशेखोरीमें नष्ट हो रहा है। भारत-गवर्नमेण्टने यदि इसे
का प्रयत्न किया है तो वह केवल यही कि उस पर टैक्स बढ़ा

दिया। परंतु यह मादक पदार्थोंको भारतसे दूर करनेका
नहीं है, बल्कि निर्धन भारतके पैसेको इस बहानेसे छी
अपने कोषको भरना है। यदि गवर्नमेण्ट चाहे तो एक
भारतको इस सर्व-नाशकारी नशेके चंगुलसे छुड़ा सकती है।
बढ़ानेसे भारतीय नशेसे कदापि विमुख नहीं हो सकते;
नशेकी लत एक ऐसी बुरी लत है जो नशेका मूल्य अधिक
नहीं छूट सकती! भारतको इंग्लैण्डका अनुकरण करना
कि युद्ध-समयमें मदिराके अहितकर एवं हानिप्रद सिद्ध हो
एक दम उसका परित्याग कर दिया गया—यहाँ तक कि राजमह
मदिरा जैसे आसुरी पदार्थका प्रवेश तक निषेध कर दिया
उधर यह हालत है, तो इधर भारत जैसे धार्मिक देशमें दिनों
नशा तरक्की कर रहा है!

जिन देशोंमें लड़कियाँ अपने इच्छानुसार पति पसन्द कर
वहाँ उन्हें विख्यात डाक्टर कार्विन एम० डी० निम्न लि
उपदेश देते हैं—“रोगके साथ विशेष सम्बन्ध रखनेवाली
जिन्हें रोगका कारण कहा जाय ऐसी बहुतसी आदतें हानिक
होती हैं, जैसे कि तमाखू और शराबकी टेव। मेरी भोलीभाली
उन युवा पुरुषोंसे जो इन दो वस्तुओंका व्यवहार करते हैं,
दूर रहनेका मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ। जो मनुष्य तमाखू
करता होगा, वह बहुत ही बदहोश प्रतीत होगा। तमाखूके
हाँ शराबकी कुटेवका ऐसा गहरा सम्बन्ध है जैसा कि दि
रात्रिके साथ। सुस्ती, रोगोंका होना, सदा बुरा हाल रहना,
एकाएक मृत्युका होना, जिगर और फेफड़ोंकी बीमारीका

तमाखू और शराब पीनेवालोंके साथ छायाकी तरह लगे
। सैकड़ों वर्षोंके साहित्यके अनुभवके आधार पर उपर्युक्त
गई गई हैं । और बहिनो ! तमाखू और शराब पीनेवाले
से अलग रहो और यह निश्चय कर लो कि हम तमाखू और
वंचित रहनेवाले पुरुषसे ही विवाह करेंगी; और यदि ऐसा
सके " तो सारी आयु अविवाहिता रह कर जीवनके
रहो । "

टर आर० टी० ट्राल० एम० डी० कहते हैं कि, " तमाखू
जो खुशी प्रतीत होती है, वह अन्तमें जीवनको मिट्टीमें
वाली होती है । "

खू एक प्रकारका विष है, यह हम ऊपर बता चुके हैं । यह
व शरीरमें प्रवेश करता है, तब इसको पसीनेके द्वारा बाहर
नेके लिये दिल और इसी प्रकार दूसरी इन्द्रियाँ प्रयत्न करती
से लोग इसकेसे " खुसी आई " कहते हैं । इस प्रकार
अधिक तमाखू सेवनसे इन्द्रियाँ थक कर अन्तको रोगी
ती हैं । तमाखूके सेवनसे तमाखू पीनेवालोंको जो खुशी
ती है, उससे भ्रममें नहीं पड़ना चाहिए । शेक्सपियर,
और न्यूटन जैसे पण्डित लोगोंने अनन्त कष्ट उठा कर पुस्तकें
हैं । इनमें जो विद्या भर दी है, वह कोई तमाखू पीनेकी ही
नहीं लिखी गई है ।

स्त भी तमाखूका घोर विरोध करता है । ईसाई धर्ममें तमा-
सेवन धर्म नहीं है । आठवें पोप आवर्न और नवें पोप
तमाखूके विरुद्ध कठिन नियम बनाये हैं । इसी प्रकार

स्तान और बलिस्तान तथा बर्लिनमें भी तमाखूका सेवन एक ब
पाप है।

पारसी भाई अग्निकी पूजा करते हैं और इनके धर्ममें तम
पीना सौगन्धकी तरह एक धार्मिक बात है। हमारे आर्यशास्
तो इसको महानिंद्य और अस्पृश्य वस्तु बताई है। सिक्खोंके द
गुरु गुरु गोविन्दसिंहजीने भी अपने शिष्योंको तमाखूके
करनेकी आज्ञा दी थी, जिसके कारण पंजाबी सिक्ख अभी
तमाखूको स्पर्श करना महापाप समझते हैं।

वर्तमानमें तमाखूके कई रूप और कई नाम हैं। जैसे—सिग
सिगार, चुरुट, वीड़ी आदि। आजकल सिगरेट पीना फै
शामिल है, इसको विना पिये पश्चिमी ढंगका सारा पहनावा धूल
जिस भाँति विदेशी पोशाकोंके साथ सामने मस्तक पर बाल
कर माँग-पट्टी निकालना फैशन पर मुलम्मा करना है, उसी
फैशनका दूसरा मुलम्मा सिगरेट पीना भी है। इसके साथ ही
विदेशी दियासलाईकी भी भारतमें खूब खपत होती है। आज
किसी महाशयके आने पर उसके स्वागत-रूपमें सबसे प्रथ
डिब्बियाँ रख दी जाती हैं, एक तो सिगरेटकी और दूसरी
सलाईकी।

भारतवर्ष गर्म देश है। इसके लिये दरिद्रताका कारण तो
ही, किंतु साथ ही गर्म वस्तु होनेके कारण भारतीयोंको अ
और क्षीणवीर्य बनानेमें भी यह एक प्रबल शत्रुके समान है।
अवस्थामें कामोत्तेजन द्वारा निर्बलता उत्पन्न करनेमें, वीर्यको
करने एवं पतला करनेमें यह एक ही रामबाण वस्तु है। प्रत्येक

प्रायः प्रमेह, स्वप्न-दोष आदि भयंकर नाशकारी रोगोंके मुखमें
लेवाली यही एक मात्र वस्तु तमाखू है। इसके ही कारण भार-
असंख्य धन दवाई, औषधियोंमें जाता है।

किसी तमाखू-सेवन करनेवालेसे इसके गुण पूछ देखिए, यदि वह
का है तो निःसन्देह इसे अत्यन्त हानिप्रद दुर्व्यसन ठहरा-
। अँगरेजोंकी देखादेखी इसे काममें लाना भूल है—क्योंकि वे
देशके वासी हैं, अतः उन्हें यह लाभदायक है; किंतु भारत-
बिना सोचे समझे इसका प्रयोग कर क्यों भारतको निर्बल
निर्धन कर रहे हैं, इसका कोई कारण ही समझमें नहीं आता।
भयंकर हानि सह कर भी इसका सेवन करते हैं, आश्चर्य है!

भारतमें प्रतिवर्ष ५६००००० मन तमाखू पैदा होती है। अमे-
के बाद तमाखूकी पैदावारमें दूसरा नम्बर भारतवर्षका ही है।
रिकामें १३५००००० मन तमाखू पैदा होती है। किंतु भारतकी
वह सारी तमाखू अमेरिका ही नहीं फूँक देता है, बल्कि बहु-
भाग अन्य देशोंकी आवश्यकता पूर्तिके काम आता है। यदि
रिका दूसरे देशोंकी आवश्यकता पूर्ण करता है तो भारत दूसरे
से खरीद कर अपनी आवश्यकता पूरी करता है। अब जरा
ही विचार देखिए कि भारतका कितना पैसा व्यर्थ तमाखू
नाश हो रहा है। इन्हीं कारणोंसे दरिद्रता और दुर्भिक्षने हमारा
करना प्रारंभ कर दिया है।

एक दो महा अनर्थकारी मादक वस्तुएँ और भी
कहवा, चाय। हमारे भारतमें

मान्य पुरुषोंसे छुप कर सेवन करते हैं। परन्तु चाय आदि भी मादक पदार्थ हैं, किन्तु उनका उपयोग खुल्लम-खुल्ला पिता, पुत्र दूसरेके आगे आनन्द-पूर्वक करते हैं; बल्कि कहीं कहीं तो यदि किसी कारणसे चाय न पीता हो तो पिताजी उस पर नाराज हो उसे जबरन् पिला ही देते हैं! कैसे दुःखकी बात है कि लोग इ हानि पर जरा भी ध्यान नहीं देते। लोगोंको चाहिए कि ज तीर्थयात्रादिको जाते हैं तो गंगा आदि पवित्र तीर्थों पर फल, बै कद्दू आदि शाक-भाजी छोड़ कर अपनी धर्म-शूरताका परिच दे कर ऐसे दुष्ट व्यसनों—शराब, भाँग, गाँजा, चंडू, चरस, अफ मदक, सुलफा, पोस्त, तमाखू, चाय, कहवा आदि वस्तु न ग्रहण करने—की शपथ खाया करें; जिससे देशका निजका कल्याण हो; और भारत सुखी एवं धनधान्यसे पूर्ण हमारे ब्राह्मणों, पंडों, पुजारियोंको भी चाहिए कि वे ऐसे व्यसनोंसे ही लोगोंको मुक्त करनेकी चेष्टा करें। यदि वे ऐसा करने तो कोई बड़ी बात नहीं कि शीघ्र ही देशसे मादक द्रव्योंका व मंह हो जाय, किंतु पहले स्वयं छोड़ दें तब न!

विदेशी शक्कर।

ारे भोजनकी एक मुख्य वस्तु घृतकी भाँति शक्कर भी है।
कबरके समयमें गन्नेकी पवित्र और शुद्ध शक्कर १।=) मनके
ते बाजारोंमें मिला करती थी, वही आज ३०) रु० मनके
से अलभ्य सी हो गई है। आजसे दस वर्ष पूर्व ही यहाँ एक
की चार सेर शक्कर बखूबी मिलती थी। देखते देखते धीरे धीरे
ास टापूसे एक नवीन प्रकारकी शक्करने भारतमें प्रवेश किया।
में इस शक्करके कारण भारतमें एक बड़ी खलबली मची,
ने इसे अपवित्र और अस्पृश्य कह कर इसका खूब ही अपमान
ा। द्विज लोग इसका सेवन तो दूर रहा छूना भी महापाप समझते
लोगोंमें उन दिनों इस शक्करके विषयमें कई हास्यजनक किम्ब-
याँ फैल गई थीं—कोई कहता था कि इसमें हड्डीका बारीक
भारतीयोंको धर्मच्युत करनेके लिये मिश्रित करके भेजा जाता
ई कहते थे कि इसमें गौ और शूकरकी हड्डियाँ डाल कर
और मुसलमानोंको बेदीन करनेका प्रयत्न किया गया है।
ु ये सब बातें एकदम निरी झूठी और लोगोंमें भ्रम पैदा करने-
थीं।

तनी बातें बनाई जाती थीं, किंतु फिर भी लोगोंने इससे बच-
 बिलकुल प्रयत्न न किया। धीरे धीरे सबने इसको अपने उदरमें
देना आरंभ कर दिया। और देव-मंदिरोंमें, देवताओंके भोगमें
धर्मकार्योंमें भी इसने स्थान पा लिया। यद्यपि यह बात सर्ववैद्

अमान्य है कि इसमें हड्डियाँ पीस कर मिलाई जाती हैं तथापि यह भी एकदम नहीं कह सकते कि इस शक्करके बनानेमें प्रयोग ही नहीं की जाती । हमने सुना है कि हड्डीके कोयलों द शक्करका रस शुद्ध किया जाता है, और यह बात मानी भी सकती है । हमने इस विषयमें एकाध जगह किसी पुस्तकमें पढ़ा है, जिसे यहाँ हम लिखते हैं ।

" Cylinders of wrought or cast Iron va ing in diameter from 5 to 10 feet, and in hig from 10 to 50 having a perforated false bott a couple of inches above the true one are fil with granulated animal charcoal.

One ton of charcoal is some times used purify two tons of sugar, and in at least (refinery, when inferior sugar is operated two tons of charcoal serve for on ton of sug

In most provincial refineries about one of charcoal is used to one of sugar etc.

(See Dictionary of arts, manufactures a mines 6th Edition by Doctor Vre London 1 Page 829.)

अर्थात्—एक टन हड्डीका कोयला दो टन शक्करकी सफा लग जाता है । और अच्छी शक्कर बनानेमें तो २ टन कोयला मन शक्करके लिये लग जाता है, अधिकांश शक्कर साफ कर कारखाने जो कि प्रांतिक होते हैं, उनमें एक टन कोयला एक शक्करकी सफाईमें लग जाता है । —डाक्टर व्रे लन्द

उक्त डाक्टर साहब और भी लिखते हैं कि:—

"Sugar thus cleansed is well prepared for e next refining process, which consist in putg it into a large square copper cistern along th some lime water (a little bullocks blood) d from 5 to 20 per cent of bone black.

Other refiners use both the blood and ing with advantage.

("Dictionary of art" Manufactures and nes, 3rd edition by Doctor Vre London 1886, ge 1205 etc.)

अर्थात्—शक्करकी दूसरी सफाई इस प्रकार की जाती है कि यह चौकोर तांबेकी टङ्कीमें, कुछ चूनेके पानीमें (जिसमें थोड़ा सा खून भी होता है) ५ से २० प्रति शत हड्डीका कोयला कर शुद्ध की जाती है। और हड्डीके कोयले और खूनका भी के प्रयोग किया जाता है।"

इङ्गलैंडके डाक्टर हसल अपनी पुस्तक Food and its ulterations के पृष्ठ २० और २१ में लिखते हैं—

"Blood is a fluid compounded of febrine bumen, and a variety of salts and effete subances, its use therefore in the manufacture of up sugar, is not merely disgusting, but is lculated to prove injurious to the health. e sugar refiner will tell us that the wholethe blood employed is removed by the pro-

cess of filteration adopted. This is not the case, however, as may in general be readily proved by dissolving a few knobs of lump sugar a large wine-glass of warm water and subjecting the sediment-which usually falls in to the bottom, to microscopic examination and chemical analysis; the first shows that th sedimentary matter consists of angular floccul taking the form of the interstices of th crystals; and the second, that is composed coagulated albumen.

The only considerable advantage deriv from the use of blood, is its cheapness; when not merely cleanliness but health concerned, the question of economy ought to be entertained for one moment.

We have now adduced incontestable evid of the impure condition of the majorit Brown sugar, as imported into this cou and particularly as vended to the public, t impurities prevail to such an extent, and a such a nature-consisting of live animal, or acari, sporules of fungus, starch, grit, fibre, grape-sugar etc:-that we feel comp however reluctantly, to come to the concl that the Brown sugar of commerce in gene in a state wholly unfit for human consum

One portion of our advice to the public must therefore be, not to purchase the inferior brown sugar of the shop. (See pages 17, 31 Food and aduleration" by Doctor Hassal London 1855).

अर्थात्-खूने एक प्रकारके जमनेवाले रस और सफेदी तथा कई प्रकारके नमक एवं खराब वस्तुओंसे बनता है, अतः शक्कर बनानेमें इसका प्रयोग केवल घृणित ही नहीं, बल्कि स्वास्थ्यके लिये भी हानिकर है। शक्करके शुद्ध करनेवाले शायद यह कहें कि सारा खून छान कर अलग कर दिया जाता है। किंतु वास्तवमें ऐसा नहीं है। यह इस प्रकार सिद्ध हो सकता है कि एक बड़े गिलासमें गर्म पानी भर कर उसमें कुछ दानेदार शक्कर डाल दीजिए। फिर गल जाने पर गिलासकी पेंदीमें जो मैल जम जाता है उसे खुर्दबीन द्वारा देखा जाय और डाक्टरी तरीकेसे उसका विश्लेषण किया जाय तो पहली चीज तो नुकीले रेशेसे नजर आवेंगे, दूसरे खूनकी जमी हुई सफेदी दिखाई पड़ेगी। खूनका प्रयोग करनेका कारण है तो केवल यह कि सस्ता है; लेकिन जब कि न केवल सस्ते और सफाई बल्कि स्वास्थ्यका प्रश्न भी साथ ही है तो किफायतका खयाल एक क्षण भी न रखना चाहिए। हम इसके लिये अकाट्य प्रमाण दे चुके कि विदेशी खाँड जो यहाँ आती है और खास कर वह जो सर्व-साधारणमें बेची जाती है, अत्यंत ही अपवित्र होती है। यह अपवित्रता यहाँ तक है कि पशु, भूसी, कूकर-मुत्ते, माड, ताड, चुकन्दर आदिसे बनती है। विदेशी शक्कर मनुष्यके खानेके अयोग्य है। लोगोंकी सम्मति है कि वे घटिया शक्कर कदापि न सेवन करें।"

अखबार सिविल एण्ड मिलीटरी-गजट लुधियानाके ३०

जून् १९०२ ई० के अंकमें लिखा है—

“विलायती खाण्ड या चुकन्दरी खाँड—जिसने हिन्दुस्तान
वाले मेशकरको—गारत किया है जो देखनेमें सुफेद और
आरज़ाँ है, मगर बकौल मि० फिनले निहायत खतरनाक च
सब जानते हैं कि यह हड्डियोंसे साफकी जाती है, लेकि
अरज़ानीके सामने मज़हब, आरामदह, पाकीज़गी और
किसी बातकी परवाह नहीं की जाती। आम तौर पर तमाम
विलायती कन्द बरतते हैं, और पुराने ख़यालके चन्द आ
लिये जो अभी तक परहेज़ किये हैं, बाज दूकानदार इसी
खाँडमें गुड़का शीरा मिला-मिला कर रंग सुर्खी मायल क
ताकि देशी खाँडके धोखेमें खरीद करनेमें कोई एतराज़ न
शरबत क्यों नफ़ा नहीं करते और लज़ीज़ मालूम नहीं ह
शरबत नीलोफ़र क्यों तिश्नगी फरो नहीं करता? महज़ इस
कि तमाम अत्तार चुक़न्दरी कन्दके शरबत बनाते हैं
फिनले लिखते हैं कि चुक़न्दरी शक्कर ख्वाह ऐसी सस्ती
जैसे रेतके ज़र्रे, या ऐसी बेशक़ीमत जैसे मरवारीद, लेकि
हक़ीक़त एक ख़तरनाक चीज़ है। इसको ऐसा समझना च
जहरके प्यालेमें दूध मिलाया हुआ है। इसके इस्तैमालसे
बीमारियाँ देशमें पैदा हो गई हैं, तबीअ़तोंमें एक ख़ास
खुश्क़ी और हरारत पैदा हो गई है। बक़ौल मिस्टर फिनले
दर्जेकी खुश्क और गरम चीज़ है, और खूनमें गैर-मामूली ग
करती है, जो मसनूई जोशके साथ कमज़ोर हो जाती है

ीही सारी बीमारियोंकी जड़ है। हिन्दुस्तान जैसे गर्म मुल्कमें
की खाँडके सिवाय हर किस्मकी शक्कर मुज़िरे-सहेत पड़ेगी।
ास्ते हुकमाय हिन्दने जो हज़ारहा सालके तजर्बेके बाद यहाँकी
ासे वाक़िफ़ हो गये थे, लहसन, पियाज़ और गरम
ा इस्तैमाल मना किया है; क्योंकि ये खूनको गैर मामूली गरमी
ते हैं।"

बार "हितकारी" के २२ मई सन् १९०३ ई० के अंकमें
है कि—"मग़रबी सौदागरोंने सुफैद खाँडको खूबसूरतीका
देकर हिन्दुस्तानी व्यौपारियोंको वहममें डाल रक्खा है।
उम्दा या खुश ज़ायका होना उसकी सुफैदी पर इनहसार
रखता, लेकिन हिन्दुस्तानमें इस बातको कौन सोचे। जो
र अल्हसलाम कहे सोई सबको मंजूर। चन्द साल हुए कि
जसे मिस मूलर साहिबा बी० ए० अमृतसरमें आई। इनको
ोने देशी चीनी चायके लिये लेदी। वह उसके जायकेसे ऐसी खुश
कि उन्होंने देशी चीनीसे मिठाई बनवा कर अपनी वाल्दा साहि-
इंगलैंडमें भिजवाई और जब तक पंजाबमें रहीं तब तक देशी
की उज्ज़तकी तारीफ करती रहीं। हर एक इनसान जाँच
ा है कि देशी चीनी बनिस्बत विलायती चीनीके जियादह
रखती है, लेकिन जब तक मग़रिबसे सनद न आये इस
को कौन जाने। तजुरबा बतलाता है कि जहाँ सेरभर दूधमें
खाँड एक छटाँक डालनेसे काफी मीठा हो जाता है, उतना
की खाँड (विदेशी खाँड) दो छटाँक डालनेसे काफी मीठा
हो सकता है, लेकिन तुर्रा यह है कि दूकानदार खुद विलायती

खाँडके आशिक बन रहे हैं। चुकन्दरकी खाँडमें वह लज्जत
उम्दगी नहीं होती जो कि देशी नैशकरकी चीनीमें होती है।
न्दरकी बनी मिठाई जल्द बदबू देने लग जाती है। कोई कोई
काले रंगका होता है, कोई काले और पीले रंगका। लेकिन
आमकी असलियतका फैसला नहीं कर सकते। इसी तरह
चीनीकी असिलियतका परखना, इल्मवालोंका काम नहीं। कि
शुआरीकी रूसे भी देशी खाँड ही अरजाँ है, क्योंकि जहाँ वह सेर
देती है, वहाँ यह आध सेर ही काफी सावित होती है।"

"आयुर्वेद-प्रचार" लाहोरके १ नवम्बर सन् १९०३ में
है—"हिन्दुस्तानी शक्कर वलिहाज़ फ़ायदा भी आला है, हालें
वलायती खाँडके अमराज़ पैदा करनेके मुताल्लिक कई डाक्टर
चुके हैं, मगर न मालूम हमारे भाई देशी खाँडके इस्तैमालका
दिलसे इक़रार क्यों नहीं करते और क्यों उसे इस्तैमालमें नहीं
अगर मौजूदा हाल रहा तो देशी शक्करका मिलना भी दु
हो जायगा। लोग नैशकरकी खेती ही छोड़ देंगे और
पछतायँगे और कुछ कर नहीं सकेंगे। अभी वक़्त है अगर
चाहते हैं।"

'हिन्दी-बंगवासी' कलकत्ता अपने ३० नवम्बर सन् १९
के अंकमें लिखता है—

"भारतवर्षसे प्रति वर्ष एक लाख टन प्रायः (२८००००
जानवरोंकी हड्डियाँ भेजी जाती हैं। जर्मनी और इंग्लैण्डमें
योंके कारखाने अधिक हैं। ये हड्डियाँ खाद तथा चीनी आदि
पदार्थोंके प्रस्तुत करनेमें काममें लाई जाती हैं।"

"श्रीवेंकटेश्वर-समाचार" बंबईने १ जनवरी सन् १९०४ के
में लिखा है—"हम बहुत प्रसन्न हैं कि शक्करका विषय उठने
हमारे धर्मप्रेमी महाशय उसकी अधिक जाँच करने लग गये
गंगापोल जयपुरके पंडित हनुमानप्रसादजी शर्माने इससे देशका
विदेश जाने और धर्मभ्रष्ट होनेके सिवाय और कई दोष
हैं। प्रथम तो यह भ्रष्ट है और इसके बने पदार्थ शीघ्र ही
जाते हैं। फिर इसके सेवनसे दस्त और खूनकी बीमारी,
छाले पड़ने और हैजा होनेका भी डर रहता है। इसके विरुद्ध
शक्कर सब तरहसे लाभकारी और ग्राह्य है। आशा है कि
कथन पर लोग विचार करेंगे।"

क समाचार-पत्र जनवरी १९०४ के अंकमें पुनः लिखता है—
जीपुरके पं० देवराज मिश्रका कथन है कि मोरिसके ढङ्गकी
शाहजहाँपुरमें भी बनाई जाती है। वहाँ चाशनी तैय्यार
एक कुलफीदार हौजमें उसे डालते हैं और हौज़के मुंह पर
पिसा हुआ मैदा भी छिड़का जाता है। जो हो, इसमें संदेह
कि विलायती चीनी बनाते समय उसका मैल साफ़ करनेके
चूना और जली हुई हड्डीका प्रयोग किया जाता है।"

बात बिलकुल उचित ही है, क्योंकि विदेशी शक्करके प्रवेशके
ही साथ प्लेगने भी भारतमें पदार्पण किया है। सन् १८९०
पश्चात् ही विलायती शक्कर अधिक परिमाणमें यहाँ आने
है। उसी समयसे बंबईमें प्लेग फैला; क्योंकि आरंभमें यह
आई और वहीं इसका प्रसार हुआ था। ज्यों ज्यों विदेशी
प्रचार भारतके अन्य भागोंमें बढ़ता गया त्यों त्यों प्लेग भी

खाँडके आशिक बन रहे हैं। चुकन्दरकी खाँडमें वह
उम्दगी नहीं होती जो कि देशी नैशकरकी चीनीमें है
न्दरकी बनी मिठाई जल्द बदबू देने लग जाती है।
काले रंगका होता है, कोई काले और पीले रंगका
आभकी असलियतका फैसला नहीं कर सकते।
चीनीकी असिलियतका परखना, इल्मवालोंका काम
शुआरीकी रूसे भी देशी खाँड ही अरजाँ है, क्योंकि
देती है, वहाँ यह आध सेर ही काफी साबित हो

" आयुर्वेद-प्रचार " लाहोरके १ नवम्बर स
है—"हिन्दुस्तानी शक्कर बलिहाज फायदा भी
वलायती खाँडके अमराज पैदा करनेके मुताि
चुके हैं, मगर न मालूम हमारे भाई देशी खाँ
दिलसे इकरार क्यों नहीं करते और क्यों उसे
अगर मौजूदा हाल रहा तो देशी शक्कर
हो जायगा। लोग नैशकरकी खेती ही
पछतायँगे और कुछ कर नहीं सकेंगे।
चाहते हैं।"

'हिन्दी-बंगवासी' कलकत्ता अपने
के अंकमें लिखता है—

" भारतवर्षसे प्रति वर्ष एक लाख
की हड्डियाँ भेजी जाती हैं।

श्रीवेंकटेश्वर-समाचार" बंबईने १ जनवरी सन् १९०४ के लिखा है—"हम बहुत प्रसन्न हैं कि शक्करका विषय उठने मारे धर्मप्रेमी महाशय उसकी अधिक जाँच करने लग गये गापोळ जयपुरके पंडित हनुमानप्रसादजी शर्माने इससे देशका विदेश जाने और धर्मभ्रष्ट होनेके सिवाय और कई दोष हैं। प्रथम तो यह भ्रष्ट है और इसके बने पदार्थ शीघ्र ही जाते हैं। फिर इसके सेवनसे दस्त और खूनकी बीमारी, छाले पड़ने और हैजा होनेका भी डर रहता है। इसके विरुद्ध शक्कर सब तरहसे लाभकारी और ग्राह्य है। आशा है कि कथन पर लोग विचार करेंगे।"

क्त समाचार-पत्र जनवरी १९०४ के अंकमें पुनः लिखता है—' गाजीपुरके पं० देवराज मिश्रका कथन है कि मोरिसके ढङ्गकी ी शाहजहाँपुरमें भी बनाई जाती है। वहाँ चाशनी तैय्यार के एक कुलफीदार हौजमें उसे डालते हैं और हौजके मुंह पर रा पिसा हुआ मैदा भी छिड़का जाता है। जो हो, इसमें संदेह कि विलायती चीनी बनाते समय उसका मैल साफ करनेके पना और जली हुई हड्डीका प्रयोग किया जाता है।"

अपनी टाँगें फैलाता गया। यहाँ तक कि आज न तो कोई भा...
वर्षका नगर, कस्बा, गाँव आदि इस अपवित्र शक्करसे ब...
और न प्लेगसे बचा है।

लाहोरके प्रसिद्ध कविराज, कवि-विनोद पं० ठाकुरदत्तजी श...
ने १ अक्टूबर सन् १९०७ के "मनुष्य-सुधार" नामक ...
तथा २० जनवरी सन् १९०५ के "हितकारी" पत्रमें ...
सम्मति प्रकाशित की है कि "प्राचीन वैद्यक ग्रंथों—चर्क, अ...
संहिता आदि—में विसर्प रोगके बयानमें साफ लिखा है कि भ्रष्ट खाँड...
सेवनसे जो गन्नेके अतिरिक्त अन्य पदार्थों द्वारा बनाई जावे, ऐसी...
महामारी (प्लेग) फैलती है। इनके सिवाय और भी कई विद्वानें...
सम्मति है। और विसर्पका बयान उक्त ग्रंथोंमें विस्तार-पूर्वक लि...

यदि किसीको यह शंका उत्पन्न हो कि जिस विलायतमें य...
खाँड बनती है और जहाँके लोग रात-दिन इसे खाते हैं, वहाँ...
क्यों नहीं फैलता? इसका उत्तर यह है कि जैसे हर समय मैं...
बदबूमें रहनेवाला मनुष्य दुर्गन्धसे बीमार नहीं होता, कि...
और सुगन्धित स्थानमें रहनेवाला उसी बदबूसे बीमार ...
है; अथवा जैसे ६ माशे नित्य अफीम खानेवाला मनु...
६–७ माशे खाकर भला चंगा रहता है और कभी ९–१...
जाय तो भी उसे कोई हानि नहीं होती; परन्तु यदि न ...
उतनी ही अफीम खिला दी जाय तो वह जीवित नहीं रह...
इसी भाँति शीत देशोंके निवासियोंको—जिनके संस्कार...
और जो सदासे ऐसी ही वस्तुएँ खाते हैं—इस खाँडसे ...
सकती। दूसरे देशोंमें विलायती खाँड खाने पर ...
और इस देशमें होनेमें कई अन्य बातें भी सहायक हैं-

tioners for the adornment of their sweetm
has invaribly ended in the discovery of poi
of the most destructive and deadly nature.

In England, the centre of civilization, as
are so fond of calling it, poison is openly ve
in the streets, shop windows are filled wit
and although Doctor Letheby tells us t
"within the last three years no less t
seventy cases of poisoning have been trace
this source" still no steps are taken to
crease or prevent the evil.

Brunswick-green is frequently employed
colouring sweet meats. This substance
known as the oxy chloride of copper, a sn
quantity of it is sufficient to produce dea
A case is mentioned by Henke where a
aged three died from sucking a cake of gr
water colour prepared with this mineral pois
such as is sold in the colour boxes of childr
The most easily obtainable antidote is
white of Eggs.

In september 1847 three adults and eig
children were taken to marylebone Work ho
having been seized with vomiting and retch
after eating some coloured confectionary, o
to penny worth had been purchased, and elev
persons had shared it, yet the sympto

peared within ten minutes of its being taken.
e poisonous colours had been made from rdigris.

Another case is mentioned by Dr. Letheby may 1850; two little girls were taken to ndon Hospital suffering from the effects poison. They had brought some sugar aments and coloured confectionary from Jew in Pethicoat Lane, and soon after ing them, they were siezed with vomiting ns in the stomach and burning of the uth, on analysing the vomited matters, re was abundant evidence of the presence arsenic copper, lead Iron, all of which had n derived from the confectionary of which children had partaken.

n making enquiry, Dr. Letheby was in-ned that between thirty and forty children been attacked in a similar way, after chasing sweetmeats from the Jew in ques-, who was not aquainted with the poisonous ure of his merchandise, for he had purchas-t, so he stated as the refuse stock of a e and "very respectable" firm in the city , etc.—(See "tricks of trade London" 1856 e 42, 43, 44, 45 etc.).

ऊपर लिखित अँगरेजीके उद्धृतांशका हिन्दी अनुवाद करना
पृष्ठोंका बढ़ाना है। सारांश यह है कि कई डाक्टरोंने डाक्टरी प
द्वारा सिद्ध किया है रंगीन विदेशी मिठाई एक अति विषयुक्त पदा
जिसके सेवनसे अनेक बालक बेमौत मर गये। इत्यादि—

रिसाला (मासिक पत्र) " मुफीदुल मुजारईन " माह अ
सन १९०३ में प्रकाशित हुआ था कि—" जिन पौदोंसे
निकलती है, उनमें गन्ना अव्वल दर्जे पर है, और चौदहवीं सदी
यूरोपके देशोंमें न तो गन्ना था और न गुड़-शक्कर। तमाम चीनी
कन्द वगरह हिन्दोस्तानसे ही वहाँ जाते थे। अफसोसके साथ
जाता है कि वह हिन्दुस्तान जो तमाम यूरोपका, गुड़ और
रसे मुंह मीठा करता था वही अब अपनी जरूरतोंके लिये
मुल्कोंका मुहताज है। सन् १८३६ ई० से पहले
खर्च निकाल कर हिन्दुस्तानसे २ करोड़ रुपयेकी
वगैरह मुमालिक गैरको जाया करती थी मगर सन् १८९
में ३३९७९८६१) रु० की चीनी और गुड़ दूसरे मु
हिन्दोस्तानमें आया। और यह भी लिखा है कि गन्नेके
खजूर, छुहारे, मकई, जुवारकी डण्ठल, वीट (Qeet) चुक
नारियल, ताड़ी, मैपिल, शलगम, गाजर, गेहूँ, आलू, दूध, ता
इत्यादि अनेक वस्तुओंसे भी चीनी निकाली जाती है। यहाँ
कि हज़रत कारीगरने मनुष्यके मूतसे भी चीनी निकाली है।
एक करखानेका जिक्र लिखा है जिसमें २४ घंटेके अन्दर चुक
शक्कर बिलकुल तैय्यार हो जाती है।

सोचिए ऐसी वस्तुओंसे तथा इतनी शीघ्र बनी हुई विदेशी

उस गन्नेकी बनी हुई देशी खाँडकी—जिसका रस अमृतके ठंडा और गुणदायक है और जिसकी राब बनानेके समय की गर्मीको. भारतवर्षके दूरदर्शी विद्वानोंने जलमे ऊगी हुई (कंजो)के द्वारा धीरे धीरे शीरेमेंसे निकाल कर खाँडको पुष्टिकारक,रोग-नाशक और लाभदायक बना दिया है—किसी भी बराबरी कर सकती है?

विदेशी खाँडका इतना अधिक प्रचार हो गया है कि सहस्र दस मनुष्य बड़ी कठिनतासे देशी खाँडके खानेवाले हैं। यदि नित्यकी आधी छटाँक खाँड भी प्रति मनुष्य मान जावे—क्योंकि बहुतेरे दरिद्रोंको तो खाँड कभी स्वप्नमें भी मिलती—तो लगभग ढाई लाख मन शक्कर भारतको एक में चाहिए अर्थात् छः करोड़ मन शक्कर प्रति वर्ष भारतवासियोंके में समा जाती है। यदि इसमेंसे ३ करोड़ मन शक्कर देशी मान ली जाय तो तीन करोड़ रुपया भारतवर्षका खानेके लिये हिन्दुस्तानसे बाहर निकल जाता है! कहिए मुंह आप करते हैं या कि विदेशी! हम अपने हाथों अपने देशको कंगाल कर रहे हैं; अपनी मूर्खतासे भारतका मिट्टीमें मिला रहे है; अपने हाथों दुर्भिक्षका भारतमें आह्वान हर्ष-पूर्वक स्वागत कर रहे हैं। प्यारे भाइयो! यदि आप एकदम शक्करका बहिष्कार कर दो तो धन और धर्म दोनोंकी रक्षा कर भारतका हित कर सकते हो। अपनी जिन्हा-इंद्रियको जरा दमन करनेसे यह कार्य अच्छी तरह हो सकता है। हम भारतीयोंके लिये शास्त्रकार महर्षियोंने इन्द्रिय-दमन एक अपूर्व तप बतलाया

है, तो क्या आप केवल जिव्हा-इन्द्रियको अपने अधीन नहं
सकते ! महात्मा बुद्ध, स्वामी शंकराचार्य, देशभक्त प्रताप, शि
स्वामी दयानन्द सरस्वती आदिने अपने देशके कल्याण-सा
प्राण तक दे दिये, अनेक दारुण कष्टसहे तो क्या आप
अनुयायी भारतके दुःख-निवारणार्थ तनिक भी कष्ट न सह क
भाँति दुर्भिक्ष राक्षसको अपने देशबन्धुओंका संहार करता देख
प्रसन्न होगे ? क्या आपको यह भी नहीं मालूम कि यही दशा र
एक दिन दुर्भिक्षके कुचक्रमें हमें भी पड़ना होगा !

अब हम जहाँ यह अपवित्र शक्कर बनती है, उस देशका
संक्षिप्त रूपमें पाठकोंके सम्मुख इस लिये रखना चाहते हैं कि व
निवासी भारतीय बन्धुओंकी दुर्दशा पर आप जरा ध्यान दें।
तो यहाँ पर वहाँकी बनी शक्कर खाकर अत्यंत प्रसन्न होते
परन्तु हमारे भाइयोंकी वहाँ कैसी दुर्गति है इसे भी पढ़ जाइ
यदि आपको तनिक भी अपने देश-भाइयोंसे अनुराग होगा अ
चित्तमें दया होगी तो आप कदापि उस देशकी बनी शक्कर छ
भी नहीं। जिस देशमें यह शक्कर बनती है उस स्थानका
है 'मोरीशस' टापू। इसी टापूके नामके कारण यह शक्कर "म
शक्कर" के नामसे पुकारी जाती है।

यह द्वीप हिन्द महासागरमें है । कुमारी अन्तरीपसे इसकी
लगभग दो हजार मील है । सन् १५०५ तक तो इसमें केवल
और चूहे ही रहते थे । पुर्तगालवाले जा बसे थे, मगर उन
१७१२ में चूहोंसे तंग आकर भागना पड़ा था ।

लगभग १०० वर्षोंसे मोरीशस अँगरेजोंके अधिकार
जब सन् १८३२ ई० में गुलामी उठा देनेकी बात चली थ
ईखके व्यवसायी मोरीशस-निवासी फरासीसियोंने अँगरेजों
था कि—"गुलामीकी प्रथा उठा देनेसे हमारा वाणिज्य-व्य
नष्ट हो जायगा, गुलामोंसे तो हम अपना सारा काम करा
इस पर अँगरजोंने उन्हें वचन दिया कि हम हिन्दुस्तानसे
लिये कुली भेजेंगे । तबसे अर्थात् सन् १८३४ ई० से फरासी
खेतों पर काम करनेके लिये हिदुस्तानसे कुली भेजे जाने ल

मोरीशसमें जो जो अत्याचार भारतीयों पर हुए उनक
अक्षरशः करना मानों पुस्तककी पृष्ठ-संख्या वढ़ाना है, तो
कुछ अत्याचारोंका वर्णन करेंगे । मोरीशसके गोरोंने भार
अधिक परतंत्र बनानेके नियम बनाये । अँगरेजी विश्वको
संस्करणके ३३६ वें पृष्ठमें लिखा है—

"The case of Mauritius was more s
It had long been suspected that the
had been indulging in a course of legis
the tendency of which says Mr. Geogh
the under-Secrety th the department o
culture in the Government of India

rds reducing the Indian labourers to a
omplete state of dependence upon the
r, and to-wards driving him into inden-
a free labour market being both directly
directly discouraged."

्–मोरीशसकी स्थिति अधिक भयंकर थी। बहुत दिनोंसे इस
आशंका थी कि यह उपनिवेश ऐसे कानून बना रहा है,
कारण भारतीय मजदूर प्लांटरोंके बिलकुल अधीन हो जावें
बार बार शर्तबन्दी कर लें। स्वतन्त्र मजदूरीको हर प्रकारसे,
रहसे और टेढ़े तरीकोंसे, रोकनेकी चेष्टा की जा रही थी।
ा मि० जी ओवेन साहबने जो उस समय सरकारी कृषि-
के उपमंत्री थे, कही थी।

१८३४ ई० से १८३८ तक चार वर्षोंमें २५ हजार भारतीय
तको कुली बना कर भेजे गये। इन्हीं दिनों ब्रूहम साहबने
ासत्व प्रथाके अन्यान्य विरोधियोंने ब्रिटिश पार्लमेंटमें इस
प्रथाके विरुद्ध आन्दोलन किया। 'इन्साइक्लोपीडिया'के नवीन
णमें 'कुली-प्रथा' का जिक्र करते हुए इस विषयमें लिखा है।

Brougham and the anti-salavero party
ounced the trade as a revival of slavery,
the Bengal Government suspended it in
er to investigate its alleged abuses. The
ure of these may be guessed when it is
d that the enquiry condemned the fraudu-
t methods of recruiting then in vogue, and

यह द्वीप हिन्द महासागरमें है। कुमारी अन्तरीपसे इसकी
लगभग दो हजार मील है। सन् १५०५ तक तो इसमें केवल
और चूहे ही रहते थे। पुर्तगालवाले जा बसे थे, मगर उन्हें
१७१२ में चूहोंसे तंग आकर भागना पड़ा था।

लगभग १०० वर्षोंसे मोरीशस अँगरेजोंके अधिकारमें
जब सन् १८३२ ई० में गुलामी उठा देनेकी बात चली थी
ईखके व्यवसायी मोरीशस-निवासी फरासीसियोंने अँगरेजोंसे
था कि—"गुलामीकी प्रथा उठा देनेसे हमारा वाणिज्य-व्य
नष्ट हो जायगा, गुलामोंसे तो हम अपना सारा काम कराते
इस पर अँगरजोंने उन्हें वचन दिया कि हम हिन्दुस्तानसे
लिये कुली भेजेंगे। तबसे अर्थात् सन् १८३४ ई० से फरासीसि
खेतों पर काम करनेके लिये हिंदुस्तानसे कुली भेजे जाने ल

मोरीशसमें जो जो अत्याचार भारतीयों पर हुए उनका
अक्षरशः करना मानों पुस्तककी पृष्ठ-संख्या बढ़ाना है, तो
कुछ अत्याचारोंका वर्णन करेंगे। मोरीशसके गोरोंने भारत
अधिक परतंत्र बनानेके नियम बनाये। अँगरेजी विश्वकोष
संस्करणके ३३६ वें पृष्ठमें लिखा है—

"The case of Mauritius was more se
It had long been suspected that the c
had been indulging in a course of legis
the tendency of which says Mr. Geogh
the under-Secrety th the department of
culture in the Government of India,

रोंके अधीन हैं। कमीशनने सुधार करनेके लिये कितनी ही
रिशें की थीं और तदनुसार कुछ सुधार किये भी गये थे,
। तब भी मोरीशस-प्रवासी भारतीयोंकी दशामें कोई विशेष
(नहीं पड़ा। उनके दुःख ज्योंके त्यों ही बने रहे। एक सरकारी
में, सन् १८८३ ई० में मोरीशस-प्रवासी भारतीयोंकी जो दशा
सके विषयमें लिखा है:—

"While the Government of India have taken
at care to secure the satisfactory regulation
the Emigrant ships the laws of the Island
e been so unjust to the coloerud people,
d so much to the advantage of the Planters,
at gross evils and abuses have arisen from
e to time. In 1871 a Royal commission was
ointed to inquire into the abuses complained
various reform were recommended and some
rovements have been effected, but the
nters are not remarkable for their respect
the rights of the Coloured people, and the
tem is liable to gross abuse unless kept
der vigilant control by higher authority."

अर्थात्—यद्यपि भारत-सरकारने इस बातके लिये बहुत प्रयत्न
या है कि जिन जहाजोंमें भारतीय मजदूर विदेशोंको भेजे जाते हैं,
की अवस्था सन्तोष-जनक की जावे, तथापि इस द्वीपके कानून
रंगके आदमियोंके लिये इतने अन्याय-पूर्ण और प्लाण्टरोंके लिये
अधिक लाभदायक रहे हैं कि इनकी वजहसे समय समय पर

[illegible] तथा दासत्व प्रथाके विरोधी दलने इस प्रथाकी बड़ी निन्दा की और कहा कि यह गुलामीका नवीन [illegible] और [illegible] सरकारने इसे कुछ दिनोंके वास्ते इस लिये [illegible] दिया कि तब तक इसकी हानियोंकी जाँच की जाय। इस प्र[illegible] हानियों और दुरुपयोगोंका पता इसी बातसे लग सकता है कि [illegible] [illegible] भरतीकी प्रथामें जिन छल-पूर्ण तरीकोंसे काम लि[illegible] जाता था उनके कारण, और जहाजोंके कप्तानों तथा अन्य कर्मच[illegible] भारतीय मजदूरोंके साथ जो जंगलीपनका वर्ताव करते थे [illegible] कारण, उसकी अत्यंत निन्दा की है।

फ्राँसीसी बैरिस्टर मि० देपीनेने भारतीयोंका बहुत कुछ पक्ष किया। इसके बाद मोरीशसमें तेमिलके प्रोफेसर राजरत्न गुदालि[illegible] बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु सरकारी नौकर होनेकी वजहसे प्रकाश्य रूपसे कोई आन्दोलन नहीं कर सके। अन्तमें उ[illegible] सहृदय फ्राँसीसी मि० एडोल्फडे प्लेविट्जके द्वारा एक प्रार्थना-[illegible] महाराणी भारतेश्वरीके औपनिवेशक मंत्रीके पास भेजा, जिसमें [illegible] निवेदन किया गया था कि एक शाही कमीशन द्वारा मोरीश[illegible] प्रवासी हिन्दुस्तानियोंकी दशाकी जाँच की जाय। तदनुसार स[illegible] १८७१ ई० में जाँचके लिये कमीशन नियुक्त हुआ। सन् १८७[illegible] ई० में कमीशनने अपनी रिपोर्ट साम्राज्य-सरकारके सामने पेश की। इस रिपोर्टका तात्पर्य यह था कि कुलियोंके साथ जो वर्ताव किया जाता है, वह अत्यन्त असन्तोष-जनक है और वे पूर्णतया

भारतवासियोंको एक बड़ा कष्ट यह भी था कि
पहुँचते ही उनका सिर और दाढ़ी मुंडा दी जाती थी।
हिन्दू और मुसलमान दाढ़ी रखते हैं। शौककी बात
पर वे सिर और दाढ़ी नहीं रखते हैं, बल्कि हिन्दू मात्रके
शिखा और मुसलमानोंके लिये दाढ़ी रखना धर्मसे सम्बध रखता
शिखा और दाढ़ी मुंड जानेसे हिन्दू और मुसलमानोंके धर्मोंको
... पहुंचता था। केवल यही नहीं, बल्कि जेलखानेमें

बहुतसी बड़ी बड़ी बुराइयाँ और अन्यान्य दोष उत्पन्न हो
हैं। सन् १८७१ ई० में जिन अन्यायों और बुराइयोंकी शिका
की गई थी उनकी जाँच करनेके लिये एक कमीशन नियुक्त कि
गया था। इस कमीशनने कितने ही सुधारोंकी आवश्यकता बत
और तदनुसार कुछ सुधार कर भी दिये गये। लेकिन प्लाण्टर
कृष्णवर्ण जातियोंके अधिकारोंको विशेषतः आदरकी दृष्टिसे
देखते। यदि उच्चाधिकारी-वर्ग बड़ी सावधानता-पूर्वक 'कुली-प्र
पर अपना अधिकार न रखे तो इस प्रथामें अनेक निकृष्ट बुराइ
पैदा होनेकी संभावना है।

मोरीशस-प्रवासी भारतीय भाइयोंको क्या क्या कष्ट सहने
अथवा सहने पड़ते हैं इसका संक्षेपमें यहाँ वर्णन किया जाता है

मोरीशस-प्रवासी भाइयोंको जो थोड़े बहुत राजनैतिक अधि
हैं, वे उनका उपयोग नहीं कर सकते। इसका कारण यह है
उनकी उन्नति और अवनति बहुधा गोरे जमींदारों और कारखा
वालों पर अवलम्बित है। कभी तो हिन्दुस्तानियोंके पास गोरों
जमीनका कुछ रुपया बाकी रहता है और कभी खाद मोल लेने
लिये हिन्दुस्तानियोंको गोरोंसे रुपया उधार लेना पड़ता है।
भाँति हिन्दुस्तानी लोग गोरोंका मुंह ताकते रहते हैं।

मोरीशसको जिस समय कुली भेजना प्रारंभ हुआ था,
समय स्त्रियोंके ले जानेकी प्रथा नहीं थी, परन्तु कई वर्षोंके
सैकड़े पीछे ३३ स्त्रियाँ ले जाना गुमाश्तोंने उचित समझा। स्त्रियों
संख्याकी कमीसे जो जो नैतिक हानियाँ हुईं उनके लिखने
आवश्यकता नहीं है। पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

रहते भारतवासियोंको एक बड़ा कष्ट यह भी था कि में पहुँचते ही उनका सिर और दाढ़ी मुंडा दी जाती थी। शिखा और मुसलमान दाढ़ी रखते हैं। शौककी बात कर वे शिखा और दाढ़ी नहीं रखते हैं, बल्कि हिन्दू मात्रके शिखा और मुसलमानोंके लिये दाढ़ी रखना धर्मसे सम्बध रखता शिखा और दाढ़ी मुंड जानेसे हिन्दू और मुसलमानोंके धर्मोंको लगता था। केवल यही नहीं, बल्कि जेलखानेमें प्रकारके धर्मावलम्बियोंको काफिरों द्वारा पकाया हुआ खाना पड़ता था। इसमें हिन्दू मुसलमानोंके अखाद्य पदा- बिलकुल विचार नहीं किया जाता था। चार पाँच वर्ष श्रीयुत् मणिलालजी बेरिस्टरने जो उस समय मोरीशसमें रहते बड़े प्रयत्नके बाद जेलके इन कष्टोंको दूर कराया। लगभग र्ष तक भारतवासियोंको मोरीशसमें इन कष्टोंको जेलके समय पड़ा। सुनते हैं कि एक बार एक ब्राह्मणने जेलमें जाकर हीने तक कुछ भी नहीं खाया, तब उसके लिये दूधकी व्यवस्था ई और वह जेलसे निकाल दिया गया, किन्तु इसके एक बाद ही निर्बलता एवं बीमार हो जानेके कारण उसके पखेरू उड़ गये। इन सबका मूल कारण हमारा विदेशी शक्करका र ही कहा जा सकता है।

रतवासियोंके खाद्य पदार्थों पर टैक्स बहुत ज्यादह लगाया है। उदाहरणार्थ एक साधारण बात लीजिए—यूरोपियन मक्खन खाते हैं और हिन्दुस्तानी घी व्यवहारमें लाते हैं। मोरी- मक्खनकी अपेक्षा घी पर अधिक टैक्स लगता है। कानू-

हीं होती। हिन्दुस्तानकी जो तीन भाषाएँ मोरीशसमें प्रचलित हैं
नमें हिन्दी प्रधान है। तेमिल और तैलगू बोलनेवाले भी हिन्दी
मझ सकते हैं। अत एव मोरीशस-सरकारका कर्तव्य है कि वह
न्दुस्तानी लड़कोंको हिन्दीमें शिक्षा दिलवानेका प्रयत्न करे।

मोरीशसमें रहनेवाले हिन्दुओंको एक भारी दुःख यह है कि
शास्त्रानुकूल अपने यहाँ अन्त्येष्टि संस्कार नहीं कर सकते अर्थात्
र्दे नहीं जलाने पाते। सुना है कि इन मुर्दों द्वारा भी वहाँवाले
कर बनाने योग्य मसाला प्राप्त करते हैं। वे मुर्देको किसी यंत्रमें
ल कर उसका सत्व निकाल लेते हैं जो शक्कर बनानेके काममें
ता है। हम नहीं कह सकते कि यह बात जनताको घृणा उत्पन्न
नेके लिये गढ़ी गई है या कि सत्य है, ईश्वर ही जाने! एक बार
धनी हिन्दूने वहाँ बहुतसा रुपया व्यय करके एक मुर्दा जलाया
परन्तु अन्य हिन्दुओंको ऐसा करनेका अधिकार नहीं। जो
जलाता है उसे कठिन दंड दिया जाता है।

सबसे बड़ा कष्ट भारतीयोंको यह है कि उनकी आर्थिक उन्नतिमें
क बाधाएँ डाली जाती हैं। मोरीशसमें कारखानोंके मालिकोंका
विशेष दल है। इन्हीं लोगोंका मोरीशसमें प्रभुत्व है। ये लोग
तवासियोंकी बढ़ती देख कर जलते हैं और उनकी दशा सुधा-
के लिये जो यत्न किये जाते हैं, उन्हें निष्फल करनेकी चेष्टामें
दिन लगे रहते हैं। मोरीशसमें भारतीयोंके साथ न्याय-युक्त
हार होनेका प्रश्न बहुत दिनोंसे चल रहा है। सन् १८७२ ई०
ब कि वहाँके प्रवासी भारतीयोंकी दशाकी जाँच करनेके लिये
ग कमीशन बैठा था, तभीसे यह प्रश्न चल रहा है; किंतु अभी

नकी दृष्टिमें यूरोपियन और इण्डियन समान होने चाहिए, पर मो
शसमें यह बात नहीं हैं।

हिन्दुस्तानमें हिन्दू और मुसलमानके उत्तराधिकारीका नि
उनके धर्म-शास्त्रानुसार होता है, इन्हींके अनुसार हिन्दुओं और मु
ळमानोंको उनकी पैतृक आदि संपत्तियाँ प्राप्त होती हैं; परन्तु मो
शसमें फ्राँसीसी कानूनके अनुसार संपत्तियोंके उत्तराधिकारी निश्चि
होते हैं। हिन्दू और मुसलमानोंके यहाँ जो सम्पत्तिके उत्तराधिक
समझ जाते हैं, उन्हें फ्राँसीसी कानून अपनी प्राप्य सम्पत्ति
वंचित कर देता है। इसका कुपरिणाम यह भी होता है कि भा
तीय कृषकोंकी जायदाद कितने ही छोटे छोटे टुकड़ोंमें बँट जा
है। इससे कृषकगण बन्धनमें फँस जाते हैं।

शिक्षाके विषयमें भी मोरीशस-प्रवासी भारतीयोंको बहुत क
है। यद्यपि मोरीशसमें भारतवासी ७० प्रति शत हैं, तथापि उनक
सुविधाका कुछ भी खयाल नहीं किया जाता। मोरीशसमें ६ भाषा
प्रचलित हैं; तेमिल, तैलगू, हिन्दी, अँगरेजी फ्रेंच और मोरीशियन
जो भारतीय लड़के स्कूलोंमें पढ़ते हैं, उन्हें अँगरेजी और फ्रेंच द्वार
शिक्षा दी जाती है। ऐसा करनेमें मोरीशस-सरकारका उद्देश यह
है कि इन लोगोंमें देशी भाव और राष्ट्रीय विचार उत्पन्न न हों
पावें। यदि कोई लड़का स्कूलमें पढ़ता है तो वह साधारणतया
भाषाएँ सीखता है। घरमें तो वह अपने देशकी भाषा बोलता है
और बाहर उसे मोरीशसकी दोगली भाषा "क्रोल" में बातचीत
करनी पड़ती है तथा स्कूलमें अँगरेजी और फ्रेंच सीखता है। लेकिन
इन चारों भाषाओंमेंसे उसे यथार्थ योग्यता एक भी भाषामें प्राप्त

नहीं होती। हिन्दुस्तानकी जो तीन भाषाएँ मोरीशसमें प्रचलित हैं उनमें हिन्दी प्रधान है। तेमिल और तैलगू बोलनेवाले भी हिन्दी समझ सकते हैं। अत एव मोरीशस-सरकारका कर्तव्य है कि वह हिन्दुस्तानी लड़कोंको हिन्दीमें शिक्षा दिलवानेका प्रयत्न करे।

मोरीशसमें रहनेवाले हिन्दुओंको एक भारी दुःख यह है कि शास्त्रानुकूल अपने यहाँ अन्त्येष्टि संस्कार नहीं कर सकते अर्थात् मुर्दे नहीं जलाने पाते। सुना है कि इन मुर्दों द्वारा भी वहाँवाले शक्कर बनाने योग्य मसाला प्राप्त करते हैं। वे मुर्देको किसी यंत्रमें डाल कर उसका सत्व निकाल लेते हैं जो शक्कर बनानेके काममें आता है। हम नहीं कह सकते कि यह बात जनताको घृणा उत्पन्न करनेके लिये गढ़ी गई है या कि सत्य है, ईश्वर ही जाने! एक बार एक धनी हिन्दूने यहाँ बहुतसा रुपया व्यय करके एक मुर्दा जलाया था, परन्तु अन्य हिन्दुओंको ऐसा करनेका अधिकार नहीं। जो मुर्दा जलाता है उसे कठिन दंड दिया जाता है।

सबसे बड़ा कष्ट भारतीयोंको यह है कि उनकी आर्थिक उन्नतिमें अनेक बाधाएँ डाली जाती हैं। मोरीशसमें कारखानोंके मालिकोंका एक विशेष दल है। इन्हीं लोगोंका मोरीशसमें प्रभुत्व है। ये लोग भारतवासियोंकी बढ़ती देख कर जलते हैं और उनकी दशा सुधारनेके लिये जो यत्न किये जाते हैं, उन्हें निष्फल करनेकी चेष्टामें रातदिन लगे रहते हैं। मोरीशसमें भारतीयोंके साथ न्याय-युक्त व्यवहार होनेका प्रश्न बहुत दिनोंसे चल रहा है। सन् १८७२ ई० में जब कि वहाँके प्रवासी भारतीयोंकी दशाकी जाँच करनेके लिये एक कमीशन बैठा था, तभीसे यह प्रश्न चल रहा है; किंतु अभी

तक इसका फैसला नहीं हो पाया। वहाँके रहनेवाले भारत
लिये सहयोग-समितियाँ और बैंक चलानेकी जो व्यवस्था क
थी, उसके विरुद्ध मोरीशसके गोरोंका दल नियमित रूपसे अ
लन कर रहा है। सन् १९०९ ई० में जो कमीशन बैठा था
अपनी रिपोर्टमें लिखा है—"मोरीशसके छोटे छोटे हिन्दु
प्लाण्टरों पर ही मोरीशसका भविष्य विशेष रूपसे निर्भर है,
लिये उनकी आर्थिक दशा सुधारनेके लिये कोऑपरेटिव क्रे
बैंक खोले जाने चाहिए।" भारत-सरकारने कमीशनके इस प्रस्
को मान कर जाँच करनेके लिये एक अँगरेज अफसरको मोरी
भेजा था। उसने जाँच करनेके बाद जो रिपोर्ट भेजी उसीके अनु
सन् १९१३ ई० में इस द्वीपमें इन बैंकोंके स्थापित करनेका
आरंभ किया गया। इस बातको देखते ही मोरीशसके धनाढ्य
बहुत जलने लगे और उन्होंने एक दल बना कर अपने कारखान
पासके खेतोंमें उगनेवाली बेंतकी फसल पर अधिकार जमाने
चेष्टा की। जुलाई सन् १९१४ ई० में इस द्वीपकी एक कोआपरे
क्रेडिट सोसायटी (सहयोग-समिति) ने इस दलसे अलग कि
दूसरे कारखानेसे बेंतकी फसलका ठेका कर लिया, जिससे इस द
वालोंके उद्देशकी सिद्धि न हो सकी। ऐसा होते ही सभी कारख
नोंके गोरे मोरीससके सहयोग-समिति-सम्बन्धी प्रस्तावोंके अ
उसकी प्रतिष्ठाके विरुद्ध प्रयत्न करने लगे। इसका परिणाम य
हुआ कि सहयोग-समितिके मेम्बरोंको अत्यंत हानि उठानी पड़ी

यद्यपि मोरीशसकी उन्नति वहाँके भारतवासियों पर निर्भर है
तथापि मोरीशसके राजकार्यमें उन्हें कुछ भी अधिकार नहीं दि

।अब तक मारीशस-प्रवासी भारतवासी शान्तिके साथ इस रहे हैं, लेकिन भविष्यमें यह स्थिति कायम नहीं रह सकती। वो और सर फ्रान्क स्वीटनहम जैसे घोर एंग्लो-इंडियनने जो रायल कमीशनमें नियुक्त हुए थे, लिखा था:—

"For the last three quarters of a century it d been found possible for the colonial vernment to regard the Indian as a stranger long a people of European civilization-a anger who must indeed be protected from position and ill-treatment and secured in the ercise of his legal rights, but who has no l claim to a voice in the ordering of the airs of the colony. From what we have rnt during our inquiry we very much doubt ether it will be possible to continue this itude. The Indian population in the colony
, itself in
regard is
to which
not unreasonably, attaches importance."

र्थात्—पिछले ७५ वर्षसे मोरीशस-सरकार यह समझती रही क मोरीशस-प्रवासी हिन्दुस्तानी इस उपनिवेशमें यूरोपियनोंके में विदेशी हैं, जिनका बचाव छल, कपट और बुरे बर्तावसे तो र करना चाहिए ताकि वह अपने न्याय-पूर्ण अधिकारोंका ग कर सकें; लेकिन इस उपनिवेशके मामलोंको तय करनेका

उनको कोई अधिकार नहीं है । हमें अपनी जाँचसे जो कुछ बा
ज्ञात हुईं उनसे हम कह सकते हैं कि भविष्यमें मोरीशस-सरक
इस नीतिका अनुसरण कर सकेगी, इस बातमें हमें बहुत ज्याद
सन्देह है। मोरीशसके भारतवासियोंके हृदयमें वहाँके राजनैति
मामलोंमें दखल देनेकी कोई स्वाभाविक इच्छा तब तक नहीं हो
जब तक कि कुछ प्रश्नोंके विषयमें उनकी जो इच्छाएँ हैं, उन
उचित ध्यान न दिया जाय। क्योंकि इन प्रश्नोंको वे बहुत उपयो
समझते हैं। और उनका ऐसा समझना अनुचित भी नहीं है।

वास्तवमें मोरीशस-सरकारकी धींगाधींगी अब तक चल रही
और उसने मोरीशस-प्रवासी भारतीयोंको कोई राजनैतिक अधिक
नहीं दिया। लेकिन अब आगे यह अन्याय-पूर्ण नीति कायम न
रह सकती। जबसे दक्षिण-अफ्रिकाके प्रवासी भाइयोंने 'सत्याग्रह
संग्राममें विजय प्राप्त करके संसारको यह दिखला दिया है
दुनियामें भारतवर्ष भी एक देश है और वहाँके निवासी आत्मि
बल द्वारा बड़े बड़े अत्याचारोंको दूर करा सकते हैं, तभीसे मोरीश
वालोंके हृदयमें भी कुछ जागृति उत्पन्न हो गई है। यह जागृति
हमें इस बातका विश्वास दिलाती है कि मोरीशस-सरकारकी
लबड़धोंधो शीघ्र ही नष्ट होगी।

मोरीशसमें जो हिन्दू या मुसलमान अपने धर्मके अनुसार विव
करते हैं और उनकी सरकारसे रजिस्ट्री नहीं कराते वे कानून
दृष्टिसे unmarried या अविवाहित समझे जाते हैं और उन
ँा घरेलू या रखनी समझी जाती है! इस द्वीपकी पिछली मर्दु
ारीकी रिपोर्टमें लिखा हुआ है कि:—

"The large number of unmarried persons 8-8 per cent) is a cnsequence of the prac-
asses, both of the
ion, of contracting
to say, they do not
tus of officers and
ce, under the civil Statws Laws of Mauri-
are not legally married."

र्थात्—"मोरीशसमें जो बहु संख्यक मनुष्य यानी ८५.८ फी
बिन ब्याहे हैं, इसका कारण यह है कि भारतवासियोंमें और
साधारणमें नीच जातिके मनुष्योंमें यह रिवाज है कि वे अपने
सार विवाह करते हैं अर्थात् वे सिविल स्टेट्स आफीसरके
आकर रजिस्ट्री नहीं कराते, इसी कारण मोरीशसके कानूनके
ार इन लोगोंकी शादी न्याय्य नहीं समझी जाती।"

दुर्दशापूर्ण स्थितिको शीघ्र ही दूर करनेकी आवश्यकता है।
ो पड़े उनका वर्णन
। वहाँ एक निर्भीक
बेटसन था, लार्ड
सनके कमीशनके सामने जो कुछ कहा था, उससे अच्छी तरह
होता है कि किन किन कष्टोंमें भारतीय मजदूरोंको मोरीशसमें
करना पड़ा। मि० बेटसनने कहा था:—

The system resolved itself into this-that
merely a machine for sending people to
There is absolutely no chance of the

coolie being able to produce any eviden
his own favour; the other coolies are afra
give evidence; they have to work under
very employed against whcm they ma
called upon to give evidence. Even if a c
came before me with marks of physical
lence on his body, it was practically impos
to covict the person charged with assaul
want of corroborative evidence. It was
painful sight to see people hand-cuffed
marched to prison in batches for the
trivial fault."

अर्थात्—इस प्रथाका निश्चय करके यही परिणाम होता
मैं आदमियोंको जेलखाने भेजनेके लिये कोरमकीर मशी
दिया गया था। कुलीके लिये इस बातकी संभावना नहीं
वह अपने पक्षके सनर्थनमें कुछ भी साक्षी उपस्थित कर
दूसरे कुली लोग गवाही देनेसे डरते हैं, क्योंकि उन्हें उसी
कके विरुद्ध गवाही देनेको बुलाया जाता है, जिसके कि यहाँ
काम करना पड़ता है। यहाँ तक कि जब कोई ऐसा कुली,
शरीर पर चोटके निशान हों, किसी मालिक पर अभियोग
आता था तो भी उसके पक्षको समर्थन करनेवाला कोई साक्षी
के कारण अभियुक्तको दोषी करना वस्तुतः असंभव हो जात
त्यन्त ही छोटे छोटे अपराधोंके लिये झुंडक झुंड आदमि
कड़ी डाले हुए जेलखानेको जाते देख कर मुझ बहुत
होता था।"

ऐसा कहना भारी भूल है। मैंने आज तक ऐसा
जो एक बार काँटोंमें गिर कर विद्ध हो गया हो और पि
हो, उसने काँटे न निकाले हों, या काँटोंमें गिर कर यह
कि अब तो काँटोंमें गिर गये, सारे बदनमें काँटे छिद
काँटोंसे नहीं निकलेंगे और सुख-पूर्वक यहीं पड़े रहेंगे। हम
मरते समय तक भी देशका भला हो सके तो करते रहना

> "जो पराये काम आता धन्य है जगमें वही।
> द्रव्यहीको जोड़ कर कोई सुयश पाता नहीं॥
> आमरण नर देहका बस एक पर-उपकार है।
> हारको भूषण कहे, उस बुद्धिको धिक्कार है॥
> लाभ अपने देशका, जिससे नहीं कुछ भी हुआ।
> जन्म उसका व्यर्थ है जलके बिना जैसे कुआ॥
> पेट भरनेके लिये तो, उद्यमी है स्वान भी।
> क्या अभी तक है मिला उसको कहीं सम्मान भी

भिक्षुक।

"He who truly lives,
Whose charity is free,
But he who never gives,
Is dead as dead can be."

रतवर्षमें दान धर्मसे सम्बन्ध रखता है। तभी तो हमारे
शास्त्रोंमें—

"मनुजसीमा हरिकथा, सकलगुणसीमा वितरणम्। —"

है। धर्मकी दस उत्तम विधियोंमें दान भी एक है।
और निष्काम हो कर, सच्चे और शुद्ध हृदयसे, दूसरोंको
तुतः सहाय्यापेक्षी अवस्थामें है, यथार्थतः सुखी तथा सन्तुष्ट
की प्रबल इच्छा और दया तथा उदारताकी तीव्र प्रेरणासे
उपयोगी वस्तुको श्रद्धा-पूर्वक देनेहीका नाम दान है।

गृह हो कर और दान-पात्रके निकट स्वयं जाकर सद्भाव
दान देना ही उत्तम दान है। यश, सुख और स्वर्गकी काम-
प्रत्युपकारकी आशा रखते हुए, दान-भाजनको अपने पास
र, जो दान दिया जाता है वह दान मध्यम है। माँगने पर
पूर्वक अनिच्छा प्रकट करते हुए दान देना अधम दान है।
गवद्गीतामें भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसे ही सात्विक
रूप दिया है जो देश, काल तथा सुपात्रका विचार करके
जाता है।

सात्विक दानसे श्री-वृद्धि,कीर्ति-वृद्धि, धर्म-वृद्धि और स्वर्गकी प्र
तक होना हमारे महर्षियोंने लिखा है। भारतवर्षमें केवल दान
एक अनुपम वस्तु है, जिससे बिना प्रयास ही स्वर्ग, अर्थ, काम
मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। हमारे शास्त्रोंमें बिना उत्तम
सम्पत्तिकी सारी शोभाको तुच्छ बताया है, यहाँ तक कि हम
कर्तव्य-कर्म भी एक मात्र दान कहा है। मनुजी कहते हैं—

" यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्त्वा विधिवद्गुरोः।
तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्वा द्विजो गृही।"

अर्थात्—विधि-पूर्वक गुरुको गो दान करने पर जो फल प्रा
है वही पुण्य-फल गृहस्थीको भिक्षा देनेसे होता है। हमारे
अन्नदानका कितना महत्त्व लिखा है—

" तुरगशतसहस्त्रं गोगजानां च लक्षं,
कनकरजतपात्रं मेदिनीं सागरान्ताम्।
विमलकुलवधूनां कोटि कन्याश्च दद्यात्,
नहि नहि सममेतैरन्नदानं प्रधानम्।"

अर्थात्—एक लाख गाय, घोड़, हाथी तथा सुवर्ण और
पात्र, ससागरा वसुन्धरा और योग्य करोड़ कन्याओंका द
पर भी वह फल नहीं मिलता जो अन्नदान करनेवालेको मि
किंतु बाबा तुलसीदासजीने लिखा है—

" जिनके लहहिं न मंगन नाहीं ते नरवर थोरे जग माँ

धर्मके शुभ लक्षणोंमें, दसमेंसे एक दान भी है।पर आ
रूप वेढब बिगड़ गया है। दानकी काया कलुषित हो

शरीर बहु व्याधि-ग्रस्त और देश दारिद्रय दलित एवं दुर्भिक्ष-
दिखाई देता है। इस कंगाल भारतमें यदि दानका ऐसा ही सर्व-
क रूप कुछ दिनों तक बना रहा तो इस देशका भविष्य नन्द,
के भविष्यसे भी कहीं अधिक भयंकर हो उठेगा। हाय,
सी स्वर्णभूमि भारत पर शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र, रघु, गय,
र्ण, विक्रम और श्रीहर्ष आदि प्रातःस्मरणीय वदान्य राजा
र चुके हैं ? हा न वे राम रहे न वह अयोध्या ही रही, न
न ही रहा, न ये बुलबुले ही रहीं !

"दानी बहुत थे किन्तु याचक अल्प थे उस कालमें।
सा नहीं जैसी कि अब प्रतिकूलता है हालमें।"

में दान-प्रथाका रूप परिवर्तन हो गया। इस प्रथाने इतना
ड़ा कि भारतमें एक दम आलसी मनुष्योंने भिक्षा माँगना
क रोजगार ही मान लिया। उसीसे वे अपने उदर-पोषणके
अन्यान्य गृहकार्य चलाने लगे। इतना ही नहीं, कई भिक्षुक
भी हैं। किन्तु—

"बन्दिनो दानमिच्छन्ति भिक्षामिच्छन्ति पङ्गवः।
र सत्पुरुषाः सिंहा अर्जयन्ति स्वपौरुषात्।"

त्-भिक्षाकी इच्छा करना लूले-लँगड़ोंका काम है, परन्तु
लोग हट्टे कट्टे बलवान होते हुए भी भीख माँग कर उदर-
रते हैं। इत्यादि अनेक ग्रंथोंमें हमारे शास्त्रकारोंने भिक्षा-
अत्यन्त ही निंद्य कार्य कहा है।

तर्षमें लगभग साठ लाख मनुष्य भिक्षावृत्ति द्वारा अपना
ते हैं। इनमें वे साधु भी हैं जो दल बाँध कर हाथी, घोड़े, ऊँट,

रीर बहु व्याधि-ग्रस्त और देश दारिद्रय दलित एवं दुर्भिक्ष-
दिखाई देता है। इस कंगाल भारतमें यदि दानका ऐसा ही सर्व-
रूप कुछ दिनों तक बना रहा तो इस देशका भविष्य नन्द,
मविष्यसे भी कहीं अधिक भयंकर हो उठेगा। हाय,
स्वर्णभूमि भारत पर शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र, रघु, गय,
र्ण, विक्रम और श्रीहर्ष आदि प्रातःस्मरणीय वदान्य राजा
चुके हैं ? हा न वे राम रहे न वह अयोध्या ही रही, न
नहीं रहा, न वे बुलबुलें ही रहीं !

दानी बहुत थे किन्तु याचक अल्प थे उस कालमें।
सा नहीं जैसी कि अब प्रतिकूलता है हालमें।"

में दान-प्रथाका रूप परिवर्तन हो गया। इस प्रथाने इतना
कि भारतमें एक दम आलसी मनुष्योंने भिक्षा माँगना
क रोजगार ही मान लिया। उसीसे वे अपने उदर-पोषणके
अन्यान्य गृहकार्य चलाने लगे। इतना ही नहीं, कई भिक्षुक
भी हैं। किन्तु—

वन्दिनो दानमिच्छन्ति भिक्षामिच्छन्ति पङ्गवः।
सत्पुरुषाः सिंहा अर्जयन्ति स्वपौरुषात्।"

-भिक्षाकी इच्छा करना लूले-लँगड़ोंका काम है, परन्तु
लोग हट्टे कट्टे बलवान होते हुए भी भीख माँग कर उदर-
रते हैं। इत्यादि अनेक ग्रंथोंमें हमारे शास्त्रकारोंने भिक्षा-
त्यन्त ही निंद्य कार्य कहा है।

र्षमें लगभग साठ लाख मनुष्य भिक्षावृत्ति द्वारा अपना
हैं। इनमें वे साधु भी हैं जो दल बाँध कर हाथी, घोड़े, ऊँट,

सात्विक दानसे श्री-वृद्धि, कीर्ति-वृद्धि, धर्म-वृद्धि और स्वर्गकी तक होना हमारे महर्षियोंने लिखा है। भारतवर्षमें केवल दान एक अनुपम वस्तु है, जिससे विना प्रयास ही स्वर्ग, अर्थ, काम मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। हमारे शास्त्रोंमें विना उत्तम दान सम्पत्तिकी सारी शोभाको तुच्छ बताया है, यहाँ तक कि हमारे कर्तव्य-कर्म भी एक मात्र दान कहा है। मनुजी कहते हैं—

"यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्त्वा विधिवद्गुरोः।
तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्त्वा द्विजो गृही।"

अर्थात्—विधि-पूर्वक गुरुको गो दान करने पर जो फल प्राप्त है वही पुण्य-फल गृहस्थीको भिक्षा देनेसे होता है। हमारे अन्नदानका कितना महत्त्व लिखा है—

"तुरगशतसहस्रं गोगजानां च लक्षं,
कनकरजतपात्रं मेदिनीं सागरान्ताम्।
विमलकुलवधूनां कोटि कन्याश्च दद्यात्,
नहि नहि सममेतैरन्नदानं प्रधानम्।"

अर्थात्—एक लाख गाय, घोड़े, हाथी तथा सुवर्ण और चाँदीके पात्र, ससागरा वसुन्धरा और योग्य करोड़ कन्याओंका दान करने पर भी वह फल नहीं मिलता जो अन्नदान करनेवालेको मिलता है। किन्तु बाबा तुलसीदासजीने लिखा है—

"जिनके रहत न संगत नाहीं ते नरवर थोरे जग माहीं।"

धर्मके चार लक्षणोंमें, इनमेंसे एक दान भी [illegible]
[illegible] विगड़ गया है। दानकी [illegible]

रीर बहु व्याधि-ग्रस्त और देश दारिद्रय दलित एवं दुर्भिक्ष-
खाई देता है। इस कंगाल भारतमें यदि दानका ऐसा ही सर्व-
रूप कुछ दिनों तक बना रहा तो इस देशका भविष्य नन्द,
के भविष्यसे भी कहीं अधिक भयंकर हो उठेगा। हाय,
ी स्वर्णभूमि भारत पर शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र, रघु, गय,
र्ण, विक्रम और श्रीहर्ष आदि प्रातःस्मरणीय वदान्य राजा
र चुके हैं? हा न वे राम रहे न वह अयोध्या ही रही, न
न ही रहा, न वे बुलबुलें ही रहीं!

"दानी बहुत थे किन्तु याचक अल्प थे उस कालमे।
ता नहीं जैसी कि अब प्रतिकूलता है हालमें।"

में दान-प्रथाका रूप परिवर्तन हो गया। इस प्रथाने इतना
ड़ा कि भारतमें एक दम आलसी मनुष्योंने भिक्षा माँगना
रु रोजगार ही मान लिया। उसीसे वे अपने उदर-पोषणके
अन्यान्य गृहकार्य चलाने लगे। इतना ही नहीं, कई भिक्षुक
भी हैं। किन्तु—

"वन्दिनो दानमिच्छन्ति भिक्षामिच्छन्ति पङ्गवः।
रे सत्पुरुषाः सिंहा अर्जयन्ति स्वपौरुषात्।"

त्-भिक्षाकी इच्छा करना लूले-लँगड़ोंका काम है, परन्तु
लोग हट्टे कट्टे बलवान होते हुए भी भीख माँग कर उदर-
रते हैं। इत्यादि अनेक ग्रंथोंमें हमारे शास्त्रकारोंने भिक्षा-
अत्यन्त ही निंद्य कार्य कहा है।

रतवर्षमें लगभग साठ लाख मनुष्य भिक्षावृत्ति द्वारा अपना
ते हैं। इनमें वे साधु भी हैं जो दल बाँध कर हाथी, घोड़े, ऊँट,

सात्विक दानसे श्री-वृद्धि, कीर्ति-वृद्धि, धर्म-वृद्धि और स्वर्ग तक होना हमारे महर्षियोंने लिखा है। भारतवर्षमें केवल एक अनुपम वस्तु है, जिससे बिना प्रयास ही स्वर्ग, अर्थ, व मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। हमारे शास्त्रोंमें बिना उत्तम सम्पत्तिकी सारी शोभाको तुच्छ बताया है, यहाँ तक कि कर्तव्य-कर्म भी एक मात्र दान कहा है। मनुजी कहते हैं—

" यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्त्वा विधिवद्गुरोः।
तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्वा द्विजो गृही।"

अर्थात्—विधि-पूर्वक गुरुको गो दान करने पर जो फल प्र है वही पुण्य-फल गृहस्थीको भिक्षा देनेसे होता है। हमा अन्नदानका कितना महत्त्व लिखा है—

" तुरगशतसहस्त्रं गोगजानां च लक्षं,
कनकरजतपात्रं मेदिनीं सागरान्ताम्।
विमलकुलवधूनां कोटि कन्याश्च दद्यात्,
नहि नहि सममेतैरन्नदानं प्रधानम्।"

अर्थात्—एक लाख गाय, घोड़, हाथी तथा सुवर्ण और पात्र, ससागरा वसुन्धरा और योग्य करोड़ कन्याओंका दान पर भी वह फल नहीं मिलता जो अन्नदान करनेवालेको मिल किंतु बाबा तुलसीदासजीने लिखा है—

" जिनके लहहिं न मंगन नाहीं ते नरवर थोरे जग माँहीं।"

धर्मके शुभ लक्षणोंमें, दसमेंसे एक दान भी है पर आजकल रूप बेढब बिगड़ गया है। दानकी काया कलुषित होनेसे ही

शरीर बहु व्याधि-ग्रस्त और देश दारिद्रय दलित एवं दुर्भिक्ष-
दिखाई देता है। इस कंगाल भारतमें यदि दानका ऐसा ही सर्व-
क रूप कुछ दिनों तक बना रहा तो इस देशका भविष्य नन्द,
के भविष्यसे भी कहीं अधिक भयंकर हो उठेगा। हाय,
री स्वर्णभूमि भारत पर शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र, रघु, गय,
कर्ण, विक्रम आर श्रीहर्ष आदि प्रातःस्मरणीय वदान्य राजा
कर चुके हैं ? हा न वे राम रहे न वह अयोध्या ही रही, न
मन ही रहा, न वे बुलबुलें ही रहीं !

"दानी बहुत थे किन्तु याचक अल्प थे उस कालमें।
ऐसा नहीं जैसी कि अब प्रतिकूलता है हालमें।"

रतमें दान-प्रथाका रूप परिवर्तन हो गया। इस प्रथाने इतना
किड़ा कि भारतमें एक दम आलसी मनुष्योंने भिक्षा माँगना
एक रोजगार ही मान लिया। उसीसे वे अपने उदर-पोषणके
क अन्यान्य गृहकार्य चलाने लगे। इतना ही नहीं, कई भिक्षुक
ने भी हैं। किन्तु—

"वन्दिनो दानमिच्छन्ति भिक्षामिच्छन्ति पङ्गवः।
इह सत्पुरुषाः सिंहा अर्जयन्ति स्वपौरुषात्।"

ति-भिक्षाकी इच्छा करना लूले-लँगड़ोंका काम है, परन्तु
के लोग हट्टे कट्टे बलवान होते हुए भी भीख माँग कर उदर-
करते हैं। इत्यादि अनेक ग्रंथोंमें हमारे शास्त्रकारोंने भिक्षा-
। अत्यन्त ही निंद्य कार्य कहा है।

भारतवर्षमें लगभग साठ लाख मनुष्य भिक्षावृत्ति द्वारा अपना
रते हैं। इनमें वे साधु भी हैं जो दल बाँध कर हाथी, घोड़े, ऊँट,

गाड़ी आदि अपन साथ साथ लिये फिरा करते हैं। वे
जो मंदिर-सेवा द्वारा अपना काम चलाते हैं। वे फकीर
वर स्वाँग धर कर माँगते रहते हैं। सारांश यह कि भिक्ष
वालोंकी संख्या साठ लाख है, वे कोई भी हों।

हमारा साधु-समाज भारतवर्षके लिये बकरीके गले
भाँति व्यर्थ ही है। पूर्वकालमें प्रायः अस्सी हजार साधु
थे। वे सब तपस्वी, धर्मनिष्ठ, वेद-वेदांगपारग और व
उनकी सारी आयु देशके कल्याण-चिंतनमें ही बीतती थ
उपकार उनके जीवनका एक मात्र लक्ष्य था। व्या
गौतम, कणाद, पतंजलि, पाणिनी आदि महर्षि उ
हजारमेंसे थे, जिन्होंने अपने तपोबलसे भारतका कल्या
जिनका वृहत् ऋण हमारे सिर है। कुपथगामी भू
सदुपदेश द्वारा अन्याय-पथसे हटा कर प्रजाका कल्
एवं देशकी दशाका समय समय पर बोध कराते रह
ही काम था। भारतवासियोंको सब प्रकारकी शिक्षा दे
काम था। क्षत्रियादि अन्य वर्णोंको उनके उनके धर्मानु
उन्हींका काम था। भारतको दुर्भिक्षसे बचानेके निमि
यज्ञ अहर्निशि करते रहना उन्हीं परोपकारी महात्माओंका
क्योंकि वे विज्ञानवेत्ता थे—उन्हें श्रीकृष्ण भगवान्के
वाक्य पर दृढ़ निश्चय था कि—

"अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः—
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।"

प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है और मेघसे अन्न यज्ञसे मेघ उत्पन्न होता है और कर्मसे यज्ञ उत्पन्न वे अपने यज्ञकर्म द्वारा भारतको रोग, शोक, चिंता, आदि भयंकर उत्पातोंसे बचाते रहते थे। यही नहीं समय र अस्त्र ग्रहण करके राजाओंको सहायता देते थे। उसी मण्ड-णाचार्य और कृपाचार्य थे, जिन्होंने महाभारतमें अपूर्व संग्राम बड़े शस्त्रधारियोंको चकित कर दिया था। जिनका था कि—

" अग्रतश्चतुरोवेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।
द्वाभ्यामपि समर्थोस्मि शास्त्रादपि शरादपि।"

त्—" चारों वेद मेरे आगे हैं—हृदयस्थ हैं और धनुष-बाण हैं। शास्त्र और शस्त्र दोनोंमें मैं समर्थ हूँ।" तत्कालीन के गुणोंकी प्रशंसा करना मानों सूर्यको दीपक दिखलाना है। म विश्वामित्र जैसे ब्रह्मर्षि द्वितीय सृष्टि उत्पन्न करनेमें समर्थ मौजूद थे। भृगु जैसे उग्र तेजधारी महात्मा विद्यमान थे। म जैसे वीर महात्मा मौजूद थे। ऐसा कौन राज्य था, जिसके दाता मंत्रियोंके समूहमें एक भी ऋषि न रहता हो। दधी-मान परोपकारी महर्षि, जिन्होंने अपनी जाँघकी हड्डी वृत्ता-रनेको देवताओंको दे दी थी, विद्यमान थे।

जकलके साधु-समाज पर जरा दृष्टि डालिए—तपके तो वे आग जलाके तपनेका अर्थ निकालते हैं। धर्मनिष्ठा नहा कर राख मल लेना और तिलक-छापे करके गलेमें माला में समा रही है। वेदवेदांग-पारग होना तो उनके लिये बड़ी

कठिन बात है, बल्कि उन्हें रामायणकी चौपई पढ़ना
भाँति नहीं आती। वनवास तो उन्हें नरक तुल्य लगत
गाँवके बाहर ठहर कर अपनेको वे वनवासी कहते हैं। देशके
इन्हें जरा भी ध्यान नहीं। इन्हें यह भी पता नहीं कि भ
इस समय क्या दुर्गति है और हमारा इस समय क्या क
बल्कि उसे मिट्टीमें मिलानेके कार्य ये सदैव करते रहते हैं।
या सेरभर अन्नका दिनभरमें नाश करते हैं और गाँजा, भाँ
चंडू, अफीम आदि मादक पदार्थोंका सेवन कर अपनी
करते रहते हैं। कुपथगामी भूपालोंको ये बेचारे क्या ह
जब कि वे खुद ही कुपथमें जा रहे हैं। भारतवासियोंको
भट्टाचार्य गँवार लोग कुछ शिक्षा भी नहीं दे सकते। वर्णा
चरण करनेका सदुपदेश ये दें कहाँसे, इन्हें यही पता नहीं
कितने होते हैं! इन्हें हवनादि द्वारा देशका कल्याण करन
आता, हाँ यदि उदर-रूपी हवन-कुंडमें पड़नेसे घृतादि
पदार्थ बचें तो यज्ञ सूझे। रात-दिन तमाखूका हवन तो
नागा करते रहते हैं। शस्त्र ग्रहणमें भी ये कायर हैं। हाँ
करके थोड़ा उछल-कूद जरूर कर लेते हैं, परन्तु यदि गवर्नमें
कहती कि युद्धमें सहायता करो, तो शायद ही कोई आगे
क्योंकि मुफ्तखोरोंसे काम होना जरा कठिन ही है। आजकल
खानेको माल और ओढ़नेको दुशाले प्रयोगमें लाते हैं।
सवारी और साधु नामकी ख्वारी करते हैं। उक्त लेखसे मेरा
सच्चे साधु महात्माओंसे नहीं है।

हमारा ब्राह्मण-समाज तो भिक्षुक समाज बना बनाया

ने अपने हाथों अपनी मिट्टी पलाद कर रखी है, इसमें सन्देह नहीं। आजकल ब्राह्मण नामका अर्थ ही भिक्षुक सा हो ... लोग इस सर्वपूज्य, सर्वोच्च जातिका हेय दृष्टिसे देखने ... । इसमें दोष लोगोंका नहीं है, जैसा जो करता है वैसा ही वह ...

... कम नहीं, बल्कि इनका पारा ... । कि ये लोगोंसे भीख माँग कर ... आदि कामोंमें सहस्रों रुपया व्यय करते हैं। पढ़े ... हों तो भीख ही क्यों माँगे। क्योंकि:—

"प्रतिग्रहसमर्थोपि प्रसंगं तत्र वर्जयेत्।
प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजो प्रशाम्यति॥"

... महाराज कहते हैं कि दान लेनेसे ब्रह्मतेज नष्ट होता है।

"तृणादपि लघुस्तूलस्तूलादपि हि याचकः।"

... र्थात्–"तृणसे हलका रुईका फाया और उससे भी हलका ... होता है।" यही कारण है कि आज अग्रजन्मा जाति नीच ... जा रही है। यह दुर्भिक्षके कारण हैं अथवा दुर्भिक्ष इनका ... है? मेरे विचारसे दुर्भिक्ष इनकी बेपरवाहीके ही कारण है। ... या झूठ इसका अनुमान विज्ञ पाठक स्वयं कर लें।

... पि ब्राह्मणोंमें तीर्थोंके पण्डे समझे जा सकते हैं तथापि इनके ... भी हम विशेष रूपसे कुछ लिखेंगे, क्योंकि दान लेनेवालोंमें ... भिक्षुकोंमें ये भी अग्रगण्य हैं। देखिए मथुराके पंडे चौबोंके ... मथुराके पुराने कलेक्टर मि० ग्राउस सा० मथुरा मेमोरिय- ... है।

The Chaubes of Muttra, however, num- ... all some 6,000 persons, are a peculiar

उनके नेत्र भंगसे लाल लाल रहते हैं। माथा राखसे चु
है। और फटे हुए वस्त्र पहिने उत्तम भोजन मिलनेकी
फूले नहीं समाते।

इसी भाँति प्रत्येक तीर्थके पंडे कसाईकी भाँति यात्रियो
तक निकालनेमें कसर नहीं रखते। ये लोग वेचारे य
धन लूट-खसोट कर अपना घर बनाते हैं। भूखों मरते भ
अपने पेट पर पट्टी बाँध कर उन्हें धन देते हैं। इस देशकी
विचित्र दशा है कि दाता तो भूखों मरें और दान लेनेवाले
करोड़पति बनें, ऐशो आराममें उम्र बिताया करें।

एक दल भिक्षुकोंका और भी है, वह फकीर कहाता
मुसलमान साधु होते हैं। ये लोग तो प्रत्यक्षमें ठग होते है
खाना इनका धन्धा है, बाकी फकीरीका लक्षण इनमें एक भी
प्रायः इनका भार भी हिन्दुओंके माथे ही है। इनको
अच्छे अच्छे ढंग और हथकण्डे आते हैं। धूर्तता इनका मुख
और विलासिता इनकी सहचरी है। भारतवासियोंका—
धर्मके अनुयायी हिन्दुओंका—पैसा ये लोग मांस-भोजन तथा
चारमें व्यय करते रहते हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई
भिक्षुक हैं जो अपना उदर-पोषण केवल भीख माँग
करते हैं।

हमार यहाँकी दान-प्रथा बिलकुल बिगड़ गई। दाता पात्र
को देख कर दान नहीं देता तो याचक दान कुदानको नहीं दे
जैसे राखमें डाला हवन नहीं कहाता, उसी प्रकार मूर्खों और
त्रोंको दिया हुआ भी दान नहीं कहाता। व्यासजी कहते हैं—

"दपूर्णमुख विप्रं सुभुक्तमपि भोजयेत् ।
च मूर्खनिराहारं षड्रात्रिमुपवासिनम् ।"

—विद्वान यदि अक्षुधित हो तो भी उस भोजन कराना
कंतु मूर्ख छः दिनका भूखा हो तो भी उसे भोजन न दे ।
भी अच्छी बात कही है । विद्वानों तथा मूर्खोंका कैसा भेद
है। किंतु हम तो शास्त्र-वाक्य भी नहीं मानते । यह दोष
ही सिर है कि हमने कुपात्रोंको दान दे-दे कर भारतको
ना दिया । देशको आलसियों, मुफ्तखोरो और मूर्खोंसे
। दिन प्रति दिन भिक्षुकोंकी संख्या रक्तबीजकी तरह
है; क्योंकि भिक्षुकोंकी संतान भीख माँगनेवाली ही बनेंगी।
में आया है कि उनके सन्तान बहुतायतसे पैदा होती
भाँति यदि इनकी बढ़ती होती रही और देश इसी प्रकार
: दुर्भिक्षसे घिरा रहा तो आश्चर्य नहीं कि कुछ वर्षोंमें ही
सके निवासी भिक्षुक ही भिक्षुक होंगे । गोसाईं तुलसीदास-
है—

" नार मुई घर संपति नासी—
मूँड़ मुंड़ाय भये सन्यासी ।

—स्त्रीके मरते ही और धनहीन होते ही साधु बन कर भीख
सूझती है । किंतु मेरे विचारसे धनहीन होते ही आलसी
ब माँगने लगते हैं । आजकल तो स्त्रीकी कोई कैद नहीं,
कड़ों साधु कहानेवाले धूर्त स्त्रियों और बाल-बच्चों सहित
। कर पेट भरते हैं।

...समय गये हैं। सुना गया है कि अभी हालमें बंगाल-
...का ध्यान इस ओर गया है और वह इस सम्बन्धमें एक
...बनाना चाहती है।

...मेरिका जैसे उन्नत देशोंमें भीख माँगना बड़ा भारी अपराध
...हाँ जहाजसे उतरनेके पूर्व ३००) रु० नकदी दिखानेवाला
...ही देशमें प्रवेश कर सकता है, अन्यथा वह वापिस लौटा
...जाता है; क्योंकि उनका देश भीख माँग कर पेट भरनेका
नहीं है, वहाँ उद्यमी और पुरुषार्थी मनुष्य ही रह सकते हैं।
जिस देशके निवासी उद्यमी और परिश्रमी हों वहाँ क्या
दुर्भिक्ष, प्लेग, दरिद्रता आदि फटक सकते हैं? कदापि नहीं।
...अमेरिका समस्त संसारमें उन्नतिशील देश कहा जाता
...कि वहाँ एक भी भिक्षुक नहीं। अमेरिकामें ही क्या जापान
...अन्य देशोंमें भी भिक्षा बिलकुल नियम-विरुद्ध और निंद्य कार्य
...जाता है। हालैण्डमें ऐसे मुफ्तखोरोंके लिये जो कि काम
...लायक होते हुए भी कामसे जी चुराते हैं, यह उपाय
...ना गया है कि यदि कोई मनुष्य भीख माँगते हुए पकड़ा
और कारागारमें रहनेसे इनकार करे तो उसको एक हौजमें
देते हैं। इस हौजमें एक नल लगा रहता है, यदि वह इस
पानी न निकालता जाय तो थोड़ी देरमें पानी सिरके ऊपर
...। अतएव उसे हाथ पैर हिलाने ही पड़ते हैं, इस प्रकार उसे
...करनेकी आदत पड़ जाती है और आलस्य दूर हो जाता है।
...यही चाहते हैं कि भारतवर्षके भिक्षुकोंके लिये भी हमारी
...कोई ऐसा ही कानून बनावे। नहीं तो वे भिखारियों को-

न बनाये गये हैं। सुना गया है कि अभी हालमें बंगाल-
ारका ध्यान इस ओर गया है और वह इस सम्बन्धमें एक
बनाना चाहती है।

मेरिका जैसे उन्नत देशोंमें भीख माँगना बड़ा भारी अपराध
है, जहाजसे उतरनेके पूर्व ३००) रु० नकदी दिखानेवाला
ही देशमें प्रवेश कर सकता है, अन्यथा वह वापिस लौटा
जाता है; क्योंकि उनका देश भीख माँग कर पेट भरनेका
नहीं है, वहाँ उद्यमी और पुरुषार्थी मनुष्य ही रह सकते हैं।
जिस देशके निवासी उद्यमी और परिश्रमी हों वहाँ क्या
भिक्ष, प्लेग, दरिद्रता आदि फटक सकते हैं? कदापि नहीं।
तो अमेरिका समस्त संसारमें उन्नतिशील देश कहा जाता
कि वहाँ एक भी भिक्षुक नहीं। अमेरिकामें ही क्या जापान
अन्य देशोंमें भी भिक्षा बिलकुल नियम-विरुद्ध और निंद्य कार्य
जाता है। हॉलैण्डमें ऐसे मुफ्तखोरोंके लिये जो कि काम
लायक होते हुए भी कामसे जी चुराते हैं, यह उपाय
ा गया है कि यदि कोई मनुष्य भीख माँगते हुए पकड़ा
और कारागारमें रहनेसे इन्कार करे तो उसको एक हौजमें
देते हैं। इस हौजमें एक पम्प लगा रहता है, यदि वह उस
पानी न निकालता जाय तो थोड़ी देरमें पानी सिरके ऊपर
य। अतएव उसे हाथ पैर हिलाने ही पड़ते हैं, इस प्रकार उसे
करनेकी आदत पड़ जाती है और आलस्य दूर हो जाता है।
यही चाहते हैं कि भारतवर्षके भिखमंगोंके लिये भी हमारी
ट कोई ऐसा ही कानून बनावे। नहीं तो ये भिखमंगे जों-

भिक्षुकोंकी वृद्धि रोकनेका कोई उपाय अभी तक नहीं से
न जान भारतवासी क्यों इस ओरसे बेफिक्र हो रहे हैं।
भिक्षुकोंको बढ़ने देना भारी भूल है। जिस देशमें भिक्षुक
क्या वह देश कभी उन्नत हो सकता है? नहीं, कदापि
देशकी उन्नतिमें यह भिक्षुक दल अत्यंत बाधक है। हम
चाहते कि हमारे पूर्वजोंकी आज्ञा उल्लंघन कर दान देना
तथा आयुके चौथे भाग अर्थात् वृद्धावस्थामें हरिभजन
कल्याणके निमित्त गृहत्याग करना बुरा है। नहीं वह उत्तम
शास्त्र-मर्यादानुकूल होना चाहिए—वर्तमान भिक्षुक समाज
नितान्त अयोग्य है। ऐसे मुफ्तखोरोंको देशमें रखनेसे एक
आजायेगा जब कि सभी भिक्षुक ही भिक्षुक दृष्टि
भारतमें दानका धर्मसे सम्बन्ध होनेके कारण कोई कानून
र्नमेंट नहीं बना सकती। और बना भी सकती है तो गवर्न
इससे लाभ ही क्या? यदि गवर्नमेंट भिक्षुकोंके लिये कानून
कि—"अमुक आयुसे नीचेवाला व्यक्ति भिक्षुक नहीं हो
अथवा स्वस्थ और हट्टा-कट्टा बलवान, ... नी-पुरुषाप

...९। सुना गया है कि अभी हालमें बंगाल-
ध्यान इस ओर गया है और वह इस सम्बन्धमें एक
चाहती है।

जैसे उन्नत देशोंमें भीख माँगना बड़ा भारी अपराध
हाजसे उतरनेके पूर्व ३००) रु० नकदी दिखानेवाला
शमें प्रवेश कर सकता है, अन्यथा वह वापिस लौटा
है; क्योंकि उनका देश भीख माँग कर पेट भरनेका
, वहाँ उद्यमी और पुरुषार्थी मनुष्य ही रह सकते हैं।
देशके निवासी उद्यमी और परिश्रमी हों वहाँ क्या
प्लेग, दरिद्रता आदि फटक सकते हैं? कदापि नहीं।
रिका समस्त संसारमें उन्नतिशील देश कहा जाता
हाँ एक भी भिक्षुक नहीं। अमेरिकामें ही क्या जापान
शोंमें भी भिक्षा बिलकुल नियम-विरुद्ध और निंद्य कार्य
है। हॉलैण्डमें ऐसे मुफ्तखोरोंके लिये जो कि काम
क होते हुए भी कामसे जी चुराते हैं, यह उपाय
है कि यदि कोई मनुष्य भीख माँगते हुए पकड़ा
कारागारमें रहनेसे इन्कार करे तो उसको एक हौजमें
। इस हौजमें एक पम्प लगा रहता है, यदि वह उस
न निकालता जाय तो थोड़ी देरमें पानी सिरके ऊपर
एव उसे हाथ पैर हिलाने ही पड़ते हैं, इस प्रकार उसे
आदत पड़ जाती है और आलस्य दूर हो जाता है।
चाहते हैं कि भारतवर्षके भिखमंगोंके लिये भी हमारी
ई ऐसा ही कानून बनावे। नहीं तो ये भिखमंगे जो-

कोंकी तरह भारतका खून चूसते रहेंगे। इस दरिद्रताका भी ठिकाना है ?

कारलाइल साहब ऐसे भिक्षुकोंके विषयमें बहुत कुछ लिख अन्तमें लिखते हैं—"ऐसे भिक्षुकोंका प्रति रविवारको जब रहती है, शिकार खेलना चाहिए।" इसका मतलब यह नहीं उक्त साहब उनको सचमुच जानसे मार डालना बतलाते हैं— ऐसा लिख कर उन्होंने भिक्षुकोंके प्रति अपनी अत्यंत घृणा प्रकट की

हिन्दीके धुरन्धर लेखक मिश्रबन्धुओंमेंसे पं० शुकदेवबि मिश्र बी० ए० वकील हाईकोर्ट लखनऊ लिखते हैं कि "हट्टे कट्टे लोगोंको दान देना देश और उन दोनोंके लिये एक हानिकारक है। देशको इस लिये कि उसका इतना धन व्यर्थ होता है और उसकी द्रव्योत्पादक शक्ति जो उन्नतिकी एक जननी है, घटती है। और उन भिक्षुकोंकी यों हानि होती है वे पुरुषार्थके नितान्त अयोग्य हो जाते हैं। आप कहेंगे कि साधु-फकीरोंको मर जाने दें ? इसका उत्तर यही है कि ऐसे निरुद्य कायर पुरुषोंका जो देश पर केवल बोझ मात्र हैं, मर जाना ही उ है। इस शरीरसे जो मनुष्य कुछ भी लाभ नहीं उठाता, उससे वह पशु भला जो सैकड़ों काम आता है।"

भारतवर्षके भिक्षुक बड़े ही चटोरे और फजूल खर्च ए व्यसनी होते हैं। उनके मुखमें बिना घी-शक्करके ग्रास न उतरता। वे सोनेके जेवर और बढ़िया मूल्यवान् शाल ओढ़ते हैं बड़े बड़े मंदिरों, बागीचों, मठों और मकानोंके अधिपति होते हैं हाथी-घोड़े और पालकीमें बैठ कर चलते हैं। चंड, चरस, गाँजा

अफीम और भंग जैसे बुद्धि-विनाशक पदार्थोंका सेवन है। भिखमंगोंमें प्रायः ये दूषण होते ही हैं; क्योंकि उन्हें नहीं पड़ता; मुफ्तका माल हाथ लगता है, फिर जो जो न हों वे थोड़े ही हैं। ऐसे पुरुषोंमें नैतिक बुराइयाँ होना क बात है।

देखना चाहिए कि इस भिक्षुक महामण्डलका, जिसके से अधिक सभासद हैं, खर्च कहाँसे चलता है और व्यय होता है? कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इनका ग भारतवासियोंके ही सिर है, क्योंकि वे तो परिश्रम प समझते हैं। इनका अच्छे भोजन, अच्छे वसन तथा सबका खर्च लगाया जाय तो एक अच्छे गृहस्थसे कहीं ी खर्च निकलेगा। किंतु यदि औसतसे आठ रुपया प्रति भिक्षुक भी मान लिया जावे तो भी उनका खर्च ००) रु० वार्षिक बेचारे दीन, दरिद्र, दुर्भिक्ष-पीड़ित, वासियोंके ही सिर है!

क भारतमें भिखमंगे हैं तब तक भारतकी दशा सुधरना। क्योंकि भिखारी बड़े ही अनाचारी और अत्याचारी देखिए भिखारी रावणने सीता हरी। भिखारी विष्णुने सतीत्व नष्ट किया। भिखारी विष्णुने बलिको छला। िश्वामित्रने हरिश्चन्द्रको छला। भिखारी महादेवने वनमें ोंको लज्जित किया। भिखारी अर्जुनने बलदेवजीको ा। भिखारी कृष्णने जरासंधका नाश कराया। भिखारी ारद्वजने पुत्रका वध कराया। भिखारी त्रिदेवने दनुपुत्रोंके

पतिव्रतका नाश करना चाहा । भिखारी आल्हा-ऊदलने माँडो
राजाको मारा । भिखारी मुनिया बुढ़ियाने लाखों यात्रियोंकी लु
वाया । भिखारी मेजर टक्कर साहबने हजारों हिन्दुओंका धर्म भ्र
करवाया । आजकल भिखारी लोग जा जो उपद्रव, अत्याचार क
रह हैं वह विज्ञ पाठकोंसे छिपा नहीं है । सारांश यह कि भारत
लिये भिखारियोंकी अधिक संख्या सत्यानाशका मूल कारण है
अत एव इनकी संख्या घटा कर देशको दारिद्र्य और दुर्भिक्षसे र
करनेका उपाय सोचना चाहिए ।

कुछ और भी।

व कभी भारतवर्षमें प्लेगका दौरा किसी नगर गाँव या कस्बेमे होता है तब वहाँके रहनेवाले, उस जन-नाशसे घबरा उठते ससे बचनेका उपाय सोचते हैं, औषधियाँ सोचते हैं इत्यादि। उन्हें इस बातका तनिक पता नहीं कि प्लेगसे बढ़कर एक पिशाच भी भारतवर्षको ऊजड़ कर रहा है। वह दूसरा व दुर्भिक्ष है। यदि प्लेगसे एक मनष्यकी मृत्यु हुई है तो इस ने उन्नीस आदमियोंका संहार किया है। दुनियाके प्रसिद्ध छ जर्नल मि० लेन्सेट साहबने लिखा है कि पिछले दस वर्षोंमे ाख मनुष्य तो प्लेगके शिकार हुए और एक करोड़ नब्बे मनुष्य दुर्भिक्ष राक्षसके कराल डाढ़ों द्वारा पिस गये !

र्भिक्षने क्या नहीं कर दिखाया। अनेक ऋषि-सन्तान भूखे ईसाई और मुसलमान हो गईं। भूखों मरती भारत ललना- अपने पावन पतिव्रत धर्मको जलांजलि देदी। भूखों मरते भाई आरकाटियों द्वारा बहकाये जाकर फिजी, दक्षिण ा, नेटाल, ट्रांसवाल, आरेञ्जफ्रीस्टेट, दक्षिण रोडेसिया, केप- ी, कनाडा, आस्ट्रेलिया, मोरीशस, सीलोन आदि अनेक ोंको भेज दिये गये। वहाँ पहुँच कर, बल्कि भारत छोड़ कर पर पैर रखते ही उन्हें जिन जिन आफतों, अत्याचारों और ाओंका सामना करना पड़ा, उनकी कथा हृदयको विदीर्ण ाली है।

And the memory haunts and haunts them,
Of an evil black as hell.
They are dying, dying, dying,
Unblest, unloved, unknown,
Ah, God in heaven in heaven,
Make their dumb cry thine own."

क्या ही करुणा-जनक दशा है। हाय हमारे भोले भोले भार-
माई भूखों मरते, जीवित नरकमे पड़े यम-यातनासे कठोर दुःख
रहे हैं। क्या हमें इस बातका पता है कि वे क्यों इस भाँति
सह रहे हैं। हाँ, वे बेचारे भयंकर दुर्भिक्ष और दरिद्रके कारण
जीवित नरकमें हैं।

यों मरते भारतवासियोंने अपना गौरव खो दिया, स्वतंत्रता
, आत्मबलको तिलांजली दे दी, दासत्वको अपना लिया,
की छायाके स्पर्शसे हमारे पूर्वजोंने स्नान किया उन्हीं ऋषि-
सन्तानोंने आज उन्हीं लोगोंकी जुतियाँ खाकर भी "हाँ
" कहना अपने जीवनका एक मात्र उद्देश्य समझ रखा है।
ईश्वरकी प्यारी ब्राह्मण जाति भी ठोकरें खाने लगी। जिनकी
रजसे लोगोंने क्या चक्रवर्ती राजाओंने अपने मस्तकको
टेक कर अपनेको पवित्र किया, उन्हीं अग्रजन्मा भूसुरोंकी
मरते दुर्भिक्षके कारण कैसी अधोगति हो गई! बिना बुलाये,
नित होने पर भी, भोजन-प्राप्तिके लिये, अपनेसे नीच वर्णके
के द्वार पर वे आशा लगाये अड़े रहते हैं। कई तो सिर फोड़
न निकाल कर अपने पेटकी ज्वाला शांत करनेको अन्न प्राप्त
हैं।

ाक खूब बचा लेते हैं। कारण वहाँ काम अधिक होनेसे मनु
यमूल्य है और अच्छी मजदूरी मिलती है। भारतमें सैकड़ों हजारों

ा अमेरिका-सम्बन्धी पुस्तकोंमें स्वामी सत्यदेवजीने लिखा है
हाँ पर विद्यार्थी दिनमें एक घंटा भर काम करके अपना
भली प्रकार करके कुछ बचा भी सकता है। स्वयं स्वामी
वजीने ग्रीष्मावकाशमें इतना कमा लिया था कि महीनों तक
द्वारा वे अपना खर्च चलाते रहे थे। परन्तु भारतवर्षम
दिन जी-तोड़ परिश्रम करनेवाला मनुष्य भी मासमें कमसे
तीन चार चार एकादशीका उपवास करता है! यहाँ
मरते लोग अपने जीते-जी अपने प्राणाधिक प्रिय बालकोंको
ने जुदा कर देते हैं। यहाँ एक बी० ए०, एम० ए० डिग्री-धार-
उतना नहीं कमा सकता जितना अमेरिकाका एक कुली
ता है। यहाँके काम करानेवाले लोग मुफ्तमें ही काम करा
चाहते हैं। इसमें अग्रगण्य हमारी सरकारके कर्मचारी आदि ही
योंकि यह बहुतसे दीन मनुष्योंको जबरदस्ती बेगारमें पकड़
और उनसे काम करा कर एक पैसा नहीं देते और यदि देते
केवल नाम मात्रको या हमारे आँसू पोंछनेको। हम पूछते हैं,
के साथ ऐसा अन्याय क्यों? भूखों मरते भारतवासियों पर यह
! पर कौन सुनता है। जहाँ गवर्नमेंटके कर्मचारी ही
य कार्य करें और देशके गरीबों और भूखोंको सतावें, वहाँकी
होगी। देखा गया है एक साधारण सरकारी कर्मचारी

किसी गाँवमें एक बेगार पकड़ लेता है और उसे उसकी मिहनतके लिये एक पाई नहीं देता, बल्कि यदि वह चलनेमें कामचोर 'ना' कह दे तो उस दीनको बेतों और ठोकरोंसे है। पटवारीको देखिए, वह किसी एक गरीबको अपनी सेवा दिन हाजिर रखता है और उस दीनको एक फूटी कौड़ी भ मिलती। खेद है कि भारतके भाग्य-विधाता भी इनकी दशा पर नहीं देते। भारतमें ढूँढ़ने पर ५) रु० मासिक पर भी एक ह जवान मजदूर मिल जाता है। इसका कारण देशकी दरिद्रता दुर्भिक्षकी प्रबलता है।

" न्यू इंग्लैण्ड मेगज़ीन " (New England Maga ने अपने सन् १९०० सितम्बरके अंकमें लिखा था:—

The real cause of Indian famines is the e ome the object, the awful, Poverty, of Indian people.—

अर्थात् भारतमें दुर्भिक्षका मुख्य कारण भारतीयोंकी अत्यन्त दर्जेकी दरिद्रता है। "

\+ + + +

इधर हमारे खेल भी विदेशी हो गये, अतः देशका करोड़ों रुपय खेलों द्वारा भारतसे कूद कर विदेशों पहुँचने लगा। हम लोग वि खेलोंसे इतना प्रेम करने लगे हैं, मानों भारतमें एक भी उत्तम खेल है। किंतु हम दावेके साथ कह सकते हैं कि भारतका एक साधार साधारण खेल भी अत्यन्त बलदायक, स्वास्थ्य-सुधारक एवं ह और सस्ता है। फुटबाल, क्रीकेट, टेनिस, हाकी, गॉल्फ जैसे हा , और निकम्मे महँगे खेलोंसे हमारे भारतीय खेल कई बा

देखनेमें आता है कि व्यायामके सामान भी हमारे घरोंमें
है पड़े हैं। जैसे डम्बेल, सेंडोज डम्बल, फेंकनेका
किंतु ये सब निकम्मी वस्तुएँ हैं। भारतवासि-
के लिये मुद्गर आदि वस्तुएँ ही पर्याप्त हैं। आँखोंके
भीमने देशी ढंगकी
बल-परिचय दिया।
क्रीकेटके खिलाड़ीके
किंतु हमें इस बातकी
या फैशनके भक्त हैं। हम डंकेकी चोट कहेंगे कि
मामूली काम भी देशके लिये लाभप्रद, सर्वोत्तम
उदाहरणार्थ—बन्दूक चलानेके लिये हमें वर्त-
सैंकड़ेके कार्तूस खरीदने होते हैं और बन्दू-
चास रुपये अलग है। किंतु भारतीय एक बाँसके
ते तीर चढ़ा कर बन्दूकसे कहीं अधिक काम कर
कार्तूस चल चुकने पर किसी कामका नहीं
पुनः पुनः काममें आ सकता है। महाभारतके
र्जुनका गांडीव वर्तमान किसी एक बड़ी भारी
? वर्तमानमें भी राना सुलतानसिंहजी तथा
के निवासी लल्लूभाई कल्याणजी शाह आदि
वे प्रयोग जो शास्त्रोंमें वर्णित हैं, लोगोंको
सारी बात तो यह है कि हम आँख मींचे
विदेशी-प्रेमी हो गये हैं। अब हम लोगोंका
पनी बुद्धिसे काम लें और दुनियाकी बनावटी

रोगी कर दिया। प्लेग, कालरा, ज्वर आदि रोगोंको भारतमें लाने-वाला एक यह तैल भी है। इसका धुआँ तन्दुरुस्तीको बरबाद करनेमें एक ही सिद्ध हुआ है। जो लोग मूल्यवान लालटेनोंमें इसे जला कर यह समझते हैं कि हम इसके धुएँसे बचे हुए हैं, वे वास्तवमें भूले हुए हैं। वे प्रत्यक्ष रूपसे इसका धुआँ नहीं देखते, किंतु उससे मकानकी सारी हवा दूषित रहती है। प्रायः प्रति शत ७५ भारतवासी मिट्टीकी या टीनकी चिमनियोंमें इसे जलाते हैं, जिसमेंसे एक प्रकारकी धुएँकी चोटीसी लपट जलते समय उठा ही करती है—भला, क्या कभी आपने इसके द्वारा भविष्यमें उत्पन्न होनेवाली हानिको भी विचारा है? उसका दूषित एवं विष-तुल्य धुआँ आपके श्वास द्वारा शरीरमें प्रवेश कर अनेक रोगोंको उत्पन्न करता रहता है, अनेक इन्द्रियको निर्बल करता है। तभी तो भारतवासी अब रोगी और कमजोर होते चले जाते हैं। आँखोंके लिये मिट्टीका तैल एक विष-तुल्य पदार्थ है, जिसने भारतके हजारों लाखों नवयुवकोंकी दृष्टि शक्ति कम कर डाली, जिसके कारण माताके उदरसे बाहर आते ही ऐनककी आवश्यकता पड़ती है! आपने देखा होगा कि चिमनी जला कर सोनेवाले मनुष्योंका मुख प्रातःकाल उठने पर काला होता है, नासिकाके छिद्र बिलकुल Black hole (ब्लैक होल) या रेलके एंजिन ठहरनेके मकानके द्वारके जैसे होते हैं। मुखसे थूकने पर कफमें कज्जल मिश्रित होता है। अर्थात् हम अपने हाथों अपनी बरबादी कर रहे हैं, उक्त मिट्टीके तैलको खरीद कर अपना करोड़ों रुपया ही विदेशोंको नहीं दे रहे हैं बल्कि रोगी भी हो रहे हैं। इन दिनों तो मिट्टीके तैलका भाव पूर्वापेक्षा तिगुना, चौगुना

चटक मटक पर न रीझें। स्मरण रखिए वह भारतीय व
आप निकम्मी और अयोग्य समझे बैठे हैं, हमारी उद्धार
और सुख-सम्पति दायिनी है। हमें चाहिए कि हम बाह्य सु
मोहित होकर उसे न अपनावें, बल्कि उसके सच्चे गुणोंसे
संभव है कि देशकी भयंकर स्थिति सुधर सकेगी।

+ + + +

नित्य हमारे काममें आनेवाली एक वस्तु और भी है, उ
लोग तैल कहते हैं। आजसे २५ अथवा ३० वर्ष पूर्व सारे
अंधकार तिल्लीके तैल अथवा अन्य किसी भाँति उत्तम तै
किया जाता था। बल्कि राज-प्रासादोंमें घृत भी जलाया जात
हमारे जलानेके उन पदार्थोंमें अनेक गुण थे। तैलकी
पर मालिश अत्यंत बलकारक है, उससे कई प्रकारकी खाद्य
तैय्यार होती हैं, देशमें जिस भाँति घृत काममें लाया जाता है
भाँति गरीब श्रेणीके मनुष्य तैल काममें लाते है। तैलक
शिखा द्वारा कज्जल आदि प्राप्त कर नेत्रोंमें अंजनकी भाँति
हैं, जो नेत्रोंके लिये अत्यंत हितकर वस्तु है। किंतु जबसे
तैलका आगमन हमारे भारतमें हुआ तबसे तिल्लीके तैलको
पेंशन दे दी। आज एक साधारण गृहस्थकी पर्ण-कुटीसे ले
गगनस्पर्शी राज-प्रासाद तथा हमारे भगवान् राम-कृष्ण आदि
ओंके देवालयों तकको इसने अपने अधीन कर लिया। करो
मिट्टीका तैल अंधकार विनाशनार्थ भारतवर्षमें खपने लगा।

इस तैलने भारतके स्वास्थ्यको अपने साथ भस्म करना
कर दिया और शीघ्र ही भारतवर्षके बलवान् शरीरको निर्ब

ला कर दिया। प्लेग, कालरा, ज्वर आदि रोगोंको भारतमें लाने-
वा एक यह तैल भी है। इसका धुआँ तन्दुरुस्तीको बरबाद
रनेमें एक ही सिद्ध हुआ है। जो लोग मूल्यवान लालटेनोंमें इसे
ा कर यह समझते हैं कि हम इसके धुएँसे बचे हुए हैं, वे वास्तवमें
हुए हैं। वे प्रत्यक्ष रूपसे इसका धुआँ नहीं देखते, किंतु उससे
नकी सारी हवा दूषित रहती है। प्रायः प्रति शत ७५ भारतवासी
की या टीनकी चिमनियोंमें इसे जलाते हैं, जिसमेंसे एक प्रका-
धुएँकी चोटीसी लपट जलते समय उठा ही करती है—भला,
कभी आपने इसके द्वारा भविष्यमें उत्पन्न होनेवाली हानिको
चारा है! उसका दूषित एवं विष-तुल्य धुआँ आपके श्वास
शरीरमें प्रवेश कर अनेक रोगोंको उत्पन्न करता रहता है,
इन्द्रियको निर्बल करता है। तभी तो भारतवासी अब रोगी
कमजोर होते चले जाते हैं। आँखोंके लिये मिट्टीका तैल एक
विष-तुल्य पदार्थ है, जिसने भारतके हजारों लाखों नवयुव-
दृष्टि शक्ति कम कर डाली, जिसके कारण माताके उदरसे
आते ही ऐनककी आवश्यकता पड़ती है! आपने देखा होगा
मनी जला कर सोनेवाले मनुष्योंका मुख प्रातःकाल उठने पर
होता है, नासिकाके छिद्र बिल्कुल Black hole (ब्लैक
या रेलके एंजिन ठहरनेके मकानके द्वारके जैसे होते हैं। मुखसे
पर कफमें कज्जल मिश्रित होता है। अर्थात् हम अपने हाथों
बरबादी कर रहे हैं, उक्त मिट्टीके तैलको खरीद कर अपना
रुपया ही विदेशोंको नहीं दे रहे हैं बल्कि रोगी भी हो रहे
दिनों सो मिट्टीके तैलका भाव पूर्वापेक्षा

तक हो गया तब भी हम उसको त्यागना नहीं चाहते ? हमें
कि हम इस तैलको प्रयोगमें लाना एकदम छोड़ दें ताकि
भारतका अरबों रुपया बाहर जानेसे बचे और प्लेग आदि
रोगोंका देशसे काला मुंह हो !

हमें तिलोंके तैलकी रोशनी बुरी लगने लगी तब मिट्टीके
लैम्पको काचका बना कज्जल-ध्वज लगा कर हमने अपने ने
सुखी किया। शनैः शनैः हमें इस प्रकाशमें भी कम दीखने ल
Kitson Gigh की सृष्टि हुई—विवाह-शादियोंमें, नाच-र
आनन्द-उत्सवोंमें नाईकी मशालोंका अपमान कर इनको स्थान
गया। धीरे धीरे हम अंधोंको इसमें भी नहीं सूझने लगा
विद्युत्-प्रकाशका नम्बर आया। ईश्वर न करे, कहीं हम
तीयोंको—तिलोंके तैलके प्रकाशमें सतयुगसे अब तक
करनेवालोंको—अपनी दृष्टि-शक्ति कम हो जानेके कारण
बिजलीकी रोशनी भी पर्याप्त न हो ! और हमें पढ़नेके
सूर्य-सदृश प्रकाशवान् किसी ज्योतिकी घर घर आवश्य
पड़े ! आश्चर्य है कि आज हमने इस तैलका व्यवहार कर, अ
हाथों अपनी आँखें खराब कर लीं और ऐनक लगाने लग ग
हमारे विदेशी बन्धुओंको इसमें भी लाभ है, क्योंकि करोड़ों रुपये
ऐनकें अन्धे भारतमें खप जाता हैं। हम यह बात जानना चा
हैं कि रातदिन लिखनेवाले श्रीगणेशजी, अथवा वाग्देवी सरस्व
या १८ पुराणों तथा महाभारतके लेखक महर्षि व्यास कि
रामायणके रचयिता महर्षि वाल्मीकिने भी कभी अपनी वृद्धावस
तक ऐनक लगाई थी या नहीं ?

इन मिट्टीके तैलके साथ ही साथ अन्यान्य वस्तुओंकी भी आव-
श्यकता पड़ती है, जो कि सब विदेशी होती हैं। जैसे लेम्प, चिमनी,
ग, बत्ती आदि। इसी भाँति गेस और बिजलीके लिये विदेशी ही
कामसें लाई जाती है। बिजलीके कारखानोंके इंजिन, तत्सम्बन्धी
मान, तार, खंभे, काँचकी चिमनियाँ इत्यादि सभी विदेशोंकी बनी
हैं, यहाँ तक कि उसका मालिक भी कोई विदेशी सज्जन ही
। गैसकी बत्ती—जो छूनेसे ही नष्ट हो जाती है, बर्नर, काँच,
पंप आदि सभी चीजें विदेशी होती हैं। सारांश यह कि उसके
में लानेवाले ही केवल भारतवासी स्वदेशी होते हैं, अन्य कुछ
हैं। उस प्रकाशको देख कर "वाह वाह" कहनेवाले भी स्वदे-
शी होते हैं। परन्तु यह वाह वाह क्या सचमुच ठीक है या
मूर्खताका नमूना है? कुछ भी समझिए मेरे विचारसे अनेक
से भारतका धन विदेशोंको खिंचा जा रहा है और भारत
अज्ञतासे दिनों दिन दरिद्र और दुर्भिक्षका भोजन होता जा
है।

\+ + + + +

म उसी नगरको उन्नतावस्थामें समझते हैं जहाँ रेल, तार, टेली-
... पानीके नल, बिजलीकी रोशनी, ट्रामगाड़ी, मोटर और
इसिकलें आदि इधर उधर घूमती फिरती दृष्टि आती हैं। जहाँ
नार मिलें या कारखाने न हों वह नगर कदापि उन्नत नहीं कहा
सकता। जहाँ मोटर भों भों करती हुई अपनी दुर्गन्ध भरी वायु
छोड़ती जाती हो वह नगर नगर ही नहीं। हमारी कैसी उन्नी
नत है! रेलका प्रत्येक सामान विदेशी है तो उसके मालिक भी विदेशी

इसके कारण ही भारतकी दरिद्रता और दुर्भिक्षसे सम्बन्ध रखता ईश्वर ही इसका रक्षक है!

\+ + +

दुर्भिक्षने भारतको खूब ही धर दबाया, आज उसका जीवन है। सन् १८६५ ई० के पूर्व इंग्लैण्डमें प्रति सहस्र सत्तर की मृत्यु होती थी, किंतु अब केवल १५ ही रह गई। आबादी और मृत्यु-संख्या घटी। कारण वहाँके लोगोंने हैजा, प्लेग-आदि रोगोंके होनेके कारण जान लिये हैं। उन्होंने इसके चार कारण बताये हैं:—

Want of ventilation.
Over-crowded houses.
Bad and defective drain, and
The drinking water containing impurities.

अर्थात्—

मकानोंमें शुद्ध वायुका अभाव,
बहुतसे लोगोंका एक साथ ही एक मकानमें रहना,
बुरी तथा गन्दी नालियोंका होना, और—
ऐसा खराब पानी पीना जिसमें गन्दापन हो।

तो उक्त चारों कारणोंको दूर करके अपने देशको बचा लिया। किंतु हिन्दुस्थान—जिसमें लोग रात-दिन दुर्भिक्षका सामना करते रहते हैं, जिसको भरपेट अन्न प्राप्त करना कठिन है, जिसके सैकड़ों बालक क्षुधाकी प्रज्वलित आग्नमें नित्य जलते हैं—उक्त कारणोंको किस भाँति दूर कर सकता है? क्यों-

कि इनके दूर करनेके लिये धनकी आवश्यकता है और देश
है,अत एव रात-दिन नये नये मानव-संहारी रोगोंका भारतमें आ
हो रहा है। इसके अतिरिक्त अभी तक भारतवासियोंने शुद्ध
जल एवं वायुके अनुपम गुणोंको भी नहीं जाना है। हम
हैं कि रात्रिका सोनेके समय वायु आनेके सभी मार्ग बन्द कर
जाते हैं, यहाँ तक कि चार अंगुलके छिद्रको भी वे कपड़ा ठूँस
मूँद देते हैं। कारण वे गरीब हैं, भूखे हैं, अतः चोरोंके घुस आ
डर उन पर सवार रहता है। दरिद्रताक कारण प्रत्येक मनु
अलग अलग रहनेको मकान नहीं बनाये जा सकते, इस लिये
दस हाथ लम्बे-चौड़े मकानमें सात या आठ मनुष्य एक ही
और ओढ़नेमें घुस कर सो रहते हैं, वहीं रसोई बनती है,
घरमें हाँडी-कूँडे तथा अन्य सामान पड़े हैं, वहीं एक कोनेमें प
रखनेका स्थान है! बात यह है कि एक तो उन्हें इतना ज्ञान
होता कि एक बिछौनेमें दो मनुष्योंके सोने, रसोई-घर
शयनागार एक होने तथा वहीं पानीके रखनेका स्थान होनेसे
क्या भयंकर हानियाँ होती हैं। दूसरे यदि ज्ञान भी हो तो द
ताके कारण वे विवश हैं। क्योंकि प्रत्येक कार्यके आरंभमें सब
पहले धनका प्रश्न सामने आता है:—

The Mud huts of people favour spread
plague. But they are built of mud because th
is generally the only material, the builder ca
obtain" "......He inhabits a mud hovel, in th
middle of a crowded village surrounded b

lung-hills and stagnant pools, the water of which latter is not seldom his only drink ".

अर्थात्—भारतवासी मिट्टीके बने मकानोंमें रहते हैं। मिट्टीके मकान प्लेग फैलानेमें सहायक हैं। इन गरीबोंको सिवाय मिट्टीके और वस्तु ही मकान बनानेको प्राप्त नहीं होती। ऐसी झोंपड़ियोंमें रहते हैं जहाँ चारों ओर गोबरके ढेर, पास ही गन्दे पानीकी तलैया—जिसका पानी वे प्रायः पीते हैं—भी है।"

सुख कौन नहीं चाहता? क्या झोपड़ीका रहनेवाला चूनेके मकानमें रहना पसन्द नहीं करता? या उसे अच्छे, स्वच्छ, मकानमें रहना नहीं भाता? वह सब कुछ चाहता है, परन्तु करे क्या? प्रति दिन अकालोंका सामना करते करते उसे अपने जीवनकी आशा भी नहीं रही। पेट भर खानेको अन्न नहीं, फिर रहनेके लिये मकान कहाँसे लावे!

\+ + + + +

प्रथम तो भारतवासी विदेश-गमन करना बिल्कुल पसन्द ही नहीं है। दूसरे भारतवासियोंको अन्य देशोंने इस नीच श्रेणीके मनुष्य रखा है कि वे अपने देशोंमें हमें घुसने देना नहीं चाहते, और जो पहुँच चुके हैं उन्हें जिस तिस प्रकारसे अपने देशसे बाहर करनेके उपाय करते हैं। वहाँ भारतवासियोंके लिये कड़ेसे कड़े न्याय-पूर्ण कानून बनते हैं और कानूनोंका भी खंडन करनेवाले अत्याचार उनके साथ होते हैं। यहाँ इस विषय पर मैं अधिक लिखना नहीं चाहता। तथापि भारतवासियोंकी विदेशोंमें बड़ी पलीद है यह मैं ... लोग हम

पर निम्न लिखित दोष लगाया करते हैं—(१) भारतवासी म
होते हैं,(२) हमसे मिल कर रहना पसन्द नहीं करते,(३) जा
पाँतिके बन्धनोंसे जकड़े होते हैं, (४) मैले होते हैं अत एव हम
देशोंमें बीमारी फैलती है, (५) दुराचारी होते हैं,(६) सा
बाँधते हैं,(७) हमारे देशका धन बचा बचा कर भारतको भेज
रहते हैं,(८) ये लोग ईसाई नहीं हैं,(९) इन्हें ब्रिटिश उपनि
शोंके प्रवेशका अधिकार पूर्णतया प्राप्त नहीं, (१०) ये लोग स
जातिके नहीं,(११) ये साधारण भोजन करके बहुत बचा ले
हैं,(१२) हमारी बराबरी करते हैं, (१३) कम मजदूरी पर का
करते हैं—इत्यादि। ये सब आक्षेप ऐसे हैं जिनमें कुछ सार नह
मूर्खता-पूर्ण एवं दिल्लगी करने योग्य हैं। हम पूछ सकते हैं वि
यदि विदेशोंमें हमें घुसनेका अधिकार नहीं तो भारतमें विदेशियों
घुसनेका क्या अधिकार है? किंतु हमारी ब्रिटिश गवर्नमेण्टने हमा
इन अपमानोंको कभी नहीं सोचा। सच बात तो यह है कि हमार
सरकारने कभी हमारा पक्ष नहीं लिया है; और न कभी हमा
विपक्षियोंके विरुद्ध एक उँगली ही उठाई है। यही एक मुख्य कारण
है कि हमारा विदेशोंमें खुल्लमखुल्ला अपमान हो रहा है और वहाँ
निवासी हजारों रुपये मासिक वेतन पर भारतमें आनन्द कर र
हैं और हम चूँ भी नहीं कर सकते। नहीं तो क्या मजाल थी कि ह
अपमानित करनेवाले भारतकी सीमामें फटकने पाते। हमारी इ
प्रकारकी बे-इज्जतीका कारण हमारी ब्रिटिश गवर्नमेण्ट है, जो हमारे
:खोंको देख कर दुखी नहीं होती! या दूसरा कारण हमारी परतंत्रता
। यदि हम अपने देशके शासक होते तो आज हम उन विदेशि-

ो जो अपने देशमें हमारे भाइयोंका अपमान कर प्रसन्न होते हैं, ि भारतवर्षमें नहीं आने देते और जो हैं उन्हें कभीके यहाँसे स निकाल दिये होते, परन्तु हम तो पराधीनताकी दृढ़ जंजी- ते हैं। यह एक प्रसिद्ध बात है कि " जिसका सम्मान घरमे वह बाहर भी सम्मानित होनेकी आशा छोड़ दे। "

म एक ऐसे देशका कुछ जिक्र करते हैं जहाँ भारतवासियोंको देशों और द्वीपोंकी अपेक्षा अधिक आराम और सुख था, किंतु जब देखा कि भारतवासियोंका ब्रिटिश उपनिवेशोंमें ही अप- होता है तो हम भी उन्हें अपने देशमे निकाल बाहर करनेका न क्यों न करें। वह देश है ' अमेरिका '। अब वह भारत- मनुष्योंको अपने यहाँ नहीं आने देना चाहता है। वह भी लिखे हुए आक्षेपोंकी भाँति कई आक्षेप करता है। इस लगभग बीस लाख भारतवासी विदेशोंमें हैं और अमेरिकामें १९१२ की मनुष्य-गणनाके अनुसार ४७२४ भारतवासी थे। लगभग २०० विद्यार्थी हैं। किस किस सालमें कितने भारत- अमेरिकामें गये थे यह बात निम्न लिखित अंकोंसे प्रकट है—

१९००	सन्में,	९	भारतवासी गये।
१९०१	,,	२०	,,
१९०२	,,	८४	,,
१९०३	,,	८३	,,
१९०४	,,	२५८	,,
१९०५	,,	१४५	,,

१९०६	,,	२७१	,,
१९०७	,,	१०७२	,,
१९०८	,,	१७१०	,,
१९०९	,,	३३७	,,
१९१०	,,	१७८२	,,
१९११	,,	५१७	,,
१९१२	,,	१६५	,,.

अब जबसे अमेरिकाकी सरकार भारतवासियोंके विरुद्ध चर्च
रही है तबसे बहुतसे भारतीय अमेरिकाको घीकी मक्खीकी
छोड़ कर अपने देशको वापस आने लगे हैं। देखिए अमेरि
भारतवासियों द्वारा संगृहीत धन भारतको आता देख कर
दुःख हुआ है। महाशय प्रौफेसर जैंक और लौक अपनी "
Immigration problem " ' प्रवासका प्रश्न ' नामक पुस
लिखते हैं—

"Usually they (Indians) have little mo
in their possession when they arrive and co
with the expectation of accumulating a fort
of some 2000 dollars, then going back to th
native land.........",

अर्थात्—प्रायः भारतवासियोंके पास जब कि वे अमेरिकामें
हैं, कुछ भी नहीं होता और वे लोग इसी आशासे यहाँ आते हैं
हम यहाँसे सात आठ हजार रुपये इकट्ठे करके अपने घर ले जा
इसी भाँति केली-फोर्नियाके कुछ अमरीकन लोगोंने कहा था कि

न्दू लोग अपनी कमाईका एक बड़ा भाग अपने घर भारत-
को भेज देते हैं। स्टाकटन नामक नगरके निकटके हिन्दुओंने
१९१४ ई० में ५५ हजार, ४ सौ, ६७ रुपये घरको भेज दिये।"
देरके लिये, हम मान भी लेते हैं कि उक्त संख्या ठीक है।
हमारा प्रश्न इन केलीफोर्नियावाले अमरीकनोंसे है कि—
या अमेरिका-प्रवासी यूरोपियन लोग अपनी कमाईका एक बड़ा
हिस्सा अपने देशको नहीं भेजते?" देखिए, डा० स्टीनरने
प्रवास-सम्बन्धी प्रश्नोंके अच्छे ज्ञाता हैं "अमेरिकन रिव्यू आफ
ज" नामक पत्रमें लिखा था:—

'About Forty percent of our European pea-
nt immigrants re-emigrate. They export per-
[illegible] Rupees each normal year.
[illegible] depression or panics these

[illegible] यूरोपियन किसानोंमेंसे चालीस फी
[illegible] करोड़ रुपये प्रत्येक साधारण वर्षमें
भेजते हैं। जब उद्योग-धन्धोंका काम ढीला पड़ जाता है तो
रकम बढ़ जाती है।"

से आश्चर्य है कि ५५ हजार रुपये भारतवासियोंने यदि अपने
को भेज दिये तो उनके पेटमें क्यों चूहे कूदने लगे! और यूरो-
न लोग जो प्रायः तीन अरब रुपया अमेरिकासे प्रति वर्ष अपने
को भेज देते हैं उसका कुछ जिक्र ही नहीं! भारतवासियोंके
[illegible] कुछ सीमा है। हमें उचित तो यह है कि हम अमे-
बने हुए मालको स्पर्श तक न करें।

प्यारे भारतवासियो! क्या कभी आपको भी ऐसे विच
जाग्रत किया है कि आपके देशका कितना धन प्रति वर्ष वि
लोग अपने देशोंको भेज देते हैं? और किस भाँति आपका
भारतवर्ष निर्धन और दुर्भिक्षके ताण्डव नृत्यसे पादाक्रान्त हो
है? देखा, केवल पचपन हज़ार रुपयोंके भारतमें आने पर अ
काके लोग कैसे घबरा उठे हैं और भारतवासियोंका अमे
प्रवेश रोकनेका कैसा प्रयत्न कर रहे हैं। यह तो एक सभ्य
अमेरिकाकी बात है, अन्य देशोंकी कथा सुन कर तो आपके
खड हो जायँगे।*

अब हमारा यह मुख्य कर्तव्य है कि हम अपनी ब्रिटिश स
की सहायता द्वारा संसारके समस्त देशोंमें भारतवासियोंको
अधिकार प्राप्त करा लें और बेरोक-टोक प्रत्येक देशमें प्रवेश का
अधिकार भी प्राप्त कर लें। तब हमारे देशी भाई विदेशोंमें
आनन्द-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते हुए, भारतको कुछ
भी विदेशोंसे भेजते रहेंगे। हमें अब यह अन्याय नहीं सहना च
कि हमारा धन तो विदेशी आनन्द-पूर्वक अपने देशोंको उड़ा ले
और हम एक भी पैसा विदेशोंसे जब भारतवर्षको लावें तब उ
पेट दुखने लगे! अब हमें समान अधिकार प्राप्त करनेकी
निरन्तर करनी चाहिए और बार बार अपनी सरकारको इसके
याद दिलाते रहना चाहिए—क्योंकि बिना रोए माता-पिता भी
ककी सुधि नहीं लेते।

---

* इस विषयमें विशेष परिचित होनेके लिये हमारे यहाँसे "प्रवासी-वासी" नामक पुस्तक मँगा कर अवश्य पढ़िए।

हमारे शास्त्र भी विदेश गमनके कट्टर विरोधी हैं। वे समुद्र भारी पाप बताते हैं। किंतु यह भारी भूल ह, क्योंकि—

"विद्या वित्तं शिल्पं तावन्नाप्नोति मानवः सम्यक्।
यावद् व्रजति न भूमौ देशाद्देशान्तरं हृष्टः॥"

पुराणोंमें अनेक मनुष्यों, देवों, र विदेशोंमें जानेका साफ तौरसे तो केवल एक वितण्डावाद है, चाहिए।

हमारे लाखों भाई विदेशोंमें हैं, परन्तु वे शर्तबन्दीकी हथकडी जकड़ कर भेजे गये हैं—उनका जाना न जाना भारतवर्षके समान सा ही है। वे बेचारे अपना उदर-पोषण कर लें सो ही त है। हाँ, यदि कुछ उत्साही, समझदार, लिखे-पढ़े लोग में जाकर काम करें और नई नई बातें सीख कर भारतमें प्रचार करें तो उनका विदेश-गमन निस्सन्देह सार्थक माना सकता है।

भारतवासियोंका यह एक मुख्य कर्तव्य है कि उपनिवेशोंसे तथा सें लौटे हुए भारतवासियोंके साथ अच्छा वर्ताव करें, शास्त्र-दुरीसे उनका गला न काटें, उन्हें जातिच्युत कर उन पर वज्र न करें। अब तक इस विषयमें हम लोगोंकी नीति बिलकुल अनु-रही है। "फिजीमें मेरे २१ वर्ष" नामक पुस्तकमें पं० तोता-राम सनाढ्य लिखते हैं:—"कितने ही स्त्री-पुरुष गिरमिट (agreement) को पूरा करके तथा पाँच वर्ष और रह कर भारतवर्षको ना चाहते हैं सो वे इस विचारसे नहीं लौटते कि वहाँ पहुँचने

पर कोई हमें जातिमें तो मिलावेगा नहीं और व्यर्थ ही वहाँ जात्य
मान सहना पड़ेगा, इस लिये मृत्य पर्यंत उन्हें वहीं कष्ट उठाने प
हैं। हमारे देश भाई टापुओंसे लौटे हुए अपने भाइयोंको समुद्र-य
त्राकी दफा लगा कर जातिच्युत करके उन्हें इतना कष्ट देते हैं।
वे पुनः दुखी होकर टापुओंको लौट जाते हैं और उनका धन
कि उन्होंने परदेशमें मार-पीट सह कर, अनेक अपमान सह क
और आधे पेट खा-खा कर कौड़ी कौड़ी मुष्किलसे जमा किया है, कु
तो भाई बन्धु ले लेते हैं और कुछ टकार्थी पुरोहितजी प्रायश्चि
करानेमें बेदर्द होकर खर्च करवा डालते हैं। अपने देश-बन्धुओं
मैं इसका एक उदाहरण देता हूँ। मेरे घरके पास फिजी टापू
गुलजारी नामका एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण रहता था। उसने ब
परिश्रमसे आठ वर्षोंमें लगभग ३००) रु० संग्रह किये। इसे ब्राह्मण
जान कर प्रायः सब लोग प्रति मास पूर्णिमाको सीधे दे दिया करते
थे। यह कन्नौजका रहनेवाला था। इसके घरसे इसके भाईने पत्रमें
यह लिख भेजा कि तुम चले आओ। यदि इस साल तुम अपने
देश नहीं आओगे तो तुम्हें १०१ गऊ मारेकी हत्या होगी। गुल-
जारीने जब भाईकी लिखी ऐसी शपथ देखी तब ब्राह्मण-धर्म समझ
कर वह देशको चला आया। चलते समय लोगोंने इसे कुछ और
दक्षिणा दी। जब यह भारतवर्षमें पहुँचा तो दूसरे घरमें ठहराया गया।
रुपया पैसा सब भाईको सौंप दिया। तीन चार दिन बाद पुरोहितजी
बुलाये गये। ये महाशय कानूनकी पुस्तक साथ लेकर आये। गाँवके
बड़े बूढे सब मिल कर बैठे। समुद्र-यात्रा पर विचार हुआ।
गुलजारीने घरसे निकलनेसे लेकर फिजीमें पहुँचने तकका

नपान कह सुनाया। फैसलेमें सब तीर्थ बतलाये गये, भागवतकी
ा सुननेको बतलाई गई और लगभग पाँच छः गाँवोंको भोजन
ना बतलाया गया। कोई सातसौ या आठसौ रुपयोंके लगभग
करनेका फैसला दिया गया। गुलजारीने खर्च करनेके लिये
ने दिये हुए रुपये अपने भाईसे माँगे। भाईने कोरा जवाब दिया,
वालोंने उसे अलग कर दिया। उसके साथ गाँववाले बड़ी
ा करने लगे। भाई लोग कट्टर शत्रु हो गये और बोले कि तुमने
लोगोंसे जो रुपया छिपा लिया है वही खर्च करो; यह रुपया तो
नहीं देंगे। लाचार गुलजारीने फिजीमें अपने इष्ट-मित्रोंको,
नी कष्ट-कहानीकी चिट्ठी भेजी और लिखा कि कसाईके हाथसे
छुड़ानेके समान मुझे बचा कर पुण्यके भागी बनो। वहाँसे
ने ६००) रु० चन्दा करके भेजा तब गुलजारी अप्रैल सन्
४ में फिर फिजी पहुँचा। इसी भाँति कई लोग यहाँसे लौट कर
पहुँचे और वहाँ जाकर ईसाई और मुसलमान हो गये। इस
-यात्राकी धार्मिक दफ़ामें मुजरिम होकर बहुतेरे हमारे भाई
ी मातृभूमिको अन्तिम नमस्कार करके चले गये हैं।"

ड़े बड़े धुरन्धर पंडितोंसे जो समुद्र-यात्राके घोर विरोधी हैं, हम
करते हैं कि क्या आप इस प्रकारके अत्याचारोंको धर्मानु-
त समझते हैं ? यदि नहीं तो फिर बतलाइए कि इन लोगोंको
जातिमें मिला लेनेका आपने क्या प्रबन्ध किया है। जो भाई
अत्याचारोंसे पीड़ित होकर और नीच आरकाटियों द्वारा बह-
जाकर विदेशोंमें भेज दिये गये हैं उसमें उन बेचारोंका क्या
है ?

ऐसे अन्यायके कई उदाहरण हैं, किंतु हमारा यह विषय अत एव विशेष लिखना हम अनुचित समझते हैं।

परन्तु हमें देश छोड़ कर विदेश जाना तो दूर रहा, गाँव छे भी कठिन है। क्योंकि घरके लोग कहा करते हैं—"तुम कहं जाओ, हम तो रूखी सूखीसे गुजर कर लेंगे। घरके सब लोगोंको जगह मिल कर रहना चाहिए ताकि समय कुसमय, सुख-दुःखमें दूसरेका संगी रहे; कहींके कहीं पड़े रहना ठीक नहीं, इत्यादि सत्य मानिए, ऐसे संकीर्ण विचारोंके कारण ही भारत-वासी बैठे गरीब हालतमें गुजर किया करते हैं। यदि भारतमें ही कहीं ३०) रु० मासिक मिलता हो तो वे वहाँ कदापि न जा घर पर २०) रु० में ही गुजारा करना स्वीकार कर लेंगे। स मनुष्य भारतमें ऐसे मिलेंगे कि जिनके तबादलेका हुक्म आया उन्होंने घर छोड़ कर वहाँ जाना स्वीकार नहीं किया नौकरीसे इस्तीफा देकर बे-रोजगार होकर वे घरमें बैठ र भोजनके लाले पड़ गये, परन्तु घरसे बाहर जाना पाप समझ जब ऐसी दशा है तो भारतकी श्री-वृद्धि कैसे हो सकती है? निर्धन और दुर्भिक्षका कैसे काला मुहँ हो सकता है? विदेशी लोग बालक भी समुद्रों पार भारतमें आ जाते हैं और दरिद्र भारत मनचाहा द्रव्य पैदा कर अपने देशोंको ले जाते है। यद्यपि उन देश दरिद्र नहीं हैं, वहाँ उद्योग-धन्धोंकी कमी नहीं है तथापि वहाँसे यहाँ आते हैं; क्योंकि वे इस बातको निश्चय मान चुके हैं। विदेश-गमन करना मानो अपने देशको धनसे भरना है। इ लोगोंमें एक बड़ी भारी विशेषता यु- है [illegible]

गोंकी भाँति भारतवर्षमें बस नहीं गये हैं, बल्कि यहाँसे कमा-खा र अपने देशकी सुधि लेते रहते हैं। उधर विदेशी लोगोंकी यह ा है तो इधर भारतवासी आमरण एक ही जगह कौओंकी ति रह कर अपना जीवन व्यतीत करनेमें अपनेको धन्य समझते तब भारत दरिद्र क्यों न हो।

जब हिन्दुस्थानकी ऐसी भयंकर स्थिति है तो यहाँ व्यभिचार, ाजी आदि दुर्व्यसनोंकी वृद्धि हो तो आश्चर्य ही क्या? जब अन्न महँगा है और मजदूरीकी दर इतनी सस्ती है कि दिन भर ा बहाने पर भी भर पेट अन्न प्राप्त करना कठिन है, बीमारीकी पानीकी भी पूछनेवाला कोई नहीं है, दवा देनेवाला कोई है, तो उसका फल क्या होगा! देशमें पापाचरण होंगे, बढ़ेंगे, ठग, चोर डाकुओंके दल बनेंगे, नशेबाजोंकी संख्या और व्यभिचारका बाजार गर्म होगा। क्योंकि "कष्टात् क्षुधा"—भूखसे बढ़कर इस संसारमें कोई कष्ट नहीं है। यह विश्व अपनी क्षुधा शांत करनेके उद्योगमें ही लगा हुआ है, इस पेटके भरनेके निमित्त बड़े बड़े घोर पाप तक हो जाते हैं। पाते ही भूख मनुष्यसे अनेक निंद्य और अमानुषिक कृत्य करा है। भारतवर्ष भूखा है, अत एव देशमें नशेबाजी, जुआ-ठगी, व्यभिचार आदि पापोंका मूल कारण एक दुर्भिक्ष है। ा कहा करते हैं कि "ईश्वर भूखा उठाता है, किंतु भूखा नहीं"—यह बात विचारणीय है, क्योंकि आज भारत-करोड़ों संतान—भूखी सोनेकी तो बात ही क्या, बल्कि सदा के लिये नित्य सो रही है जो कभी न उठेगी। भारतमें दुर्भिक्ष-

से सप्रमाण माना गया है। करोड़ों मनुष्योंकी ठठरी आदि पूर्व वैभव और कीर्तिको भस्म कर रही है—आज भूखोंके भारतका कोना कोना गूँज रहा है—

उड़ते प्रभञ्जनमें यथा तरु-तन्तु सूखे पत्र हैं।
लाखों यहाँ भूखे भिखारी घूमते सर्वत्र हैं!
है एक चिथड़ा सा कमरमें और खप्पर हाथमें।
नंगे तथा रोते हुए बालक लिपटे हैं साथमें॥
वह पेट उनका पीठसे मिल कर हुआ क्या एक है!
मानो निकलनेको परस्पर हड्डियोंमें टेक है!
निकले हुए हैं दाँत बाहर नेत्र भीतर हैं धँसे।
किन शुष्क आँतोंमें न जाने प्राण उनके हैं फँसे?
अविराम आँखोंसे बरसता आँसुओंका मेह है।
है लटपटाती चाल उनकी छटपटाती देह है।
गिर कर कभी उठते यहाँ, उठ कर कभी गिरते वहाँ,
घायल हुएसे घूमते हैं वे अनाथ जहाँ तहाँ!

—भारतभारती।

दुर्भिक्ष भारतवासियोंका उसी भाँति संहार कर रहा है जैसे श्री मचंद्रजीकी वानरी सेनाका कुंभकर्णने संहार किया था। यह द द्रता ही दुर्भिक्ष, हैजे, प्लेग, ज्वर आदिका भयङ्कर रूप धा कर भारतका संहार कर रही है।

आस्ट्रेलियाके प्रत्येक मनुष्यकी आयका औसत ६००) रु० और व्यय २८६॥) रु० है, ऐसी दशा में वह ३१३॥) प्रति वर्ष लेता है। अर्थात् वहाँके लोग आनन्दसे खा-पी कर

रक्षा होते हैं, परन्तु भारतवासियोंको बचाना तो दूर रहा भर पेट
अन्न खाना भी भाग्यमें नहीं बदा। भारतकी वार्षिक आय औसत-
से प्रति मनुष्य १६॥।=) है और बहुत जरूरी एवं मामूली खर्च
(?) रु० वार्षिक है अर्थात् प्रत्येक आदमीके लिये १३=) की कमी
रहती है। बस हद हो चुकी। यदि आप और हम भर पेट अन्न
खाते हैं तो इससे तुष्ट न हो जाइए। यहाँ अनेक गाँवके गाँव भूखो
मरते हैं। अनेक वंश दुर्भिक्षने समूल नष्ट कर दिये, अनेकों भारतकी
दशा सुधारनेवाले भावी रत्न सदाके लिये उठा लिये।

भारत भूखों मर रहा है, दुर्भिक्ष सिर पर घूम रहा है, ऐसी अव-
स्थामें बेसमझे-बूझे संतान उत्पन्न करते चले जाना बिलकुल अनु-
चित है। बेहद संतानोंका पैदा होना ठीक नहीं। क्योंकि भारतवर्षमें
दुःख बढ़ेगा, दरिद्री बढ़ेंगे, मुखमरोंकी वृद्धि होगी, उत्साह-शून्य
पुरुष और अभागी स्त्रियाँ बढ़ेंगी। क्योंकि जन-संख्याकी इस प्रकार
असीम वृद्धि होने पर उनके खाने-पहननेको भी चाहिएगा, वे नंगे
रहकर वायु भक्षण करके तो जियेंगे ही नहीं। ऐसी दशामें इस
वृद्धिको रोकनेका भी ध्यान होना चाहिए। इसके लिए सबसे
उत्तम उपाय एक ब्रह्मचर्य है जो भारतवर्षके लिये सब प्रकारसे
उपयोगी है।

दुर्भिक्ष ।

मिस्टर कालिन्सने न्यूजीलैण्डके घोर दरिद्रोंकी दशा दिखानेके लिये लिखा है कि:—

"वे ऊँचेसे ऊँचे वृक्ष पर शहदके लिये या छोटी चिड़ियाँ पकड़नेके लिये चढ़ जाते हैं।"

कहिए क्या भारतमें ऐसे मनुष्योंकी कमी है! शहद निकालना तो मामूली बात है, हमारे भारतवासी तो तीस पैंतीस गज ऊँचे ताड़ वृक्ष पर भी ताड़ी उतारनेको चढ़ जाते हैं। घोर दुर्भिक्षोंको छोड़ दीजिए, साधारण दुर्भिक्षोंमें, मैंने लोगोंको भूखों मरते अपने कलेजेके टुकड़े, प्राणसे प्यारे अबोध बालकोंको मार कर भून कर खाते देखा है, और थोड़ी देरमें वे भी मर गये हैं। पृथ्वीमेंसे केंचुए निकाल कर खाते देखा है। साँपवाले सपेरोंको उनके पेट भरनेके साधन, जिससे वे तमाशा करके पैदा करते थे, भूखों मरते साँपका सिर और पूँछ काट कर खाते देखा है। वृक्षोंकी छाल कूट-पीस कर रोटी बना कर खाते देखा है। चिऊँटी मकोड़ोंके बिलोंमें, वह घासका बीज और अन्न जो उन्होंने अपने खानेको संचित किया है, लोगोंको उसे खोद कर, निकाल कर खाते देखा है। अपने बालकोंको दो दो तीन तीन रोटियोंमें बेचते देखा है। "देशदर्शन" नामक पुस्तकके लेखक श्री० ठाकुर शिवनन्दनसिंहजीने लिखा है कि दुर्भिक्षके समय, एक स्त्री एक जगह सड़ी गली लकड़ीमेंसे कीड़े निकाल कर और उन्हें भून कर अपने बालकको खिला रही थी। पूछनेसे पता

था कि बालक २४ घंटेसे भूखा है और उस स्त्रीके पेटमें तीन दिनसे कोई चीज नहीं पहुँची है। भूखों मरते लोगोंको एक प्रकारका पत्थर पीस-पीस कर खाते देखा है, जिसे खाकर वे भी मर गये। शिवं! शिवं! कैसा भयंकर दृश्य है!

बनारसकी ग्रामीण पाठशालाओंको एक बार स्व० मिस्टर कैरड़ने अचानक मोटर गाड़ी द्वारा पहुँच कर देखा तो उन्होंने पाठशालाओंके हेडमास्टरोंको एक अत्यंत मैली धोती, जो कई जगहसे फटी-पुरानी थी, आधी ओढे और आधी पहने पाया। पूछनेसे मालूम हुआ कि बाजरेका भात, मटरकी दाल और बथुवेका शाक भोजन मिलता है। २४ घण्टोंमें एक बार वे भोजन करते हैं। सायं-प्रातः किसी एक समय चबेना चबा कर क्षुधा निवारण करते हैं। पानीकी छुट्टी हुई तो विद्यार्थी एक मैलीसी पुटलीमेंसे निकाल कर कुछ खाने लगे, यह तो वह अन्न है जिसे पशु और पक्षी खाते हैं। जिसकी पुटलियामें एक गुड़का टुकड़ा है वह एक अच्छे घरका लड़का है जो औरोंको दिखा-दिखा कर बड़े गर्वके साथ खाता है। वह सबमें अपनेको धनी समझता है। क्या भारतकी यह दशा देख कर एक देशहितैषीके नेत्रोंमें दो आँसू नहीं आवेंगे।

स्वर्गीय सर रमेशचन्द्रदत्तने कहा है कि—

"The Immediate cause of famines is almost every instance in the failure of rains; but if we honestly seek for the true causes without prejudice or bias we shall not seek in vain. The intensity and the frequency of recent ... to the resourceless

condition and the chronic poverty of the cultivators......the poorest and most miserable peasantry on earth."

अर्थात्—"जब कभी दुर्भिक्ष पड़ता है, तब प्रायः सदा ही उसका कारण पानीका न बरसना होता है। पर हम यदि सत्य भावसे इसका मुख्य कारण ढूँढें तो हम निराश न होंगे।। इस ओर जो इतने कड़े और अधिक दुर्भिक्ष पड़े हैं, उनका कारण किसानोंका सम्पूर्ण निर्धन होना और बहुत पुरानी दरिद्रता है। ये किसान दुनिया भरमें सबसे अधिक निर्धन और विपत्ति-ग्रस्त हैं।"

लार्ड कर्जनके नाम खुली चिट्ठीमें बाबू आर० सी० दत्त लिखते हैं:—

"They can save nothing in year of good harvest, and consequently, every year of draught is a year of famine."

अर्थात्—वे अच्छी फसलमें कुछ बचा कर नहीं रख सकते, और इसका फल यह होता है कि जिस साल पानी ठीक तरह पर न बरसा कि बस देशमें दुर्भिक्ष पड़ा।"

'प्रासपरस ब्रिटिश इण्डिया, पृष्ठ १६६ में लिखा है कि:—

"......That he finds slarvation invariably staring him in the face, if any disorder overtakes that little crop which is the only thing which stands between him and death."

अर्थात्—"कृषकवर्ग कराल कालको हर वक्त अपनी ओर घूरता देखते हैं। जब कभी उनकी छोटीसी खेतोमें कुछ गड़बड़ी पड़

है, जो कि उनके और मृत्युके बीचमें खड़ी रहती है, तो भयंकाल उनके गले पर सवार हो जाता है।"

विलियम हण्टर, मिस्टर ए० ओ० हिर्डम, सर आक्लैण्ड न, सर चार्ल्स ईलियट, लार्ड क्रोमर, सर हेनरी काटन, मिस्टर ी, मिस्टर सण्डरलैण्ड और सर जेम्स कार्ड आदि सभी सज्जनोंने एक स्वरसे भारतके दुर्भिक्षका प्रधान कारण र्षकी घोर दरिद्रताको बताया है।

माल्थस साहबने लिखा है:—

Insufficient supply of food to any people not show itself merely in the shape of ie. It assumes other forms of distress as uch as generating evil customs, spreading rality and vice etc.—"

त्—जब किसी देशके मनुष्योंको भरपेट अन्न नहीं मिलता देशमें केवल दुर्भिक्ष ही पड़ कर नहीं रह जाते, बल्कि ऐसे रह तरहकी तकलीफें होती हैं। बुरे बुरे रसम-रिवाज फैलते व्यभिचार तथा अनाचारकी वृद्धि होती है।

भूमि, ऋषिभूमि भारतवर्षमें किस प्रकार धीरे धीरे दुर्भिक्ष ने अपना पैर जमाया, यह निम्न लिखित नकशा देखनेसे गा।

११	शताब्दीमें,	२ दुर्भिक्ष पड़े।	
१२	,,	०	,,
१३	,,	१	,,

१४	,,	३	,,	
१५	,,	२	,,	
१६	,,	३	,,	
१७	,,	०	,,	
१८	,,	८	,,	सन् १७४५।

अब अठारहवीं शताब्दीमें सन् १७६९ से लेकर सन् १८ तक तीन दुर्भिक्ष पड़े जो देशव्यापी नहीं थे।

(१) सन् १७०० ई० में बंगालमें।

(२) १७८३ ई० में बम्बई और मद्रासमें।

(३) सन् १७८४ ई० में उत्तर भारतमें।

सन् १७४५ तक ७५० वर्षोंमें सब मिला कर भारतवर्षमें को अठारह दुर्भिक्ष पड़े जो देशव्यापी नहीं थे, स्थानीय या प्रान्तीय थे। उन अकालोंमें भी लोगोंको रुपयेका पन्द्रह बीस सेर तक अन्न खानेको मिल जाता था।

अब जरा उन्नीसवीं शताब्दीको देखिए। सन् १८०० से १ १८२५ तक पाँच दुर्भिक्ष पड़े। जिनमें लगभग दस लाख मनुष्यों मृत्यु हुई। १८२६ से १८५० तक दो अकाल पड़े, जिनमें पाँ लाख मनुष्य मृत्युके प्राप्त हुए। सन् १८५१ से १८७५ तक दुर्भिक्ष पड़े, जिनसे ५० लाख आदमी यमालयमें पहुँचे। सन् १८ से १९०० तक १८ दुर्भिक्ष पड़े, जिनमें लगभग दो करोड़, ग लाख मनुष्य काम आए। इन सौ वर्षोंमें सब मिला कर ३१ दुर्भि पड़े, और सवा तीन करोड़ भारतवासियोंने भूखों मरते, बिना अ छट-पटाते हुए, प्राण परित्याग कर दिये।

कालोंसे कितनी हानि होती है इसका अनुमान करनेके लिये १८७७-७८ के एक अकालकी हानिका हिसाब नीचे दिया है—

कारी खर्चमें हानि,	८०, ००, ०००	पाउण्ड
गुजारीमें हानि,	२५, २०, ०००	,,
की हानि,	३, ७८, ००, ०००	,,
की वस्तुओंके टेक्समें हानि,	२, ८५, ०००	,,
की आमदनीमें घाटा,	४, ७९, ०००	,,
के टेक्समें घटी,	२, ७३, ०००	,,
की हानि,	९८, ८०, ०००	,,
की चीजोंकी महँगीसे	१, ३०, ००, ०००	,,
की हानि,	३७, ४९, ५००	,,
ोंकी हानि,	२७, ५०, ०००	,,
नेवालोंकी हानि	२०, ००, ०००	,,
रियोंकी हानि	१०, ००, ०००	,,
योग	८, २७, ३६, ५००	पाउण्ड

रह एक सालके अकालसे ८ करोड़, २७ लाख, ३६ ०० पौंड अर्थात् एक अरब, चौबीस करोड़, दस लाख, सैंता- ा, पाँचसौ रुपयेकी हानि हुई, और उसके साथ ही ५० दमियोंकी हानि हुई। इस हानिका मूल्य क्या रखा जाय, र पाठक ही दें। दुनियाके किसी देशमें न तो इतने लोग ी हैं, न दुर्भिक्ष ही पड़ते हैं। जर्मनी, फ्रान्स, अमरीका तो दुर्भिक्षका नाम ही भूल गये। पर दरिद्र भारत, जिसे

इन लोग 'उन्नत भारत' या 'सुखी भारत' कहते हैं, उन मारे मरा मिलता है।

सन् १७७० ई० से सन् १८७८ तक बड़े भयंकर दुर्भिक्ष इनमें यदि १८८९, १८९२, १८९७ और १९०० ई० के भी मिला दिये जायँ तो २२ घोर दुर्भिक्ष होते हैं। जिनका सुन कर विदेशी लोग काँप उठते हैं।

(१) बंगालका अकाल सन् ई०१७७१ ई०।*

बंगाल प्रान्तको सरकारी नौकरोंने तबाह कर दिया था। अत्यन्त दुखी और निर्धन हो गये थे। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सने १७ मई सन् १७६६ के पत्रमें अपने नौकरोंके अत्याचारों पर प्रकट किया था "The corruption and rapacity our servants" देखिए। सरकारी कर्मचारियोंने घूम-घूम जाँच की तो पता लगा कि बंगाल प्रान्तके $\frac{1}{3}$ मनुष्य इस दुर्भि मरे, मृत्यु-संख्या एक करोड़ थी।

(२) मद्रासका अकाल सन् १७८२ ई०।

मृत्युका ठीक अन्दाजा नहीं लगाया जा सका।

(३) उत्तर भारतका अकाल सन् १७८४।

भयंकर दुर्भिक्ष था। गाँवके गाँव उजाड़ हो गये। बनार राज्यमें लोग इतने मरे कि $\frac{1}{3}$ खेती बन्द हो गई। मृत्युका ठ अन्दाज नहीं।

(४) बम्बई और मद्रासका अकाल सन् १७९९।

* Famines in India

...क अनुमान नहीं किया जा सका, परन्तु भयानक ...था।

(...) बम्बईका अकाल सन् १८०२।

...ई सरकारने दूरसे अन्न मँगा कर एक नियत भाव पर सर्व-...को दिया और बहुत लोगोंकी Relief work द्वारा ...की। मृत्यु संख्या ठीक ठीक मालूम नहीं हुई।

(...) उत्तर भारतका दुर्भिक्ष सन् १८०४।

...ारने खूब सहायता दी। बहुतसी मालगुजारी मुआफ कर ...तकारोंको ऋण दिया और प्रयाग, कानपुर, बनारस आदि ...जो अन्न गया उस पर कुछ Bounty या एक प्रकारकी ... दी।

... १८०७।

... सहायता की, अन्न खरीद कर सस्ते ...बेचा और लोगोंके प्राण बचानेमें सहायता दी।

...) बम्बईका अकाल सन् १८२३।

...ारने अन्न पर कुछ Bounty या एक प्रकारकी सहायता

...) मद्रासका अकाल सन् १८२३।

...ारने थोड़ीसी सहायता की।

...) मद्रासका अकाल सन् १८३३।

...जिलेके ५ लाख निवासियोंमेंसे प्रायः दो लाख दुर्भिक्षकी ...। मद्रास और नीलोरकी सड़कों पर दुर्भिक्षसे मरे मनुष्योंके ... रहते थे।

हजारको सरकारी मदद नौ महीनों तक मिला। तो भी दो
आदमी मरे।

(१४) उड़ीसाका दुर्भिक्ष सन् १८६६।

४२ हजार मनुष्योंको, १६ महीने तक सहायता की गई, तो
४३ लाख आदमी मर गये। सरकारने दो लाख अस्सी हजार
अन्न पहुँचाया तो भी उड़ीसामें दस लाख आदमी मरे।

(१५) उत्तर भारतका दुर्भिक्ष सन् १८६९।

पैंसठ हजार आदमी Relief work पर काम करते रहे
१८ हजारको खैराती सहायता दी गई। इतने पर भी बारह ल
आदमी मृत्युके ग्रास हुए।

(१६) बंगालका अकाल सन् १८७४।

लाख पैंतीस हजार मनुष्य रिलीफ वर्क द्वारा और ४½ लाख खैराती मददसे पले। इस वर्ष सरकारी प्रबन्ध इतना अच्छा नहीं परने पाया!

१८७७।

आ। उधरकी कसर इधर निकाल कह कर मजदूरी घटा दी कि का फर्ज भर पेट अन्न देना नहीं, बल्कि वह उतना ही अन्न जिससे लोगोंका पेट न भरे, परन्तु प्राण बच जावें। आखिर ख, इक्कीस हजार, आठसौ मनुष्योंको अध-पेट सहायता दी और ५० लाख भारतवासी काल-कवलित हुए।

(८) उत्तरी भारतका दुर्भिक्ष सन् १८७८।

७५० मनुष्योंको अनाथालयोंसे और ५ लाख ५७ हजारको of work द्वारा सहायता दी गई। प्रबन्ध ठीक न होनेके १२½ लाख मनुष्य मृत्युके ग्रास हुए।

(९) मद्रासका अकाल सन् १८८९।

यता दी गई किंतु लोग अधिक मरे।

(१०) मद्रास, बंगाल, बर्मा और अजमेरका दुर्भिक्ष सन् १८९७।

अकाल बहुत भयंकर था। सहायता की गई। बंगालमें मृत्यु ई, परन्तु मद्रासमें बहुत मरे।

(११) उत्तर पश्चिम प्रान्त, बंगाल, बर्मा, मद्रास और बम्ब- दुर्भिक्ष सन् १८९७।

इने दुर्भिक्ष भारतमें पड़े यह उन सबोंसे भयानक और था। इसका प्रभाव समस्त भारत पर पड़ा था। ३० लाख

आदमियोंकी सहायता की गई । मध्यप्रदेशके अतिरिक्त सर्वत्र सुप्र-
बन्ध रहा। इस कारण दुर्भिक्षका रूप देखते मौतें अधिक नहीं हुई।

(२२) पंजाब, राजपूताना, मध्यप्रदेश और बम्बईका अकाल
सन् १९०० ।

यह भी भारतके अकालोंमें बहुत बड़ा अकाल था । ६० लाख
आदमी Relief work पर थे, तो भी मौतें बहुत हुई ।

आज बीसवीं शताब्दीको आरंभ हुए अभी बीस वर्ष ही बीते
परन्तु प्रायः प्रति वर्ष ही सार्वभौम नहीं तो प्रान्तिक या स्थान
दुर्भिक्ष भारतमें बना ही रहा है, उत्तरोत्तर दुर्भिक्षने सुरसा राक्षसी
भाँति अपना कराल मुख पसारना आरंभ कर दिया है। देशमें दुर्भि
सर्व-संहारी रुद्र रूप धारण कर यत्र तत्र घोर ताण्डवनृत्य कर
है । इतने पर भी हम बेसुध, अचेत पड़े हैं ।

जब जब अकाल पड़े हमारी सरकारने हमें सहायता दी, कि
जितनी चाहिए उतनी नहीं ! हम बंगालके १८७४ ई० वाले दु
क्षके सुप्रबन्धको देख कर जितने प्रसन्न हुए, उससे कई
दुःख सन् १८७७ के मदरासवाले दुर्भिक्षका कुप्रबन्ध देख कर हु
राजा हरिश्चन्द्रके समयमें लगातार उनके राज्यमें १२ वर्ष
दुर्भिक्ष पड़ा, तब राजाने अपने भोजन बनानेके पात्र तक बे
प्रजाकी रक्षा की थी । राजा स्वयं सकुटुम्ब भूखे बैठे थे कि
विश्वामित्रने आकर द्रव्यकी इच्छा प्रकट की, जिसके कारण
अपनी रानी और पुत्र सहित कितने कष्ट पाये यह बात
भारतवासी जानता है । हमें अब भी भारतके लिये वैसे ही
जोंकी आवश्यकता है जो प्रजाके हितके लिये अपने प्राण त

र्पण करनेको उद्यत हों। हमें सर रिचर्ड टेम्पुल सरीखे दुर्भिक्षके सगे भाई, अन्याई महाप्रभुओंकी आवश्यकता नहीं है, जिन्हें भारतकी दशाका ज्ञान तक भी नहीं होता। न जाने हमारी सरकार क्यों विना सोचे-समझे ऐसे निर्दय, पाषाण-हृदय, भारतकी स्थितिसे निपट अज्ञान पुरुषोंको भारतमें शासक बना देती है!

कहते हैं एक बार, (अँगरेजोंके शासनके पूर्व) भारतमें दुर्भिक्ष पड़ा, तब तत्कालीन नरेशने प्रजाकी सहायताके लिये यह उत्तम उपाय सोचा कि दिनमें मजदूर-पेशा लोग मजदूरी लेकर एक इमारत तैय्यार करें, और इज्जतवाले मनुष्य जो इमारत बनाना नहीं जानते, और सबके सामने मजदूरी करना अपनी कम इज्जती समझते हैं और माँग कर भी नहीं खा सकते, रातको उस इमारतको फोड़ कर मजदूरी ले आवें। इस प्रकार दोनों प्रकारके लोगोंने अपने दुर्भिक्षके दिन आनन्द-पूर्वक बिता दिये।

आजकाल हमारी ब्रिटिश सरकार भी चाहे तो भारतवासियोंकी दुर्भिक्षसे रक्षा कर सकती है। ऐसे समयमें जब कि मजदूर बहुत और सस्ते मिलते हों, सरकारको उनसे ऐसे ही काम कराने चाहिए जिनसे देशमें दुर्भिक्षकी कमी हो। जैसे नहर, कुएँ और तालाब खुदानेका काम। ये काम इतने अच्छे हैं कि कामका काम हो जाये और अनावृष्टिके समय दुर्भिक्षके दिन दृष्टि गोचर न हों। भारतवर्षमें आज तक बहुतसे रुपये बिना आबपाशीके पड़े हैं। सरकारका जितना ध्यान रेल-पथके विस्तारकी ओर है उतना नहरोंकी ओर भी होना चाहिए, ताकि भारतमें अनावृष्टि द्वारा दुर्भिक्ष पड़नेका भय सदाके लिये दूर हो जावे। इससे गवर्नमेंटको लाभ

भी खूब हो सकता है। हम सन् १९१० का नहरोंका हिसाब नीचे लिखते हैं:—

प्रान्त,	नहरोंमें लगी पूंजी,	सींचा गया रकबा,	मुनाफा फीसदी
पंजाब और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त	११० लाख पाउण्ड	६० लाख एकड़	९.४५
युक्त प्रदेश और अवध	७६ " "	२२ " "	५.८७
मदरास	" "	३७ " "	७.५
बंगाल और बिहार	५८ " "	४९ " "	१.१
बम्बई और सिंध	४७ " "	२२ " "	५.१५
समग्र ब्रिटिश भारत	३९४ " "	१६० " "	६.३३

ये नहरें पर्याप्त नहीं हैं, अभी देशमें नहरोंकी बड़ी ही आवश्यकता है। सरकारको ऐसे कामको शीघ्र ही और अवश्य ऐसे समयमें कराना चाहिए। भारत-सरकार कर तो सब कुछ सकती है, परन्तु उसे करना अभिष्ट हो तभी न? क्योंकि वह तो खासा उत्तर रखता है कि:—

"We are not responsible for the poverty of the country, we are not responsible for the occurence of famine. If God does not send rain

ve cannot help it. If plague spread out in pite of the preventive measures adopted by Government, the Government is helpless. So vill poverty femine and plague We have iven you peace, we have given you Railways, vhat more do you want? We are certainly ot responsible for the calamity."

" सारांश यह कि अगर ईश्वर जल न बरसावे तो हम इसमें क्या र सकते। तुम्हें हमने शान्तिसे रहने दिया, रेल दी, अब अधिक गा चाहते हो? हम किसीकी आफतके अलबत्ता जिम्मेवार नहीं । यही बात दरिद्रता, दुर्भिक्ष, प्लेग आदि सभीके विषयमें है।" प ही कहिए क्या यही उचित है? समस्त भूमण्डलके देशोंकी सनप्रणाली उस देशकी उन्नतिका मूल कारण मानी जाती है, र क्या भारतमें वैसा ही शासन है जैसा कि होना चाहिए? यदि कार और कुछ नहीं कर सकती है तो कमसे कम शासनमें भी सुधार करे, फिर हम देख लेंगे कि दुर्भिक्ष कैसे पड़ते हैं। शास-का उत्तम और लाभदायक प्रबन्ध करना आपका काम है, हमारा हीं। साम्पत्तिक सवाल हम लोगोंसे हल नहीं होगा, और यदि ही इन प्रश्नोंको हल करने लग जायें तो फिर सरकार किस लिये ? यदि हमारे देशमें सुवर्षा हो और रोग-शोक समूल नष्ट हो जायें आपकी और डाक्टरोंकी आवश्यकता ही क्या है? सरकारका र्तव्य इस प्रकार बेईमानीसे इन्कार करना नहीं, बल्कि उसको : कर देशको उन्नत बनाना होना चाहिए। इंग्लैण्डकी ही त लीजिए, आप जानते ही हैं कि वहाँ अन्नका सदा दुर्भिक्ष

रहता है । वहाँके निवासी अपने अन्न द्वारा केवल महीने पेट भर सकते हैं। यदि वहाँकी प्रजासे भी सरकार क "हम तुमको सहायता नहीं दे सकते, क्योंकि भूमि उपजाऊ है। इससे केवल तीन महीनेका खर्चा चलता है, इस लिये तुम बाकी नौ महीने निराहार रहो।" तब वहाँकी प्रजा क्या कहे वहाँकी प्रजा स्वाधीन विचारोंकी है, वह तुरन्त सरकारके हो जावेगी और मंत्रि-मंडलको पदत्याग करनेको विवश करे वह कह देगी—

"If you cannot give food for twelve mon you had better resign, and we shall h another ministry and another Parliament."

अर्थात्—यदि तुम हमें वर्षभरका भोजन नहीं दे सकते तो चाहिए कि अपने अपने पदोंको त्याग दो, हम दूसरे मंत्रि-मं अथवा पार्लियामेंटकी योजना कर लेंगे—" इत्यादि।

सन् १९०० के बाद आज तक नित्य ही अकाल पड़ते चले रहे हैं। सन् १९१८-१९१९ का कराल दुर्भिक्ष आप देख चुके ऐसी अभूत-पूर्व महँगी आज तक नहीं देखनेमें आई थी। कोई व ऐसी नहीं जिसकी दुगुनी चौगुनी कीमत न हो गई हो। यहाँ कि रेल भी महँगी हो गई, उसके भाड़ेमें भी वृद्धि हो गई। त डाक सभी महँगे हो गये। कैसा भयंकर समय है! पशुओंके तृण भी अत्यन्त महँगा मिलता है। भारतके प्राणियोंको, क मनष्य, क्या पशु-पक्षी, सभीको अपने जीवनमें सन्देह है। विषयमें हम यहाँ कुछ समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित लेख पाठ

...गे रखेंगे, जिससे हमारे पाठकोंको इस वर्तमान, महा भयंकर दुर्भि-
...का पता लग जायेगा। इस विषयमें प्रायः सभी पत्रोंने लिखा है
...पि; हम २-४ प्रसिद्ध पत्रोंके दुर्भिक्ष-क्रंदनको यहाँ लिखेंगे।
"हिन्दी समाचार" दिल्ली ता० २४ सितम्बर १९१८ ई० के
...कमें लिखता है :—

सभी चीजें बेहद मँहगी हुई हैं, पर अनाजकी महँगीके कारण
...रे देशवासियोंके कष्ट बहुत बढ़ गये। पिछले सौ वर्षोंमें जितना
...हँगा कभी नहीं हुआ था उतना अब हुआ है। उत्तर भारतमें पाँच
...र और दक्षिणमें अढ़ाई सेरका अनाज है। बड़े बड़े शहरोंमें अकाल-
...का स्वरूप कुछ भी दिखाई नहीं देता—पर साधारण गाँवों और
किसानोंकी बस्तियोंमें जाकर देखिए, बिना अन्न वहाँ हाहाकार
...च रहा है। दिन रातमें एक बार भी जिनको भर पेट खानेको
नहीं मिलता, उनकी तकलीफोंका अंदाजा मोटरों पर सैर करने-
वाले अफसरोंकी अकलमें नहीं समा सकता। इस अकालका सबसे
पहला कारण हिन्दुस्तानका अनाज यहाँसे बाहर भेजा जाना है।
पिछले तीन सालमें जितना अनाज इस देशसे बाहर भेजा गया है
उतना पहले कभी नहीं भेजा गया था। सरकारने अनाज पर
...ट्रोल कर रक्खा है और रेलीब्रादरकी मारफत उसने देशका अनाज
...बहुत कुछ अपने हाथमें ले लिया है। हम बार बार कहते रहे हैं कि
हम सरकारके अनाज बाहर भेजनेका विरोध नहीं करते, वह लड़ने-
वालोंके लिए रसद भेजे, पर ३० करोड़ आदमियोंके ३६० दिनके खाने
... छोड़ कर बाकी जो हो वह भेजे। सरकारने ऐसा
... किया। एक विद्वानका कहना है कि इस समय जितना

अनाज देशमें है वह यदि सबको बराबर बाँट दिया जाय, तब भी
कई महीने लोगोंको निराहार रहना होगा । यानी अनाज कम और
खानेवाले जियादा हैं । अकालका मुख्य कारण रेलोंका किराया
बढ़ाना है । रेलोंकी आमद पिछले बरसोंसे अब दुगनी और
तिगुनी है । जरूरी माल अधिक किराया देकर भी एक जगहसे
दूसरी जगह भेजना ही पड़ता है । इस लिये रेलवेकी आमद तो
बढ़ गई, पर किराया अधिक पड़ जानेके कारण चीजें महँगी हो गई ।
इस समय देशकी तमाम रेलवे लड़ाईके सबबसे सरकारके हाथमें है,
और सरकारके हाथमें होते हुए किराया बढ़ा इस लिये सरकार ही
इसकी भी जिम्मेदार है । बिना सरकारकी आज्ञाके रेलवे बड़ी
तादादमें माल नहीं लेती और अनाज तो एक जगहसे दूसरी जगह
लादती ही नहीं । जो लादती है उस पर इतना जियादा किराया लगाया
जाता है कि अनाजकी आधी कीमत किरायेके सबबसे ही बढ़
जाती है । यानी एक तो पिछले तीन सालकी सरकारी खरीदके
कारण देशमें अनाज ही कम है, दूसरे जो कुछ है उसे रेलवे महँगा
कर रही है । इस समय आवश्यकता है कि सरकार रेलवे पर अपने
कब्जेका फायदा न उठा कर एक या डेढ़ आने मन किराये पर
रेलवे द्वारा अनाज भेजना शुरू करे । अभी बम्बई और पूनेकी
म्युनिसिपैलिटियोंने सस्ती दर पर अनाज बेचनेका इन्तजाम किया
था, पर जहाँसे उन्होंने अनाज खरीदा वहाँसे रेलवे लाद कर लाई
ही नहीं । अन्तमें मजबूर होकर उन्हें अपनी दूकानें उठा देनी पड़ीं,
पर इस तरफसे आँख मींचनेसे सरकार और देश दोनोंहीका कल्याण
नहीं है । अकालका तीसरा कारण पानीका कम बरसना है । इस

साल देशमें एक तरहसे सूखा पड़ा है। सूखा अकाल पानीके अकालसे बड़ा भयानक होता है। अधिक पानी बरसनेसे जो अकाल होता है उससे फिर भी रबीके होनेकी उम्मीद होती है, पर सूखेके कारण खरीप तो बिगड़ ही जाती है, पर जमीन सूखी होनेके कारण रबीकी भी आशा नहीं होती। यानी सूखा अकाल दोनों फसलोंका घातक होता है और इस समय हिन्दुस्तानके सामने वही घातक अकाल है। इसका निवारण नहरोंसे हो सकता है। पर सरकारने पिछले पचास बरसोंमें जितना जियादा फौजी खर्च बढ़ाया उसका चौथाई भी प्रजाको भूखों मरनेसे बचानेवाली नहरोंको बढ़ानेमें खर्च नहीं किया। देशकी शान्ति और सुव्यवस्था इसमें है कि प्रजा भूखों न मरे, पर सरकार यह समझती रही है कि शान्ति और सुव्यवस्था बड़ी जंगी फौज रखनेसे होती है, इसी लिए हमारी सरकारने शान्तिके समय भी इतनी जियादा फौज रक्खी कि उसकी चौथाई भी दूसरे देश नहीं रखते। इस बढ़े हुए फौजी खर्चके मारे हम पर खासा टैक्स लगता रहा और नहरों आदिके लिए एक पैसा भी सरकारके हाथ न बचा। सरकारने चाहे जान कर किया या उससे अनजानमें हुआ, पर देश भूखा हुआ है और तकलीफमें बड़ी है। ऊपर लिखे तीनों कारणोंने मिल कर प्रजाको इस हालतमें ला डाला है कि यह कलकत्ते और मदरासमें दंगे, लूट और झगड़े करने पर उतारू हुई। मदरासमें तो साफ ही अनाजकी मँहगीसे तंग आकर लोगोंने लूट की और बड़े बड़े विचारकोंका कहना है कि कलकत्तेका यह भारी दंगा भी मँहगीका फल है। जो मँहगीके कारण लोग पहलेसे तंग न होते तो समा-

बंदीसे वे लूट करने पर आमादा न होते। यही नहीं चारों ओरसे क
छोटी मोटी हाटों और दूकानोंके लुटनेकी खबर आ रही है अं
देहातोंमें लूट-मार तथा चोरीकी तादाद दिन पर दिन बढ़ रही है
जो इस मँहगीका कोई इलाज न हुआ तो देशके भीतर शा
बनी रहना असम्भव है। देशमें पूरी शान्तिकी जरूरत है
देशके भीतरकी अशान्ति आगकी चिंगारीका काम देती है
रूसकी जो हालत हुई यह वहाँके लोगोंकी तंगीके बेहद ब
जानेसे हुई थी। लोग जारसे बराबर प्रार्थना करते थे। आखि
सबका यह विश्वास हुआ कि जार और उनकी सरकार ह
हमारे कष्टोंकी कारण है। इसी गलत खयालीके कारण वहाँ बलवा
हुआ जिसमें जार और उनकी सरकार पकड़ी गई। मतलब
देशके भीतरकी अशान्ति आगकी चिंगारी है। इन दोनोंमेंसे
बिना एकको मिटाये काम नहीं चल सकता। हमारे देशमें
हर एक चीजकी बेहद मँहगी और खास कर अनाजकी कमीसे प्रजामें
अशान्ति बढ़ चली है और साथ ही लड़ाई भी हमारी ओर बढ़ रही
है। ऐसी हालतमें इसकी उपेक्षा करनेसे काम नहीं चल सकता।

अकाल हो गया और यह अकाल कितना नाजुक है सो हम ऊपर
बता चुके हैं। अब सरकारको क्या करना चाहिए जिससे यह
नाजुक हालत मिटे और लड़ाईमें विजय हो। सबसे पहले तो सर-
कारको उस स्वार्थत्यागके करनेकी जरूरत है जो वह प्रजासे करनेको
कहती है। हमारे देशकी यह हालत है कि लाखों मनुष्य बिना
अनाज भूखों मर रहे हैं, पर सरकार दान-पुण्य करनेमें लगी है।
पहला दान सरकारने वलायतको डेढ़ अरब रुपयेका दिया।

दूसरा दान सड़सठ करोड़का है। पहले दानका रुपया हमारे देशके कर्जेकी शकलमें वसूल किया गया और दूसरे दानका रुपयां लड़ाईका टैक्स लगा कर वसूल किया जायगा। यदि इतनेसे ही देशका पीछा छूट जाता तब तो कुछ कहनेकी जरूरत ही न थी, पर लड़ाईका खर्च भी इसी देशको उठाना पड़ेगा और इस खर्चको पूरा करनेके लिये यहाँ हर तरहके टैक्स बढ़ाये और नये नये लगाये जायेंगे। पर हिंदुस्तानकी जो हालत है उससे हमें उम्मीद नहीं कि यह तमाम खर्च इस देशसे निकल सकेगा—ऐसी हालतमें भविष्यमें हिन्दुस्तानकी सरकार इंग्लैंड, अमेरिका या जापानसे लड़ाईके लिये कर्ज लेगी। यह कर्जकी रकम अरबों रुपयेकी होगी और उसका बड़ा भारी सूद इस देशसे टैक्सोंके जरियेस अदा किया जायगा। जब भविष्यकी यह हालत दीख रही है तब हम अपनी सरकारके सवा दो अरब रुपये दानकी प्रशंसा कैसे कर सकते हैं! इस नाजुक हालतको मिटानेके लिए सबसे पहला यह उपाय है कि हमारी सरकार अपने देशवालोंको भूखा मार-कर दान-पुण्य न करे। क्योंकि इतनेसे रुपयेसे इंग्लैंडका उतना उपकार नहीं होगा जितना हमारा नाश हो जायगा। यदि सरकारने इतना दान न किया होता तो अगले दो साल तकके लिए लड़ाईके खर्चके लिए रुपया काफी होता और नया टैक्स लगा कर देशको निचोनेकी जरूरत न होती। देशमें शान्ति स्थापित करनेका दूसरा उपाय यह है कि सरकार इस देशसे एक पैसेका भी अनाज बाहर भेजनेके लिए न खरीदे और न किसीको बाहर भेजने दे। हम यह मानते

हैं कि सरहद, मेसोपोटामिया, बसरा आदिकी दस लाख हिन्दु
स्थानी फौजोंके लिए खाने-पीनेकी जरूरत है और सरकारक
उनको भोजन देना अधिक जरूरी है। पर सरकार बड़ी आस
नीसे इसका दूसरा इन्तजाम कर सकती है। और वह याह कि
मिसर, यूनान तथा चीन जहाँकी फसल अच्छी है वहाँसे
खरीद कर फौजी जरूरत पूरी करे। साथ ही हिन्दुस्तानक
खरीदा हुआ जो अनाज सरकारके कब्जेमें है वह हिन्दुस्तानी
म्युनिसिपल कमेटियोंको इस शर्त पर खरीदके भाव बेच दे कि
म्युनिसुपिल कमेटियाँ उसे सस्ती दर पर गरीबोंको दें। इस
उपायको काममें लाते हुए सरकारको सिर्फ इस बातमें उज्र
होगा कि हिन्दुस्तानसे बाहर अनाजका भेजना कानूनन नहीं
रोक सकती। पर यदि सरकार कानूनन अनाजका बाहर जाना
न रोकेगी तो देशमें शान्ति रहना भी असम्भव है! देशमें अकाल-
को रोकनेका तीसरा उपाय प्रजाके लिए अनाजका कंट्रोल किया
जाय और कपड़ेकी तरह घातकी बिल न बना कर ऐसा कुछ
किया जाय जिससे प्रजाको अनाज मिले। इसका सबसे अच्छा
ढंग यह है कि बाहर जाना रोक कर यह कानून कर दिया जाय
कि एक खास तादादसे अधिक अनाज कोई व्यापारी दो सप्ताहसे
अधिक अपने स्टाकमें न रक्खे। और अनाजका सट्टा रोकनेके
लिए लाइसैंस मुकर्रिर किये जायँ, जिनसे सिवाय अनाजका
व्यापार करनेवालोंके और कोई सट्टा न बनावें। अकालको रोकने-
का चौथा उपाय रेलों द्वारा अनाजका एक स्थानसे दूसरे स्थान
कम दर पर भेजा जाना है। इस समय रेलें सरकारी कंट्रोलमें हैं

और देशमें शान्ति स्थापित करना सरकारके लिए सबसे अधिक आवश्यक हो गया है। इस लिये अनाजका किराया एक स्थानसे दूसरे स्थान पर भेजनेमें फी मन आने डेढ़ आनेसे अधिक न लिया जाय।

इन चारों उपायोंको पूरी तरहसे अमलमें लाने पर देशसे अकालका भय बहुत कुछ मिट कर पूरी शान्ति स्थापित हो सकती है। इनके बिना न तो शान्ति होगी और न तकलीफोंसे लोगोंका छुटकारा होगा। यह माना कि देशकी म्युनिसिपैलिटियाँ यदि सस्ते अनाजकी दूकानें खोलेंगी तो कुछ सहारा मिलेगा, पर देशके बड़े भारी हिस्सेमें म्युनिसिपैलिटियाँ ही नहीं हैं। फिर जो थोड़ीसी हैं उनमें बहुतोंकी हालत अच्छी नहीं है—जिनकी हालत अच्छी है और जो सस्ती दूकानें खोलेंगी भी उनसे मुलाहजगीरों और म्युनिसिपिल मेम्बरोंके दोस्तोंके सबबसे जितना फायदा पहुँचना चाहिए उसका चौथाँ हिस्सा भी न पहुँचेगा। मतलब म्युनिसिपैलिटियाँ देशका अकाल नहीं मिटा सकतीं। देशकी हालत ऊपरवाली बातोंसे ही कुछ सुधर सकती है। यदि सरकारको प्रजाका कुछ खयाल है और वह सचमुच प्रजाकी तकलीफें दूर करना चाहती है तो इस ओर पूरा ध्यान दे।

"उत्साह" उरई ता० २७ सितम्बर १९१९ में लिखता है।

चारेकी इतनी कमी पड़ गई है कि यदि शीघ्र प्रबन्ध न किया गया तो ५० फीस दी पशुओंके मर जानेकी सम्भावना है। मनुष्योंकी कमी, देवका कोप, और कर्मचारियोंकी असावधानी ही इस दुर्गतिके कारण हैं। पेटकी रक्षा सबसे प्रधान रक्षा है। भारत ऐसे कृषि-प्रधान देशमें यह कोई शोभाकी बात नहीं कि यहाँवाले तो

भूखों मरें और विदेशोंके दुःख मोचनके लिये लाखों मन गेहूँ जहाजोंमें लाद कर बाहर भेज दिया जाय। मद्रास और बंगालमें अन्नकी कमीके कारण लूट-मार हो चुकी है। वह इस भयंकर स्थितिका स्पष्ट परिचय दे रही है। आवश्यकता है कि भारत सरकार आँख खोल कर इस विषय पर विचार करे। न्याय यह है कि तीस करोड़ भारतवासियोंके लिये आवश्यक अन्न देशमें रख कर यदि बचे तो बाहर भेजा जाय।

"पाटलिपुत्र" बाँकीपुर आश्विन कृष्ण ९ सं० १९७५ के अंकमें लिखता है कि—

वर्तमान यूरोपीय महायुद्धने यूरोपमें ही नहीं; बरन् समस्त संसारमें जो हलचल पैदा कर दी है, जिस प्रकारसे संसारकी जनता अनेक कष्ट सह रही है, उसका विशेष वर्णन करना अनावश्यक है। यूरोपमें युद्ध हो रहा है। अतः वहाँकी सर्व-साधारण प्रजा जो कष्ट सह रही है, वह अनिवार्य है; पर हम देख रहे हैं कि जिन देशोंमें युद्ध नहीं, वे देश भी आज उक्त युद्धके कारण विशेष कष्ट सह रहे हैं। यूरोपको छोड़ कर एशियाई देशोंमें जो दुःख इस समय भारत झेल रहा है, उसकी तुलना अन्य देशोंसे नहीं हो सकती। नित्यके व्यवहारमें आनेवाली प्रायः सभी चीजें इस समय ऐसी महँगी हो गई हैं और होती जा रही हैं कि भारतीय सर्व साधारण प्रजाको लज्जा और क्षुधा-निवारण करना बड़ा ही दुस्साध्य हो पड़ा है। रूई इस समय आठ छटाँककी बिक रही है; लोहा, ताँबा, पीतल, राँगा, जस्ता, शीशा आदि धातु और उपधातुओंकी महँगी तो वर्षोंसे दुःख पहुँचा रही है। कपड़ेकी महँगीने जो अपार कष्ट भारतीयोंको

दे रखा था, वह किंचित् भी कम होने नहीं पाया कि इधर तीन महीनोंसे खाद्य पदार्थोंकी नित्यकी बढ़ती हुई महँगीने इस समय सर्व-साधारणको एक बारगी ही विचलित कर दिया है। हम जानते हैं कि वर्तमान यूरोपीय युद्धमें विजय प्राप्ति होने पर भारतको अनेक दुःखोंसे छुटकारा मिलेगा। वह अपने साम्राज्यका रक्षण रखता हुआ अपने मनोभिलषित पदको पायेगा, और इसी आशा-भरोसेके बल पर भारतने वर्तमान युद्धमें ब्रिटिश सरकारको अपार सहायता पहुँचाई है; पर जब हम देखते हैं कि भूखके मारे देशकी गरीब और साधारण स्थितिवाली प्रजा आज एक बारगी विह्वल हो उठी है, उसे पेटके कष्टके निवारण करनेके लिये एककी जगह दो-दो तीन-तीन खर्च करने पड़ते हैं, तब उसकी इस अवस्थाको देख विशेष कष्ट होता है। लोहा, पीतल आदिकी महँगी सही जा सकती है, कपड़ेकी महँगी भी उस प्रकारका दुःख नहीं दे सकती, जितना कि खाद्य पदार्थोंकी महँगीसे प्रजा दुःख उठाती है। लोहा, पीतल प्रभृति बिना अत्यावश्यक कार्यके हम नहीं खरीदते. धोतीकी जगह गमछेसे लोग काम चला सकते हैं, नंगे बदन रहते हुए भी केवल लंगोट बाँध कर गरीब पुरुष लज्जा निवारण कर सकते ह। पर अन्नकी कमी किसी अवस्थामें भी सही नहीं जा सकती। पेटके दुःखके सामने कोई दुःख टिक नहीं सकता। फलतः इस समय अन्नकी दर जिस रीतिसे नित्य बढ़ती जा रही है, उसे देख विचारशील मात्रको विशेष चिन्तित होना पड़ा है।

लड़ाईके कारण जो वस्तुएँ महँगी हुई हैं, उनकी महँगी बिना युद्ध समाप्त हुए पूर्णमात्रामें घट नहीं सकती। पर जिन वस्तुओंका

लड़ाईसे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं, वे भी इस समय महँगी होती जा रही हैं। लोहा आदि धातुओंके खरीदनेवाले व्यापारी जब लोहा, पीतल, प्रभृति तेज भावमें खरीदते हैं, तब वे अपनी चीजें भी महँगी बेचते हैं। इस समय वस्त्रके रोजगारी वस्त्र महँगा बेच कर जब पैसे कमा रहे हैं, तब अन्नके व्यापारी कपड़ेकी लागतको महँगी बेच कर पूरा करनेमें लगे हैं। बात यह है कि इस समय प्रत्येक वस्तुका व्यापारी एक चीज महँगी खरीदता तो अपनी चीजें भी महँगी बेच कर अपने घाटेको पूरा करना चाहता है। व्यापारियोंकी इस ऊपरा-चढ़ीमें उन्हीं लोगोंकी खराबी है जो लोग कोई रोजगार नहीं करते और बँधी हुई आमदनी रखते हैं। साधारण जमींदारों, महाजनों और नौकरी पेशेवालोंको इस महँगीसे विशेष कष्ट सहना पड़ता है। कम मासिक पानेवाले नौकर तो इस समय बे तरह मर रहे हैं। दस-पन्द्रह रुपये मासिक आयमें परिवारका भरण-पोषण करना इस समय एक बारगी ही असम्भव है। नीचेकी सूचीके देखनेसे पाठकोंको मालूम हो जायगा कि गत जूनमें अन्नादिका क्या भाव था और इस समय क्या भाव है।

जिन्सका नाम,	जूनकी दर,	इस समयकी दर।
चावल	४)	६।)
गेहूँ	४)	६।।।)
दाल अरहर	४)	६।।।)
चना	२।।=)	४।।।)
मसूर	२।।)	७।।)
खेसारी	१।=)	३≡)

मूँग	४)	६।।।)
उर्द	४)	७।।)
सरसोंका तेल	१८)	२६)
दानेका तेल	२१)	२९)
रेड़ीका तेल	१६)	३५)
रेड़ी	५)	१३)
दाना	५।~)	८।।।)
सरसों	६।।)	८।।)

ऊपरके लेखेमें पाठक देखेंगे कि तीन महीनोंमें खाद्य पदार्थोंकी दर कैसे रूपमें बढ़ गई। यदि इस प्रकार दर बढ़ती गई तो देशकी क्या दशा होगी, सो सरकारको खूब ध्यान-पूर्वक सोच रखना चाहिए। कितने ही लोगोंका कहना है कि खानेपीनेकी चीजें यदि विदेशमें न भेजी जायें तो आज कम वर्षा होने पर भी देशमें इतना अन्न है, जिससे प्रजाका किसी प्रकार निर्वाह हो सकता है। वर्षाकी कमी और अधिकतासे यद्यपि विशेष उपज नहीं नहीं हुई है, पर काम चलने लायक अन्न कई प्रान्तोंमें हो जायेगा। फलतः भारतीय सरकारका कर्तव्य है कि वह इस समय अन्नका विदेश जाना यथाशीघ्र रोक दे। संवत १९५६ के अकालमें जिस भावसे अन्न बिकता था, इस समय कई अन्नोंका भाव उससे भी चढ़ा हुआ है। उस समय घी २६) २७) मन तक बिकता था। और और भी कितनी ही आवश्यक वस्तुएँ सस्ती थीं; पर इस समय तो खाने पहनने आदिकी सभी चीजोंमें आग लगी है। फलतः यदि वर्तमान अकालका कोई उचित प्रबन्ध सरकार न करेगी तो देशकी अवस्था बड़ी ही भयानक हो जायेगी।

" हिन्दी-समाचार " कहता है कि:—

हम पिछले सप्ताह लिख चुके हैं कि भारतका अकाल ज्यों ज्यों जमाना गुजरता है त्यों त्यों भयानकसे भयानक होता जा रहा है अकालोंकी भयानकता ज्यों ज्यों जमाना बीतता है बढ़ती ही जाती है । इसके मुख्य चार सबब हम बता चुके हैं और साथ ही यह भी लिख चुके हैं कि जब तक यह दूर न होंगे तब तक भारतका पीछा अकालोंसे नहीं छूट सकता । इस समय हिन्दुस्तानमें अकालकी दशा बड़ी भयानक है । बरसातके दिन सूखे गुजरे तमाम जाड़ा बीतनेके किनारे पर है, पर पानी नहीं । एक ही प्रान्त नहीं, बल्कि एक सिरेसे दूसरे सिरे तक यही हाल है । चारों ओर महँगीका कष्ट दिखाई दे रहा है । शहरोंमें चारों ओर बिना नौकरी वाले जियादा भटकते नजर आते हैं । बम्बईमें अपनी तनखाह बढ़वानेके लिए ७५ मिलोंके एक लाख मजदूरोंने हड़ताल कर दी है । ऐसी हड़ताल हिन्दुस्तानके इतिहासमें कभी नहीं हुई थी ।

" अवधवासी " लखनऊ अपने २१ जनवरी १९१९ के अंकमें लिखता है कि:—

कोई तीन मास पूर्व यह आशा उत्पन्न हुई थी कि मोटा कपड़ा जिससे गरीबोंका काम चलेगा, सरकारी उद्योगसे कुछ सस्ता बिकेगा। सरकार नियत दर पर कई प्रकारका मोटा कपड़ा बेचने और बिकवानेका प्रबन्ध कर रही है, यह समाचार प्रचरित होनेके बाद कपड़ा कई दिनों तक सस्ता बिका, आधे दामों तक उतर गया था । परन्तु फिर वही गति हो गई और सरकारी सस्ते कपड़ेका न कहीं पता है और न कोई समाचार ही है । 'घरी भरमें घर जरै और ढाई घरी

भद्रा' इसी को कहते हैं। अकाल और कपड़ेकी महँगीसे गरीब प्रजा हाय हाय कर रही है और सरकारी यन्त्र अपनी चिर अभ्यस्त शाहाना चालसे ही चल रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे लिये 'तुरन्त कपड़ा सस्ती दर पर बेचनेका प्रबन्ध किया जाय' कह देना जितना सहज है, उतना ही सहज राजकीय कर्मचारियोंके लिये निश्चयको कार्यमें परिणत करना नहीं है; परन्तु समयकी आवश्यकता और प्रजाकी विकट विपत्तिका ध्यान भी तो कोई चीज है। हमें सन्देह है कि जिन अधिकारियों पर बँधी दर पर मिलोंसे कपड़ा तैय्यार करवाने और उसे उचित मूल्य पर बिकवानेका भार डाला गया है वे अपने उत्तरदायित्वका यथार्थ अनुभव कर रहे हैं। कपड़ेकी महँगीसे एक और दुर्भाव भी फैल रहा है। मूर्ख लोग समझते हैं कि लड़ाई अभी बन्द नहीं हुई। उनका तर्क है कि—लाख समझाइए पर कौन सुनता है—यदि लड़ाई बन्द हो गई होती तो कपड़ा सस्ता हो जाता। इधर बुद्धिमान लोगोंकी सम्मति है कि अतिरिक्त समर-लाभ पर अतिरिक्त कर बैठानेका निश्चय ही महँगीका वास्तविक कारण है। यदि सचमुच यही कारण है तो सरकारको तुरन्त अतिरिक्त कर उगाहनेका विचार त्याग देना चाहिए। समर बन्द हो जाने पर उसका लगाना सर्वथा अनुचित है। ऐंग्लो-इण्डियन तथा भारतीय सभी एक स्वरसे अतिरिक्त करका विरोध कर रहे हैं, परन्तु सरकार चुप है। यह बेपरवाई अति निन्द्य है। यदि हम भूलते नहीं हैं तो, दायित्व-पूर्ण अधिकारियोंकी सूचनामें स्वीकार किया गया था कि तीन वर्षका काम चलाने भरको भारतमें कपड़ा मौजूद है। इतना कपड़ा होते हुए भी, यह महँगी और भी बुरी तथा रंजद है। सरकारको शीघ्र ही कुछ कर दिखाना चाहिए।

"हिन्दी-बंगवासी" ३ फरबरी १९१८ ई० के अंकमें लिखता है—

अन्न और वस्त्र मनुष्य-जीवनके सर्व्वापेक्षा अधिक आवश्यक द्रव्य हैं। बिना अन्नके मनुष्य जी नहीं सकता; बिना वस्त्रके मनुष्य लज्जा निवारण कर नहीं सकता। फिर भी इस समय यह दोनों ही आवश्यक द्रव्य अतीव दुष्प्राप्य हो गये हैं। इन दोनों द्रव्योंका मूल्य इतना अधिक हो गया है कि इन्हें दरिद्र तो दरिद्र, मध्य-श्रेणीके भी मनुष्य आसानीसे पा नहीं सकते हैं। जिस समय केवल वस्तु महँगी और अन्न सस्ता था उस समय केवल दिगम्बरीक भय था। इस समय इन दोनों द्रव्योंके महार्घ हो जानेसे दिगम्बरीकी भी आशङ्का है। अकाल मृत्युकी भी आशङ्का है; केवल आश-ङ्का ही क्यों, अनेक स्थलोंमें दिगम्बरी और मृत्यु दोनों हाथसे हाथ मिला पैशाचिक नृत्य करती दिखाई देती हैं। नहीं जानते कि इन दोनोंके अत्याचारसे भारतवासियोंकी रक्षा कैसे होगी?

यूरोपीय युद्धके उपरान्त जब समग्र भारतमें महार्वता दिखाई दी थी, तब भारत सरकारने अग्रसर हो यह कहा था कि इस युद्धके समय भारतीय अन्न देशान्तरित करनेका अधिकार यूरोपीय व्यव-सायियोंके हाथ नहीं; भारत-सरकारके हाथ रहेगा। यह कह इस सरकारने यह अधिकार यूरोपीय व्यवसायियोंके हाथसे निकाल अपने हाथ लिया था। साथ-साथ इसका सुफल भी प्रकट हुआ था। भारतीय अन्नकी चढ़ी हुई दर एकाएक गिर गई थी। किन्तु यह व त कुछ ही समय तक रही। इसके उपरान्त वह दर एक बार फिर चढ़ने लगी। चढ़ते-चढ़ते वह बहुत चढ़ गई। इस समय यह

चरमको पहुँची है। सच तो यह है कि इस समय भारतीय अन्नकी दर यहाँ तक चढ़ गई है; जहाँ तक इसकी रफ्तनी यूरोपीय व्यवसायियोंके हाथ रहनेसे भी न चढ़ी थी। फिर भी इस विषयमें चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। किसी तरहकी कैफियत निकल नहीं रही है; इसके प्रतिकारके सम्बन्धमें कोई सुव्यवस्था होती नहीं दिखाई देती है। इस विषयमें किसी भी प्रादेशिक सरकारकी ओरसे विशेष कोई बात कही नहीं गई है। गत सप्ताह एक बिहार सरकारने एक अच्छी बात कही है। उसकी ओरसे कहा गया है कि इस समय इस प्रदेशमें अन्नकी जैसी महार्घता उपस्थित है उससे कृषकोंमें तकावी बाँटनेकी व्यवस्था होनेकी बड़ी आवश्यकता प्रतीत हुई है। हो तकावीकी व्यवस्था; किन्तु एक इसी व्यवस्थासे सारे भारतका महार्घता-जनित हाहाकार कैसे मिट सकेगा? इस विषयमें जब तक भारत-सरकार कोई सुव्यवस्था न करेगी तब तक लोगोंका यह कष्ट कैसे मिटेगा! महार्घताके फलसे सारा देश उद्विग्न है, कोटि कोटि मनुष्य अन्नकी ज्वालासे सूखे जा रहे हैं, क्या इस समय भी भारतीय अन्नको वैदेशिक रफ्तीमें रुकावट उत्पन्न करनेकी आवश्यकता उपलब्ध की नहीं जाती है!

वस्त्रकी महार्घता भी कम आवश्यक प्रश्न नहीं। बहुतेरे लज्जाशील मनुष्य लज्जा परित्याग करनेसे पहले अपना जीवन परित्याग कर दिया करते हैं। अबसे कुछ समय पहले ऐसी कितनी ही दुर्घटनाएँ हो चुकी हैं। कौन जानता है कि इस समय भी हो न रही होंगी। ऐसी ही इस भीषण आवश्यकताके मिटानेका क्या उपाय हो रहा है! अबसे कुछ समय पहले भारत-सरकार समग्र भारतके लिये

ष्टाण्डर्ड वस्त्र बनवाने पर उद्यत हुई थी। इसके फलसे भा[illegible] वस्त्रकी महार्घता कुछ घट गई थी। किन्तु जैसे ही वस्त्र-व्यवसायि[illegible] यह विदित हुआ कि गर्ज्जनके उपरान्त वर्षण न होगा यानी सरकारी आज्ञाके अनुसार कार्य्य न होगा; वैसे ही उन सबने [illegible] गिरी हुई दर एक बार फिर चढ़ा दी। इस समय वस्त्रोंकी दर प्र[illegible] पूर्व्ववत् है। भारत-सरकारके इस गर्ज्जनके अनुसार भार[illegible] सम्भवतः एक प्रदेशमें वर्षण हुआ है। इस प्रदेशका नाम बि[illegible] और उड़ीसा है। उस दिन इस प्रदेशकी सरकारकी ओ[illegible] प्रकट किया गया है कि इसने अपने प्रदेशमें प्रचुर [illegible] वस्त्र मँगा उन्हें विलायती वस्त्रकी अपेक्षा सैकड़े पीछे [illegible] चालीस रुपये कम दर पर बेचना आरम्भ किया है। हम [illegible] समझते हैं, अन्यान्य भारतीय प्रदेशोंमें ऐसे वर्षणका प्रभाव नहीं [illegible]

दोनों अभावोंकी ओर ध्यान दे—इनके मिटानेके सम्बन्धमें कोई

...अब दूसराका मुह ताकनका समय नहीं है। जरा विचारिए, १९ वीं सदीके पिछले २५ वर्षोंमें दो करोड़ पच्चीस लाख मनुष्य दुर्भिक्षसे मरे, अर्थात् प्रति वर्ष १० लाख, प्रति मास ८६ हजार और प्रति दिन २८८० और प्रति घण्टा १२० एवं प्रति मिनिट २ भारतीय बराबर २५ वर्षों तक दुर्भिक्षसे मरते रहे। उन दिनों ही जब प्रति मिनिट दो मनुष्य मरे तो जरा आजका अन्दाजा आप ही लगा लीजिए कि कितने भारतवासी प्रति मिनिट भूखके मारे प्राण छोड़ रहे हैं! हाय यह दुर्भिक्ष है या भारतवर्षका अन्तिम दृश्य! भारतवासियो, यह निश्चय मान लो कि जब आप आनन्द-पूर्वक पलंग पर सुखसे लेटे हैं तब न जाने आपके कितने देश-भाई भूखों मरते इस संसारसे बिदा हो रहे हैं! कोई एसा नहीं जो उनके मुखमें पानीकी बूँद भी जाकर डाले! माता-पिताके जीवित रहते भूखसे व्याकुल हो, बिना अन्न उनके हृदखण्ड छोटे छोटे बालक प्राण विसर्जन कर रहे हैं। और बादमें स्वयं भी प्राणत्याग रहे हैं। यदि माताने पहले प्राण त्याग दिये हैं तो बच्चा क्षुधा-तृपासे पीड़ित ... माताके स्तनोंको चूस रहा है और अन्तमें रोते रोते भूखसे ... हुए, हताश हो कर उसीकी छाती पर आप भी प्राण छोड़ देता है। शिव! शिव! कैसा लोमहर्षण भयानक दृश्य है!

भारतके कोने कोनेमें यही दृश्य दिखाई पड़ता है। उनकी लाशोंका अन्त्येष्टि संस्कार कौए, श्वान, गृद्ध और सियार करते हैं। हाय! कैसी पाषाणको भी शतखण्ड करनेवाली हमारे देशकी अवस्था है।

प्यारे भारतके सपूतो! आप किस तानमें अफलातून हैं। धीरे धीरे यह दुर्भिक्ष निशाचर भारतके एक एक पुत्रको इसी भाँति भूखों मार डालेगा, भारतका नाम मिटा देगा, ऋषियोंके पवित्र नाम और ऋषि सन्तानें सदाके लिये संसारसे उठ जावेंगी। प्यारे देश भक्तो! मातृभूमिके लिये बलिदान होनेवाले वीरो! अपने भारतवर्षकी हीनावस्था पर ध्यान दो, अपने भाइयोंके करुण-क्रन्दन पर चार आँसू बहाओ! अब भी सँभलो, नहीं तो फिर पछताओगे।

परिशिष्ट।

"It is better to follow the real truth of things than an imaginary view of them."

—*Machiavelli.*

किसी बातके सम्बन्धमें वास्तविक सत्यका जानना, उसके खयाली चित्रसे कहीं अच्छा है।

+ + +

+ +

डिगबी साहब—

"१७६९ से १९०० तकमें २,२५०००००० मनुष्य भूखसे मर गये।"

+ + +

+ +

चार्ल्स एडवर्ड रसेल—

करते हुए गईं। १८६९ के उत्तरीय भारतके दुर्भिक्षमें मृत्यु संख्या, १२,५०,००० थी। १८२७ के दुर्भिक्षमें केवल तीस लाख भारतवासी सरकारी सहायता पाकर जीवित रहे। मोटे हिसाबसे सन् १८९१ से १९०१ ई० तकमें जन-संख्यामें अस्सी लाख मनुष्योंकी कमी हुई।"

\+ \+ \+

\+ \+

" हिसाब लगा कर देखनेसे मालूम हुआ है कि अकेले भारत सचिव माननीय लार्ड जार्ज हेमिल्टनने जो रुपये वेतनके रूप प्राप्त किये थे, वे नव्वे हजार भारतीयोंकी वार्षिक आयके बराबर थे।"

\+ \+ \+

\+ \+

डिगबी महोदय—

" भारतवर्षसे प्रति वर्ष प्रायः १६,५०,००,०००) रु० का गेहूँ और चावल बाहर भेजा जाता है।"

\+ \+ \+

× ×

मि० रसेल—

"डेढ़सौ वर्षोंमें अकालसे २,८०,००,००० मनुष्योंके मर जानेका जो अतुलनीय लेखा है, उसका प्रधान कारण भूमिका लगान और जमीनके पट्टेकी प्रणाली है...............जो सबसे निर्बल लोगों पर भारी बोझ डालती है।"

"दुर्भिक्षोंका निकटस्थ कारण अनावृष्टि है, किंतु उसका भी प्रारंभिक और मूल कारण............लगान और टेक्सकी प्रणाली है।"

"भारतीय किसानको संसारमें सबसे अधिक टैक्स देना पड़ता है। उसको अपनी आमदनी पर प्रति शत ५५ का टक्स देना पड़ता है। नगरोंके व्यापारी तथा रम्य नगरोंके सुखस्वामी कुरसीतोड़ स्वयंभुओंको किसानोंकी अपेक्षा बहुत ही कम कर देना पड़ता है, तिस पर भी ऐसे मनुष्य मौजूद हैं जिन्हें दुर्भिक्ष पड़ने पर आश्चर्य होता है।"

\+ + ×

मि० सण्डरलैण्ड—

"भारतीय दुर्भिक्ष वर्तमान समयकी सबसे आश्चर्य-जनक और रोमाञ्चकारी बात है, दिनों दिन वे अधिक पड़ते जाते हैं और साथ ही साथ उनकी कठोरता भी बढ़ती जाती है। इनकी मृत्यु-संख्या भयानक हे।'

डाक्टर आल्फ्रेडरसल वेलेन्स—

The final and absolute test of good government is the well-being and contenment of the people-not the extent of the Empire or the abundance of the revenue and the trade. Tried be this test, how seldom have we succeeded in ruling subject peoples? Recurrent famines and plague in India; discontent, chronic want and

misery; famines more or less severe and continuous depopulation in our sister-island at home–these must surely be reckoned amon the most terrible and most disastrous failure of the nineteenth century.

लार्ड मॉरले—

"The viilage in India has been the fundamentel and inderstuctible mist of the Social system, serviving the down fall of dynesty after dynesty.

श्रीयुत् अरविन्द घोष—

"What I cannot do not now in the sign of what I shall do hereafter. The sense of impossibility is the begining of all possibilities."

भारत-पितामह दादाभाई नवरोजी—

This system of all European service i India is the root cause and curse of all India' evils, woes and suffering."

सि० ग्लैडस्टन—

"If is liberty alone which fits men for liberty. This proposition, like every other in politics, has its bounds, but it is for safer than the counter doctrine, wait till they are fit.

महात्मा गोपालकृष्ण गोखले—

" India needs to-day above everything else that the gospel of " Swadeshism " should be proached to high and low, to prince and to peasant, in town and in hamlet, till the service of motherland becomes with us as over mastering a passion as it is in Japan.

महात्मा रानाडे—

" The true end of our work, is to renovate, to purify and also to perfect the whole man by liberating his intellect, elevating his standard of duty, and developing to the full all his powers. Till so renovated, purified and perfected, we can never hope to be what our ancestors once were-a chosen people, to whom great tasks were alloted and by whom great deeds were performed. Where this feeling animates the worker, it is a matter of comperative indifference in what particular direction it asserts itself and in what particular methoed it proceeds to work. With buoyant hope, with a faith that never shriks duty, with a sense of justice that deals fairly by all, with unclouded intellect and power fully cultivated.. and, lastly, with a love that over-leaps all

bounds removated India will take her proper rank among the nations of the world, and be the master of the situation and of her own destiny. This is the goal to be reached, this is the promised land. (मंजिल मकसूद). Happy are they who see it in distant vision, happier those who are permitted to work and clear the way on to it, happiest they who live to see it with their eyes and tread upon the holy soil once more. Famine and pestilence, oppression and sorrow, will then be myths of the past, and the Gods will then again descend to the earth and associate with men as they did in times which we now call mythical."
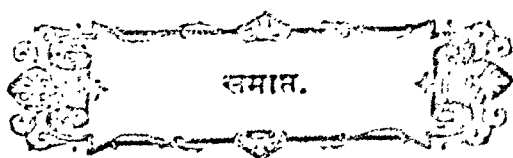
हिन्दी-गौरव-ग्रन्थमाला।

इस उत्कृष्ट ग्रंथमालाके स्थायी ग्राहकोंको नीचे लिखी इसकी सब पुस्तकें पौनी कीमतमें दी जाती हैं।

१ सफल-गृहस्थ। अँगरेजीके प्रसिद्ध लेखक सर ऑथर हेल्पसके निबन्धोंका अनुवाद। इसमें मानसिक शान्तिके उपाय, कार्य-कुशलता, कुटुम्बशासन, हृदयकी गंभीरता, संयम आदि पर सुंदर विवेचन है। नया संस्करण मू० ॥।)

२ आरोग्य-दिग्दर्शन। मूल-लेखक महात्मा गाँधी। पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके लिए बड़ी उपयोगी है। पुस्तकमें हवा, पानी, खुराक, जल-चिकित्सा, मिट्टीके उपचार, छूतके रोग, बच्चोंकी सँभाल, सर्प-बिच्छू आदिका काटना, डूबना या जलजाना आदि अनेक विषयों पर विवेचन है। तीसरा संस्करण मू० ।≶)

३ कांग्रेसके पिता मि० ह्यूम। कांग्रेसके जन्मदाता, भारतमें राष्ट्रीय भावोंके उत्पादक, मनुष्य-जातिके परम हितैषी, स्वार्थ-त्यागी महात्मा मि० ह्यूमका यह जीवन-चरित्र प्रत्येक देशभक्तके पढ़ने योग्य है। मूल्य बारह आने।

४ जीवनके महत्त्व-पूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश। जेम्स एलनकी पुस्तकका सरल-सुन्दर अनुवाद। प्रत्येक युवकके पढ़ने लायक चरित्र-संगठनमें बड़ी उपयोगी पुस्तक है। नया संस्करण मू० ॥=)

५ विवेकानन्द (नाटक)। स्वामी विवेकानन्दने अमेरिकामें जो हिन्दूधर्मका प्रचार किया, उसका इसमें सुन्दर चित्र खींचा गया है। देश-भक्तिकी पवित्र भावनाओंसे यह नाटक भरा हुआ है। मू० १) स०

६ स्वदेशाभिमान। इसमें कितने ही ऐसे विदेशी रत्न-रत्नोंकी खास खास घटनाओंका उल्लेख है, जिन्होंने अपनी मातृभूमिकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर संसारके सामने एक उच्च आदर्श खड़ा कर दिया है। नया संस्करण। मूल्य ।=)

७ स्वराज्यकी योग्यता। स्वराज्यके विरुद्ध जो आपत्तियाँ उठाई जाती हैं उनका इसमें बड़ी उत्तमताके साथ खण्डन कर इस बातको अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि भारतको स्वराज्य मिलना ही चाहिए। मू० १।) स०

८ एकाग्रता और दिव्यशक्ति। इसमें दिव्यशक्ति—आरोग्य, आनन्द, शक्ति और सफलता की प्राप्तिके सरल उपाय बतलाये गये हैं। सजि० मू० १।=)

९ जीवन और श्रम । परिश्रम करनेसे घबड़ानेवाले और परिश्रम करनेको बुरा समझनेवाले भारतके लिए यह पुस्तक संजीवनी शक्तिकी दाता है। श्रम कितने महत्त्वकी वस्तु है, यह इसे पढ़नेसे मालूम होगा। मूल्य डेढ़ रुपया, स० १॥।=)

१० प्रफुल्ल (नाटक)। हमारे घरों और समाजमें जो फूट, स्वार्थ, मुकदमेबाजी, ईर्षा-द्वेष आदि अनेक दोषोंने घुस कर उन्हें नरक धाम बना दिया है उनके संशोधनके लिए महाकवि गिरिश बाबूके उत्कृष्ट सामाजिक नाटकोंका घर घरमें प्रचार होना चाहिए। मूल्य १=) सजि० १॥) रु०

११ लक्ष्मीबाई । झाँसीकी रानीकी यह जीवनी बड़ी खोजके साथ लिखी गई है। सरस्वतीके सम्पादकका कहना है कि " केवल इसी पुस्तकके लिए मराठी सीखनी चाहिए। " मूल्य १।) रु०, सजिल्दका १॥=)

१२ पृथ्वीराज (नाटक)। भारतके सुप्रसिद्ध वीर पृथ्वीराज चौहानने गजनीके दुर्दमनीय मुगल-सम्राटको पराजित कर पुण्यभूमि भारतकी रक्षाके लिए जो अपूर्व आत्म-बलि